पारद तन्त्र विज्ञान

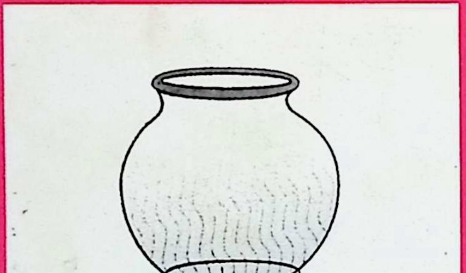

वैद्य सुभाष चन्द्र

12-2-

526
6

पारद तन्त्र विज्ञान

LB:526
P06

पारद तन्त्र विज्ञान

वैद्य सु

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली • मुम्बई • चेन्नई • कोलकाता
बंगलौर • वाराणसी • पुणे • पटना

प्रथम संस्करण : *दिल्ली,* २००६

© वैद्य सुभाषचन्द्र

ISBN: 81-208-3099-7

मोतीलाल बनारसीदास
४१ यू०ए० बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ११० ००७
८ महालक्ष्मी चैम्बर, २२ भुलाभाई देसाई रोड, मुम्बई ४०० ०२६
२३६ नाइंथ मेन III ब्लाक, जयनगर, बंगलौर ५६० ०११
सनाज प्लाजा, १३०२ बाजीराव रोड, पुणे ४११ ००२
२०३ रायपेट्टा हाई रोड, मैलापुर, चेन्नई ६०० ००४
८ केमेक स्ट्रीट, कोलकाता ७०० ०१७
अशोक राजपथ, पटना ८०० ००४
चौक, वाराणसी २२१ ००१

JACL-KRC
021081

नरेन्द्रप्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली ११० ००७
द्वारा प्रकाशित तथा जैनेन्द्रप्रकाश जैन, श्री जैनेन्द्र प्रेस,
ए-४५ नारायणा, फेज-१, नई दिल्ली ११० ०२८ द्वारा मुद्रितं

।। श्री ।।

मंगलमय स्तुति

प्रथम श्री गणेशाय नमः
शिव को कोटि कोटि प्रणाम।
मंगलकारी सृष्टि के
त्रिगुण माया निधान।।

सूतम् शिवम् स्वरूप है,
जो करे जगत कल्याण
निज मन में धारण करूं
महिमा अपरं पार
सर्व सिद्धि दाता रूप है,
सिद्ध रूप मोक्ष के मूल
जो इसकी सिद्धि करे
रहे सभी दुःखों से दूर
महाकाल कृपा करें
जाय जन्म-मरण से छूट
जीवन शक्ति रूप है,
करे जरा-व्याधि का नाश
अमृत रस रूप हैं
करूँ कोटि कोटि प्रणाम्

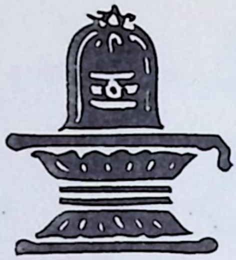

सर्वत्र व्याप्त अमूल, अभेद, अनन्त,
अनादि आकाश शिव स्वरूपम्।
गुणातीतं त्रिगुणात्म रूपे भव
धार्यते माया रुपं ब्रह्माण्डकम्।।

पाञ्चभौतिक प्रकृति रूपं
रसरूप भव जीव रूपं प्रकटम्।
काल रूपे सृष्टि स्वरूपं भव
जीवन्तोत्पत्ति च नाशकम्।।

मायारूपे सर्वत्र व्यापे अनेक
योनि मण्डल स्वरूपकम्।
मोक्षदायकं शिवात्मरूपे मम
कोटानि कोटि प्रणामकम्।।

सन्देश

रसक्रियाओं में बद्ध पारद का महत्त्व माना जाता है तथा रसक्रियाओं के माध्यम से धात्वादिक भस्मों की प्राप्ति विशिष्ट रसौषधों के रूप में देखी जाती है, जिसका उपयोग स्वास्थ्य की दृष्टि से दीर्घायु प्रदान करने वाला होता है, जिनमें स्वर्णादिक धात्वजीर्णपारद भस्म को अमृत के तुल्य माना गया है. मैंने अपने शोध-कार्यों में इनकी प्राप्ति का अनुसंधान करते हुए स्वजन्य सिद्धि की प्राप्ति से अभूतपूर्व रूप में प्राच्य-ज्ञान के अवधारण से **ताम्र जीर्ण पारद-भस्म, ताम्र-रस, तामेश्वरी, महीमय पात्र** व मूर्छित रस की प्राप्ति कर दीर्घायुष्य जीवन की मंगल कामनाओं के साथ उत्तम स्वास्थ्य को प्राप्त कराने में समर्थ रसौषधों का निर्माण भी शिवकृपा से किया है, बद्ध-पारद द्वारा निर्मित पारदमणि का उपयोग शरीर पर धारण करने से स्वास्थ्य की रक्षा करता है। शिव आराधना में पारद का विशेष महत्त्व माना गया है अत: धर्म-कार्य का लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से शिव-मन्दिरों के लिये शिवलिंगों का निर्माण पारद द्वारा बन्धन (बद्ध) करके भी शिवभक्तों के लिये किया जाता है, बुलन्दशहर डिप्टीगंज में प्रेस वरणदूत के पास पच्चीस किलो पारद द्वारा शिव मन्दिर में शिव पिण्डियों का निर्माण-कार्य भक्तजनों के अनुरोध पर किया था। शिव-मन्दिरों में पारद के शिवलिंग की प्राण प्रतिष्ठा करने के इच्छुक भक्तजन सम्पर्क कर सकते हैं।

सम्पर्क-

वैद्य सुभाष चन्द्र

गांव - बिजलीपुर

वाया - सैहड़ा फरीदपुर

खुर्जा - 203131

जि. बुलन्दशहर (उ०प्र०)

दो शब्द

भारतवर्ष में पारदीय ज्ञान का आविर्भाव मनीषियों द्वारा शिव कृपा से अति प्राचीन काल में हो गया था! जो कि कालान्तर में ज्ञान का गोपन हो जाने के कारण आयुर्वेद के क्षेत्र तक सीमित रहकर आज भी रसचिकित्सा के रूप में प्रयोग किया जाता है! तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी पारद का उपयोग अनेक रूपों में किया जाता है! प्राच्य ज्ञान के अवधारण से जो गुण पारद में छुपे हैं यथा-

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्द्रितं शंभुबीजं
स जयति भव सिन्धोः पारदः पारदोऽयम्।।

(रसमंजरी)

अर्थात्- मूर्च्छित पारद होने पर मनुष्यों के समस्त रोगों को दूर करता है, बंधा हुआ खेचरत्व (आकाश गमन) का कराने वाला और जो सभी देवताओं और मुनीश्वरों से नमस्कार किया हुआ शिव वीर्य है उस संसार रूपी समुद्र को पार करने वाले पारद की जय हो।

आज अपर्याप्त ज्ञान के कारण इन पारदीय गुणों की प्राप्ति का साधन न होने से प्राच्य ज्ञान का पारदीय क्षेत्र इतना पिछड़ गया है, आधुनिक विकल्पों के सामने प्राच्य विकल्पों को ढूँढ़ना भी मूर्खता का कार्य माना जाने लगा है। परन्तु जो मानवीय हित इन प्राच्य विकल्पों में छुपा है, वह आधुनिक विकल्पों में नहीं है, आधुनिक विकल्प मानवीय हितों को भौतिकवाद के रूप में जोड़ते है, जबकि प्राच्य पारदीय ज्ञान का स्वरूप मानव को भौतिकवाद से परे अध्यात्म वाद की तरफ ले जाता है! क्योंकि योगादिक क्रियाओं के द्वारा जो अध्यात्म लाभ मनुष्य प्राप्त कर सकता है, वह लाभ पारदीय ज्ञान के द्वारा प्राप्त होने से इसे मोक्ष प्राप्ति का सहज साधन माना गया क्यों कि यौगिक क्रियाऐं इतनी जटिल थीं, जिनकी प्राप्ति का साधन कष्टकारक रूपों में होने से साधक मोक्ष प्राप्ति से पूर्व ही शरीर त्याग देता था, अतः शरीर की रक्षा का साधन मनीषियों द्वारा शिव कृपा से पारदीय ज्ञान के रूप में जानते हुए पारद की सिद्धि से अजर-अमर देह (पिण्डस्थैर्य) कर जन्म-मरण से मुक्त हुआ ही ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्ति का लाभ प्राप्त करना था! अतः इस दृष्टि से मुमुक्षुओं द्वारा पारद की सिद्धि का उपाय कालान्तर में किया जाने से धीरे-धीरे ज्ञान का गोपन होता गया। मध्यकाल में देह वेध की क्रियाऐं लौह वेध के रूप में देखी जाने लगी थी, इस दृष्टि से पारदीय ज्ञान का स्वरूप देह एवं लौहवेध

की प्रयोगात्मक विधियों में अलग-अलग रूप से दृष्टिगोचर होने लगा। जिसका नागार्जुन आदि रसाचार्यों द्वारा बहुत विकास हुआ, जिन्होंने एक बार पुन: प्राच्य ज्ञान को जीवित कर पारद की उपयोगिता को सिद्ध करते हुए चरक-सुश्रुत वाग्भट्टाचार्य आदि मुमुक्षुओं द्वारा पारद का उपयोग-काष्ठादि-औषधियों के संयोग से रसौषधों की कल्पना में करते हुए आयुर्वेद का विकास क्षेत्र मानव-जाति के हितों की रक्षा के लिये किया था।

आज पारदीय ज्ञान प्राच्य पुस्तकों में अव्यवस्थित रूप से बिखरा हुआ धीरे-धीरे लुप्त होता जा रहा है, जिसको पुन: व्यवस्थित कर मानवीय कल्याण की दृष्टि से अवभासित करना आवश्यक समझते हुए; पुस्तक का रचनात्मक स्वरूप स्वानुभव अवलोकन करते हुए जो प्रकट किया गया है वह अध्याहार्य है।

प्राच्य विकल्पों की खोज का कार्य करते हुए मैंने निरन्तर दो दशकों वर्षों तक पारद पर अनुसन्धान करते हुए जो प्रतिबोधन किया है, वह मानवीय कल्याण के प्रति आयुर्वेद के क्षेत्र में एक नई दिशा देने वाला प्रतिसन्धान अभूतपूर्व रूप में देखा जा सकता है तथा विज्ञान के क्षेत्र में पारदीय खेचरत्व गुण को प्राप्त करने की दिशा में बद्ध रूपों से आशा जनक परिणाम की प्राप्ति के रूप में भी प्रयोगात्मक कार्य किया है।

पारदीय ज्ञान के सार्थक रूप को प्राप्त करने की दिशा में जो प्रयास मनीषियों द्वारा किया गया था, उसके स्वरूप को वर्तमान काल में अवलोकन करते हुए पारद तन्त्र विज्ञान नामक इस पुस्तक की रचना का मुख्य उद्देश्य मुमुक्षुओं द्वारा किए गए उन शोध कार्यों से अवगत कराना है, जिनका पारदीय ज्ञान मानवीय जीवन को सुखमय बनाना था; उसे पुनर्जीवित करने की दिशा में जो प्रयास मैंने किया है, उन्हीं छुपे तत्वों का स्वरूप इस पुस्तक में अवधेय है,। पुस्तक का रचनात्मक स्वरूप प्राच्य रसतन्त्रों के अवधारण से अवधार्य है; जिनमें मुख्यत: उदबोधक ग्रन्थ - रस चिन्तामणि, रसरत्नसमुच्चय, रस रत्नाकर, रससार, रसहदय, रसपद्धति, रस चिन्तामणि, रस पारिजात, रसराजपद्धति रसराज शंकर, रसप्रकाश सुधाकर, काक चण्डीश्वर, योगसार, रसेन्द्रचूड़ामणि, योग तरंगिणी, रस सिन्धु, टोडरानन्द, रससारोद्धार पद्धति, निघंटुरत्नाकर, निघण्टुराज, नागार्जुन, रस संकेत कलिका, रसायन सारसंग्रह; रसराजहंस, रसमंजरी धरणीधर संहिता, वैद्यादर्श, योग चिन्तामणि आदि हैं, पुस्तक की विषयवस्तु अध्ययनीय, अध्याहार की दृष्टि से अध्याहार्य रूपों में प्राप्त की जा सकती है, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पुस्तक की विषय-वस्तु आप सभी को मंगल देवे सभी को शुभमंगल कामनाओं के साथ-

भवदीय-

वैद्य सुभाष चन्द्र

विमर्श

प्राच्य ज्ञान का वह पारदीय स्वरूप जो देह एवं लोह वेध की दृष्टि से खेचरत्व गुण वाला, अनेक रस तन्त्रों के माध्यम से वर्णित हुआ है; उन विषय रूपों का उल्लेख पढ़ने-सुनने में तो बहुत अच्छा लगता है, परन्तु उसकी सिद्धि का उपाय वर्तमान काल में असम्भव ही लगता है। आज पारदीय ज्ञान दिशाहीन होकर आयुर्वेद के क्षेत्र में भी दिन प्रति दिन पिछड़ता हुआ पूर्व की भांति सफलीभूत नहीं है। प्राच्य मनीषियों की धारणा से जो पारद मूर्च्छित मारित रूपों से, असाध्य रोगों की चिकित्सा के साथ-साथ जरा व्याधि नाशक था, आज उसका ज्ञान अपर्याप्त ज्ञान के कारण प्राप्त करना सम्भव नहीं दीखता, पूर्वाचार्यों द्वारा किए गए अनुसन्धानों का स्वरूप अवभासित हुआ अष्टादश संस्कारों के रूप में प्राच्य ज्ञान से जुड़ा हुआ दिशा निर्देशन की दृष्टि से विवेचनीय है।

यथा-

भस्मनः शुल्वजीर्णस्य लक्षायुः पलभक्षणात्।
कोट्यायुर्ब्राह्ममायुष्यं वैष्णवं रूद्रजीवितम्।।
द्वित्रिचतुःपंचषष्ठे वा महाकल्पायुरीश्वरः।।

(र.चि., र.रा.शं, नि.र.,र.सा.प.)

अर्थात्- ताम्र जारित पारद भस्म के एक पल सेवन से मनुष्य लक्षायु होता है और दो पल सेवन करने से कोटिवर्ष की आयु हो जाती है, तीन पल का सेवक, ब्रह्मपन चारपल का सेवक विष्णुपन तथा पोचपल का सेवक रुद्रपन को छः पल का सेवन करने पर ईश्वर के समान महा कल्पायु होता है। इसी श्लोक को इसी रूप में रविजीर्ण पारद भस्म के रूप में व्यक्त करते हुए रसार्णव ग्रन्थ में 'ब्रह्मत्वं भास्करेण तु' अर्थात ताम्रजीर्ण पारदभस्म ब्रह्मत्व को प्राप्त कराती है।

इन क्रियाओं का वर्णन पारद के जारणा विधि रूपों से जुड़े जारणसंस्कार में द्रुति क्रिया विधियों से चारण संस्कार के द्वारा पारद में स्वर्ण-रजत ताम्र अभ्रकादि धातुओं को आत्मसात कराते हुए भस्मीभूत करना है। परन्तु आज आयुर्वेदिक फार्मेशियां गंधक पारद के योग से कूपीपक्व रसायनों में स्वर्णदिक भस्म प्राप्त करती हैं, वह संस्कारित गंधक पारद के योग से बनी धात्व भस्म होती है जो विशिष्ट गुण प्रभाव शाली नही होती;। विशिष्ट गुण प्रभावशाली रूपों को प्राप्त करने के लिये बुभुक्षित पारद द्वारा ग्रसित (खायी हुई) धातु के योग से पारद को भस्मीभूत करना होता है जैसा कि ताम्र जीर्ण पारद भस्म का गुण लिखा है, जिनके शोधरूप औषध विशेष गुण की प्राप्ति से निश्चय ही दीर्घायू दाता है,। आज मानवीय जीवन दिन प्रतिदिन अल्पायु को प्राप्त होता जा रहा है, तथा अनेक प्रकार

के असाध्य रोगों से घिरा हुआ असुरक्षित हो गया है, जिसका निवारण प्राच्य ज्ञान के पारदीय गूणों में छुपा होने से उनकी प्राप्ति का साधन करना चाहिए। जिनमें मुख्यतः पारद की जो रोग नाशक शक्ति हैं उसके अनुरूप ही प्राप्ति होने से सिद्ध रसौषधों की प्राप्ति करना सम्भव है; जैसे मृत पारद का लक्षण यथा-

अजेता अगुरुः शुभ्रो लोहहा चंचलो रसः।
यदा नावर्तयेद्वह्नौ नोध्व गच्छेत्तदा मृतः।।

(रसराज सुन्दर, र.रा.शं., रस.सा.प नि.र.,)

अर्थात् - चमक और भारीपन से रहित हुआ हो, श्वेतवर्ण हो, और लौह धातुओं का भक्षण करने वाला चंचलता से रहित होवे, ऐसा पारद अग्नि में ठहरने वाला अर्थात बिना चक्कर खाए उड़ता नहीं है, तब उसको मृत पारद कहते है ;

यहाँ ग्रन्थकार ने पारद को अग्नि स्थायी रूप से प्राप्त करते हुए धातु भक्षण से युक्त गुण को प्रकट करते हुए घनत्व रहित रूप की कल्पना की है। इस दृष्टि से अवस्था भेद को ध्यान में रखते हुए पारदीय संस्कारों की प्राप्ति से उनके रूपों को प्राप्त करना है, ऐसा करने से साधक को सार्थक परिणामों की प्राप्ति से रससिद्धि को प्राप्त करने में सफलता मिल जाती है, अन्यथा बिना रूप रस की कल्पनाओं के अज्ञान से किये जाने वाले कार्य असफल रूप में ही दिखाई देते हैं।

प्राच्य ज्ञान की अवधारणा से मनीषियों ने पारद के षोडश संस्कारों का ही वर्णन किया है बाद के जो दो संस्कार रस क्रियाओं में जोड़े गए हैं, वेध और भक्षण की दृष्टि से अष्टादश संस्कार पारद की सिद्धि के माने गए हैं; जिनमें पहले अष्ट संस्कार - स्वेदन मर्दनादि का जो वर्णन क्रिया रूपों में किया गया है उनका महत्व आयुर्वेद के क्षेत्र में शुद्ध पारद की प्राप्ति का साधन "रस" रूप में मानते हुए रोगों के नाशार्थ अनेक रसौषधों के निर्माण में उसका प्रयोग करना इन अष्टविधि संस्कारों के द्वारा ही माना है;

रसरत्नसमुच्चय आदि रस ग्रन्थों में काष्ठादि औषधियों के संयोग से अष्ट संस्कारित पारद द्वारा बनाई गई बहुत सी रसौषधों की कल्पनाएँ देखने को मिलती हैं, जिनका प्रयोग आयुर्वेद के क्षेत्र में भली भाँति किया जाता है।

ये रसौषध कल्पनाएँ पूर्वाचार्यों द्वारा जो औषधि जिस रोग का निवारण करती थी उसके साथ पारद का प्रयोग करने से उसकी रोग निवारण शक्ति अधिक प्रभाव शाली रूपों में देखी जाने से रस (पारद) का प्रयोग अनेक जड़ी बूंटियों के साथ यौगिक रस कल्पना के रूपों में किया जाने लगा था। परन्तु वर्तमान समय में इन रसौषधों के प्रभावी गुणों पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। अतः मानवीय जीवन के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये पुनः शोध कार्यों द्वारा विषयरूपों को समझते हुए प्रभावशाली रसौषधों के निर्माण की आवश्यकता है। इस दिशा में गन्धकादिक जारण क्रियाओं द्वारा हमें मुमुक्षुओं की धारणा से कार्य करते हुए विशिष्ट प्रभावशाली रसौषधों की प्राप्ति का उपाय करना चाहिए न कि अज्ञानता के वशीभूत निर्मित रसौषधों द्वारा मानवीय जीवन को और भी असुरक्षित किया जाय। क्योंकि

औषधि के रूप में अशुद्ध पारद का प्रयोग मृत्युकारक अनेक प्रकार के विकारों को उत्पन्न करता है। यथा–

हठो रसः स विज्ञेयः सम्यक्शुद्धिनिवर्जितः।
स सेवितो नृणां कुर्यान्मृत्युं व्याधि समुद्धतम्।।

(रसरत्नसमुच्चय, र.सा.प.)

अर्थात- जो पारद अच्छी प्रकार से शुद्ध नहीं किया गया हो, उसको हठरस कहते हैं। जिसका सेवन किया हुआ मनुष्यों को मृत्यु और भयंकर व्याधि करता है। आज अयोग्य रसवैद्यों द्वारा निर्मित रसौषधों का निर्माण स्वास्थ्य लाभ की दृष्टि से अहितकर रूपों में दिखाई देने लगा है! पूर्व- काल में रस चिकित्सा का रूप अमृत की प्राप्ति के जैसा था, जो त्रिविध चिकित्सा रूपों से जुड़ा हुआ देव, मानुष और आसुर भेद से जाना जाता था। यथा–

औषधं त्रिविधं प्रोक्तं देवं मानव मा सुरम्।।

(रस मानस)

इस त्रिविध चिकित्सा में उत्तम चिकित्सा रस चिकित्सा के रूप में ही जानी जाती थी- यथा-

रसवैद्यः स्मृतो वैद्यो मानुषो मूलकादिभिः।
अधमः क्षारदाहाभ्यमित्थं वैद्यस्त्रिधा मतः।।

जो रसचिकित्सा करता था वह वैद्य उत्तम वैद्य की दृष्टि से देव वैद्य कहा जाता था, जड़ी बूंटियों द्वारा चिकित्सा करने वाला मानुष तथा क्षारादि गर्म लोहों से दाध करने वाला अधम वैद्य कहाता था। वैदिक काल में जो रसचिकित्सा का विशेष महत्त्व था उसका मुख्य कारण रसौषध का सेवन असाध्य रोगों की चिकित्सा में शीघ्र फलदायी होता था जरा व्याधि नाशक गुण विशेष की शक्ति उसमें छुपी रहती थी, जबकि जड़ी बूटियों की चिकित्सा अधिक समय लेती थी।

प्राच्य ज्ञान से जुड़े अनुसन्धान केन्द्र एवं शोधकर्ताओं की आज भी कमी नहीं है, परन्तु किसी भी विषय का अपूर्ण ज्ञान कार्य सिद्धि के मार्ग में बाधक होने से साधन युक्त होने पर भी अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती, प्राच्य ज्ञान के अन्वेषणात्मक रूपों में जो यन्त्र मूषादि क्रिया भेद छुपे हैं उनका प्रबोधक रूप जानने का प्रयास जारणादि क्रियाओं में संस्कार भेदों की युक्ति से जुड़ा हुआ पारदीय ज्ञान जो रस तन्त्रों में प्रकट किया गया है, जो कि गहन अध्ययन का विषय क्षेत्र है, क्योंकि प्राच्य ज्ञान से जुड़ी सभी पारदीय जारण क्रियाऐं पारद के ऊर्ध्वपातजन गुण को बांध्रकर उसे अग्नि में स्थापित करने का कार्य करती है; जिनके माध्यम से रससिद्धि का मार्ग प्रशमन रूपों से प्राप्त होने लगता है तथा निश्चय ही, अन्वेषणात्मक रूपों की प्राप्ति भी होती है। इस प्रकार प्राच्य ज्ञान के मद्धे नजर ही अपने शोध कार्य को आगे बढ़ाते हुए मिलने वाली असफलताओं का बार-बार अवलोकन करते हुए उन क्रिया विधि रूपों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए, अभीष्ट कार्य

की सिद्धि का उपाय करना चाहिए, जो कि प्राच्य ज्ञान के विषय रूपों में ही छुपा हुआ है तथा वह बुद्धि विशेष का कार्य माना जाता है। कितने ही साधक रस क्रियाओं से जुड़े अपना समय और पैसा बर्बाद करने के साथ-साथ कुछ भी उपलब्ध नहीं कर पाते हैं। पारद से स्वर्ण बनाने का दिव्य स्वप्न देखते-देखते उनका सम्पूर्ण जीवन बीत जाता है; तथा आयुर्वेद के क्षेत्र में भी आज रस साधकों की असफलताएँ स्पष्ट दीखती हैं। पारद से स्वर्ण बनाने की लौह वेध क्रियाओं का निरूपण शास्त्रों में किया गया है; जिसमें नाग गन्धक स्वर्ण माक्षिक आदि के संयोग से मारित पारद का अग्नि स्थायी भस्म लौह वेधक होता है; मुगल काल में भी एक शायर ने अपनी शायरी में पारद से स्वर्ण बनाने की तरफ इशारा किया था। यथा–

वार किसी बेदाद गर को मारा तो क्या मारा
मार कर देखा न अपने आपको अक्सीर होता
पारे को अक्सीरे गर मरा तो क्या मारा

अर्थात– यहाँ अक्सीर का अर्थ पारद भस्म से है जिसे फारसी में - अक्सीर और संस्कृत भाषा में अमृत कहा है। जिसका अर्थ दो रूपों से जुड़ा है–

पारद मारकर सोना बना लिया तो क्या हुआ, दूसरे शब्दों में इसका भक्षण करना अमृत से तुल्य कहा है; आदि बहुत से अर्थ प्रतीत होते हैं जो पारद से जुड़े हैं जैसे कि चित्त वृत्तियों का निरोध भी वही गुण प्राप्त कराता है जो पारद के भस्म से मिलता है।

बंगला साहित्य में पाव रत्ती वावन तोला की कहावत देखी जा सकती है।

पारद का प्रयोग स्वर्ण निर्माण क्रियाओं में भारत ही नहीं बाहर के देशों में भी देखा गया है जो वर्तमान समय में पूर्णतया कल्पित है; क्योंकि विषय अति सूक्ष्म बुद्धि का होने से प्रतीत नहीं होता है।

रस क्रियाओं से जुड़े अनेक व्यक्तियों से मेरा परिचय रहा है; जिन्होंने अपनी जिन्दगी के आखिरी पड़ाव तक भी हार नहीं मानी थी। आज के अनेक व्यक्ति रस क्रियाओं में गुमराह हुए पारद से स्वर्ण बनाने का प्रयास करते देखे जा सकते हैं; परन्तु असफलताएँ ही उनके जीवन से जुड़ी-रह जाती हैं। क्योंकि प्राच्य काल में यह ज्ञान गुरु-शिष्य परंपरा के अन्तर्गत छुपा हुआ था तथा अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में चले जाने से इसका गोपन किया जाने के कारण कालान्तर में ही विलुप्त हो गया, जिसे पुनः प्राप्त करना दुनियाँ का सबसे अद्भुत कार्य हो सकता है, जिसे वर्तमान विज्ञान क्षेत्र भी छू नहीं सका है; आज मानव चाँद और मंगल तक पहुँच रहा है परन्तु प्राच्य ज्ञान के इन विषय रूपों में अभी तक चुप्पी साधे हुये है। वर्तमान काल में रस सिद्धि की ज्ञान प्राप्ति का सहज मार्ग रसग्रंथों के विषय रूपों में छुपा हुआ होने से, जिसको अन्वेषणात्मक रूप से ही इस पुस्तक में वर्णित किया गया है।

वैद्य सुभाष चन्द्र

●

आभार

पारदीय ज्ञान का स्वरूप जिन प्राच्य रस ग्रन्थों से उद्धृत किया गया है, उनके नाम-

1. रसार्णव
2. रसेन्द्र चूड़ामणि
3. रस रत्न समुच्चय
4. रस सार
5. रसेन्द्र चिन्तामणि
6. रस रत्नाकर
7. रस हृदय
8. रस पारिजात
9. रस पद्धति
10. रस राज शंकर
11. रस रहस्य
12. रसामृत
13. रस संकेत कालिका
14. रस रत्न प्रदीप
15. रसायन सार संग्रह
16. रस राजहंस
17. नागार्जुन
18. टोडरा नन्द
19. निघन्टु राज
20. वैद्य कल्प द्रुम
21. योगतरंगर्णा
22. काक चण्डीश्वर
23. योग सार
24. योग. चिन्तामणि
25. वैद्यादर्श
26. रस प्रकाश सुधाकर
27. रस राज लक्ष्मी
28. रस राज पद्धति
29. रस दर्पण
30. वाच. वृह
31. निघण्टु रत्नाकर
32. रस मानस
33. रस राज सुन्दर
34. रस सिन्धु आदि

विषय सूची

मंगलमय स्तुति — v

सन्देश — vii

दो शब्द — ix

विमर्श — xi

आभार — xv

1. **तन्त्र प्रकरण** — 1-14
   रसग्रन्थों में आने वाले रससिद्ध, रस तन्त्र समय निरूपण, प्रसिद्ध रससिद्धों का परिचय, धातुवेध सम्मति।

2. **पारद का स्वरूप एवं भेद निरूपण** — 15-20
   पारदीय मूर्च्छनादि भेद निरूपण, मूर्च्छित पारद का लक्षण, बद्ध पारद का लक्षण, मृत पारद का लक्षण।

3. **पारदोत्पत्ति प्रकरण** — 21-27
   पारद दोष निरूपण, पंच विध दोषों का निरूपण, दस प्रकार के दोष व उनके अवगुण, पारद के मुख्य दोष।

4. **पारदगुण प्रकरण** — 28-37
   पारदीय अवस्था गुण निरूपण, पारद फल निरूपण-दर्शन फल, स्पर्शन का फल, भक्षण का फल, पूजन का फल, पारद स्मरण का फल, दान का फल, रस विद्या के दान का फल, पारद के शिव लिंग निर्माण भेद से प्राप्त पूजा का फल, पारद निंदक की दशा।

5. **रस निरुक्ति प्रकरण** — 38-41
   रसक्रिया भेद निरूपण, जीवोत्पत्ति का कारण रूप, रसेन्द्र की निरुक्ति, सूत की निरुक्ति, पारद की निरुक्ति।

6. **वनौषधि प्रकरण** — 42-47
   पारद मारण औषधियाँ, पारद को बांधने वाली औषधियाँ, पारद द्रावण-क्रामण-शोधन औषधियाँ, पन्चरत्न अष्ट मूलिका, द्रावण पञ्चक, पारद नियामक औषधियाँ, निर्जीव कारण औषधियाँ, अम्ल वर्ग की औषधियाँ, अजनायिक औषधि का रसकर्म में

प्रयोग, विभिन्न औषधियों का रसकर्म में प्रयोग।

7. **पारद भस्म प्रकरण** 48-54
पारद भस्म-1, पारद की अनुभूत भस्म विधि-2, भस्म सूतम्-3, पारद भस्म-4, 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 13, 14, जड़ी द्वारा पारद भस्म गुण, पारद भस्म-15।

8. **पारद बद्ध प्रकरण** 55-56
प्रयोग विधि, रस (पारद) बन्धन, रस (पारद) बन्धन-मूलिकाबद्ध, रस बन्धन गंध विधि।

9. **अम्लपंचक प्रकरण** 57-60
अम्लवर्ग, वृक्षक्षार, क्षाराष्टक, क्षारत्रय, लवण पंचक, पंच महाविष, मुख्य पांच उपविष, मधुरत्रय, पंचतैल, पंचपित्त, विडगण, मूत्रवर्ग, द्रावण पंचक, श्वेतवर्ग, रक्तवर्ग तथा पित्तवर्ग, कृष्ण वर्ग।

10. **धातु प्रकरण** 61-72
धातुओं के फल का वर्णन, अशुद्ध धातुओं के अवगुण, धातु शोधन हेतु सुगम उपाय, लौहभेद नाम निरूपण, स्वर्ण उत्पत्ति तथा रंगभेद निरुपण, स्वर्ण शुद्धि तथा गुण निरूपण, स्वर्ण भस्म निरूपण व स्वर्ण द्रुति, रजत निरूपण, रजत भस्म विधि, चाँदी के गुण, ताम्र गुण भेद निरूपण, शुद्ध ताम्र लक्षण, ताम्र गुण दोष निरूपण, ताम्र शुद्धि निरूपण, ताम्र रंजन, ताम्र मारण विधि, लोह भेद गुण निरूपण, अशुद्ध लोहे के दोष, लोहे के गुण, लोह शोधन विधि, लोह भस्म की विधि, सोमामृत लौह भस्म विधि, लौह भस्म परिक्षा, वंग तथा नाग भेद गुण निरूपण, वंग के गुण दोषों का निरुपण, वंग नाग शुद्धि, वंग मारण विधि, सीसक मारण विधि निरूपण।

11. **महारस प्रकरण** 73-86
अष्ट महारसों के नाम, आठ उपरसों का वर्णन, अभ्रक भेद, शुद्ध अभ्रक के गुण, अशुद्ध अभ्रक के दोष, अभ्रक शोधन विधि, धान्याभ्रक क्रिया, अभ्रक भस्म विधि, अभ्रक की सत्वपातन विधि, सर्वधातु सत्व विधि, माक्षिक, विमल शोधन विधि, माक्षिक सत्व विधि, माक्षिक सत्व द्रुति विधि, शिलाजीत, शिलाजीत शुद्धि व गुण, चपल-भेद शुद्धि एवं गुण निरूपण, रसक (खपरिया) भेद तथा शोधन और गुण, सस्यक, सस्यक (नाग तांबा) निर्माण विधि, हिंगुल (दरद)- भेद व गुण और शुद्धि, हिंगुल से पारा काढ़ने की विधि, स्रोतोन्जन (सुरमा) लक्षण तथा शोधन विधि, गंधक भेद गुणादि निरूपण, गंधक

शुद्धि, अशुद्ध गंधक दोष, गंधक गुण, गंधक तैल विधि, अन्य तेल विधि, गेरु की शुद्धि और गुण भेद निरूपण, कसीस की शुद्धि एवं गुण, सौराष्ट्रिका (फिटकरी) भेद तथा शोधक विधि, हरताल का शोधन, मैनसिल भेद गुण व शुद्धि निरूपण!

12. पारदीय संस्कार प्रकरण **87-125**

पारद के अठारह संस्कारों के नाम, अष्ट संस्कारों के नाम, उत्तम साधकों का लक्षण, पारद संस्कार विधि निरूपण, स्वेदन संस्कार, मर्दन संस्कार, मूर्च्छन संस्कार, उत्थापन संस्कार, पातन संस्कार, अध: पातन, तिर्य्यकपातन, रोधन संस्कार, नियमन संस्कार, दीपन संस्कार, शुद्धरसस्य मुखकरणम, नवम ग्रास मान संस्कार, अभ्रक जारित पारद लक्षण, चारण संस्कार, गगनी निर्मुख चारण क्रिया, समुख में अभ्रचारण, गर्भद्रुति संस्कार, बाह्यद्रुति संस्कार, अभ्रक द्रुति, अभ्रक द्रुति अंध मूसा में, लौह द्रावण, ताम्रद्रुति, जारण संस्कार, गंधक जारण फल, गुणान्तर गंधक जारण फल, शतगुण जारण फल, दशगुणा गन्धक जारण द्वारा वेध निरूपण, रंजन संस्कार, रस राग क्रिया, रंजन क्रिया, ताम्रबीज, पीताभ्रक सत्वपातन, सारण संस्कार, क्रामण संस्कार, वेध संस्कार, लौह वेध्र निरूपण, शब्द वेध कर्म, अंकोल बीज कल्प, ढाक तैल योग से वेधक, पारद और अभ्रक से रांगादि की चाँदी, सुवर्ण पहेली, वेधक जोड़ का स्वर्ण, वेधक, वेधक नाग, वेधक पारद गन्ध्रक तृणज्योति से।

13. वेध प्रकरण **126-141**

देहवेध निरूपण, पारद सेवन करने से पूर्व कर्म, पारद सेवन के अयोग्य पुरुष, रस सेवन योग्य अवस्थाकाल, पंचकर्म के अयोग्य प्राणी, क्षेत्रीकरण, हेमादिजीर्ण भेद से रस भस्म भक्षण फल, धात्वादि पारद जीर्ण (रस भक्षण) से, आयु प्रमाण, स्वर्णजीर्ण रसभक्षण फल, मूर्च्छित और मृत पारद का आयु लक्षण, मूर्च्छित अवस्थाओं का प्रयोग, पारद सेवन विधि निरूपण, रस सेवन मात्रा, हेमजीर्णादि मात्रामान, अभ्रक जीर्ण पारद भक्षण का फल, पारद भक्षण के विविध उपाय, पारद भक्षण का समय, पारद सेवन का अनुपान, रस मात्रा का घटाव-बढ़ाव, पारद सेवन काल में निषिद्ध भोजन, पारद सेवी के त्याज्य कर्म, पारद सेवन काल में पथ्य, पारद विकार शोधन, पारस (रस) अजीर्ण होने पर अनेक उपद्रव, रस अजीर्ण में संक्रामण पान, देह सिद्ध द्वारा वेध्र निरूपण, वेधानुसार पारद का वर्णन।

14. रस-जारण प्रकरण **142-150**
रस-जारण का स्वरूप, कूपी पक्व-हरगौरी रस, रस सिन्दूर, कूपी में गन्धक जारण, भूधर यंत्र से गन्धक जारण (अन्तधूर्म), खर्पर द्वारा गन्धक जारण (बहिधूर्म), अन्तर्धूम गन्धक जारण कूपि द्वारा, चन्द्रोदयादि विधि निरूपण, त्रिनेत्र रसविधि, योगवाही रस विधि का निरूपण, गंधामृत रस, रस कपूर विधि, स्वर्णादि जीर्ण पारद के गुण, हरताल सूत बन्ध।

15. यन्त्र प्रकरण **151-170**
यन्त्र क्रिया स्वरूप का निरूपण, दोला यन्त्र, स्वेदन यन्त्र, विद्या धर यन्त्र, डमरु यन्त्र, अध: पातन यन्त्र, तिर्यक पातन यन्त्र, कच्छप यन्त्र, सोभानल यन्त्र, जल यन्त्र, इष्टका यन्त्र, हंसपाक यन्त्र का निरूपण, गर्भ यन्त्र, बालुका यन्त्र, भूधर यन्त्र, रसकर्म में रसक्षय का विचार, मूषा भेद निरूपण, सम्पुटमान, मूषादि उपयोगी मिट्टी, मूषा प्रशंसा, वज्रमूषा, योगमूषा, वरमूषा, वर्णमूषा, भस्ममूषा, विडमूषा, मल्लमूषा, गोस्तनीमूषा, पक्वमूषा, मूषा के भेद स्वरूप तथा कार्य, प्रकाशमूषा, अन्धमूषा, मुद्रा निरूपण, भस्ममुद्रा, वज्रमुद्रा, जलमुद्रा, मदनमुद्रा, रस निगड।

16. खेचर प्रकरण **171-183**
स्वानुभव खेचरी गुटिका निरूपण।

17. स्वानुभूत प्रकरण **184-190**
स्वानुभव प्राप्ति, तामेश्वरी महीमय पात्र, ताम्ररस, मूर्ति निर्माण, मूर्च्छित रस भस्म, तत्वज्ञान का अनुभूत निरूपण, पारद का प्राकृतिक गुण, मूर्च्छित पारद का गुण, शीत-ऊष्ण प्रकृति भेद का निरूपण।

प्रकरण - 1

तन्त्र प्रकरण

शास्त्रों में तन्त्र शब्द का व्यापक अर्थ है महादेव द्वारा पार्वती को कहा हुआ एक शास्त्र जिसका मूल उद्देश्य मानव कल्याण के प्रति था, वेद की एक शाखा, आनन्द, घर, सम्पत्ति, राज्य शासन, दल समुदाय, सूत, तथा कुटुम्ब के पालन पोषण का कार्य, दृढ़, प्रमाण विचार, औषधि, झड़ने फूकने का मन्त्र उपाय, कारण, कर्त्तव्य, धर्म, राज्य का प्रबन्ध आदि तन्त्र शब्द के अनेक पर्याय है, जिनका सम्बोधन मानवीय कल्याण की दृष्टि से अनेक शास्त्र रूपों में किया गया है, जिनसे पता चलता है तन्त्र का वास्तविक अर्थ ही कल्याण कारक है।

भारत वर्ष में तन्त्रों का प्रयोग अति प्राचीन काल से विविध रूपों में हुआ है जिनमें मुख्यत: शिव उपदिष्ट तन्त्रों का स्वरूप मानवीय जीवन की रक्षा व मुक्ति के साधन स्वरूप दो रूपों में देखा गया है

1. रस मूलक
2. वायु मूलक

1. रस मूलक

तन्त्रों में जरा-व्याधि नाशक (पिण्डस्थैर्य) अजर अमर शरीर की कल्पना से मोक्ष प्राप्ति के हेतु रस (पारद) की सिद्धि के उपायों का वर्णन मिलता है, जिनके मुख्यत: देह वेध एवं लौह वेध के स्वरूपों का वर्णन रस सिद्ध क्रियाओं द्वारा किया गया है।

2. वायु मूलक

तन्त्रों का प्रादुर्भाव भी जरा-व्याधि नाशक (पिण्डस्थैर्य) अजर-अमर शरीर की कल्पना से मोक्ष प्राप्ति के हेतु वायु की सिद्धि के उपायों द्वारा मोक्ष प्राप्ति के साधनों का वर्णन मिलता है।

आदिकाल से ही मानव उन साधनों की खोज में लगा हुआ था जिनके द्वारा काल पाश से छूटकर ईश्वर प्राप्ति का साधन कर अपने अन्तिम लक्ष्य जन्म मरण से मुक्त-मोक्ष को प्राप्त हो सके।

क्योंकि धर्म अर्थ और काम इन तीनों उद्देश्यों की प्राप्ति तो निश्चय ही सहज थी परन्तु अन्तिम उद्देश्य मोक्ष प्राप्ति का साधन सहज नहीं था; अनेक व्याधि रूप कारणों से जीवन मोक्ष प्राप्ति से पूर्व ही समाप्त हो जाता था, जिसको निवारण स्वरूप शिवकृपा से रस मूलक एवं वायु मूलक क्रियाओं का विशिष्ट तन्त्र प्रकट हुआ, इन दोनो तन्त्रो में वायु मूलक तन्त्र का स्वरूप क्रियाभेदों से प्राणायामादि वायु निरोध करने से अति कष्ट कारक होने के साथ-साथ साधक की मृत्यु का भी भय बना रहता था। रस मूलक क्रियाएँ वायु

मूलक क्रियाओं की अपेक्षा जीवन रक्षा के प्रति सहज एवं सरल थी अतः मोक्ष प्राप्ति के हेतु मुमुक्षुओं का ध्यान पारद की तरफ अधिक आकर्षित हुआ। इसी अवधारणा को लेकर पारद को ही मोक्ष प्राप्ति का सहज साधन मानकर अनेक अनुसन्धानात्मक कार्य किये जिनके द्वारा उन्हें सफलताएँ भी प्राप्त होने लगी थी। इस प्रकार रससिद्ध हुए तन्त्रज्ञ-महासिद्ध, रससिद्ध और नाथसिद्ध आदि अनेक रूपों में प्रकट होकर अपने अपने तन्त्रो का विकास करने लगे। महासिद्ध वे ऋषि-मुनि कहलाए जिन्होंने बायु मूलक क्रियाओं द्वारा शरीर में- षट्चक्रों का भेदन कर हठयोगादि की प्रक्रियाओं द्वारा राजयोग की प्राप्ति कर अपने को जन्म मरण से मुक्त कर अष्टादिक सिद्धियों का लाभ प्राप्त कर लिया था, तथा विशिष्ट आत्म लाभ की प्राप्ति से मोक्षरूप से समाधिस्थ महायोगी कहलाए। इन महायोगियों को अपनी विशेष अन्तर्दृष्टि द्वारा रस ज्ञान होने से पारद विषयक क्रियाओं से जुड़े तन्त्रो के जनक रूप से जाना गया। रस रत्नाकर, रस रत्न समुच्य तथा आनन्द कंद आदि रस ग्रन्थो में इनकी गणना महासिद्धो में मिलती है। ये महा सिद्ध योगी तन्त्र जनक के रूप में देखे अपनाये तो जाते थे परन्तु मुख्यतः तन्त्र जनक भगवान शंकर को ही माना गया। प्रारम्भिक इतिहास पर शोध करने से तन्त्रों का प्रादुर्भाव अथर्ववेद में मिलता है, जिसके कारण स्वरूप तन्त्र अति प्राचीन मानवीय जाति के साथ ही प्रकट हुए जिनका स्वरूप धीरे-धीरे अनेक रूपों में रस प्रधान काल की दृष्टि से आसुरी-दैवी और मानुसी चिकित्सा के रूप में फैलता गया। यथा-

सा दैवी प्रथमा सुसंस्कृतरसैर्या निर्मिता स्याद्रसैः
चूर्ण-स्नेह-कषाय-लेह-रचिता स्यान्मानवी मध्यमा।
शस्त्रच्छेदन लास्यलक्षणकृता चाराधना साऽसुरी
त्यायुर्वेदरहस्यमेतदखिलं लिखक्ष्चिकित्सा मता।।

(रसपद्धति)

जिस प्रकार अष्टांग आयुर्वेद प्रवर्त्तक के रूप में ब्रह्मा का उल्लेंख मिलता है, उसी प्रकार रस विद्या के प्रवर्त्तक के रूप में आदि देव महायोगेश्वर शिव (महेश-महेश्वर) भगवान शंकर के रूप में सृष्टि का बीजरूप रस होने से जो उल्लेंख रस रत्न समुच्यकार ने दिया हैं। यथा-

रसविद्या शिवेनोक्ता दातव्या साधकाय वै।

(रसरत्न समुच्य अ. 6/27)

इसलिये रस विद्या के वर्णन कर्त्ता (रसतन्त्र) प्रवर्त्तक शिव ही है. जो कि महेश, महेश्वर तथा शंकर नाम से भी प्रसिद्ध लोकोपकारक, भोले नाथ के नाम से भी जाने गए है। जो कि जीवन्मुक्त देव रससिद्ध महायोगी कहलाए; रसेश्वर दर्शनकार श्री माधवा चार्य ने रसेश्वर सिद्धान्त ग्रन्थ के आधार पर जीवन्मुक्त रससिद्धो को चार भागों में विभक्त किया है।

1. देव रस सिद्ध - महेश- (शिव) आदि
2. दैत्य रस सिद्ध - शुक्राचार्य आदि

3. मुनि रस सिद्ध - वशिष्ट - कपिल - बालखिल्य तथा नारद आदि
4. मानव रस सिद्ध - नृपसोमेश्वर वाणासुर तथा नागार्जुन आदि। जैसे–

देवदैत्यमुनिमानवादिषु बहवो रससामर्थ्याद् दिव्यं देहमश्रित्य जीवन्मुक्तिमाश्रिताः श्रूयन्ते रसेश्वरसिद्धान्तेः–

देवाः केचिन्महेशाद्या दैव्याः काव्यपुरस्सराः।
मुनयो बालखिल्याद्याः नृपाः सोमेश्वरादद्यः।।
गोविन्दभगवत्पादाचार्यो गोविन्दनायकः।
चर्पटिः कपिलो व्याडिः कापालिकन्दलायनः।।
एतेऽन्ये बहवः सिद्धा जीवन्मुक्ताश्चरन्ति हि।
तनुं रसमयीं प्राप्तं तदात्मककथाचणाः।।

(रसेश्वर दर्शन 23-16)

रस तन्त्र के प्रचार एवं प्रसार का कार्य महायोगेश्वर शिव के माध्यम से आदि काल में प्रवर्त्तित महादेवी पार्वती ने अपने स्वामी भोलेनाथ से सुना था, बाद में उनके दोनों पुत्र गृहकार्तिकेय तथा विनायक गणेश व उनके प्रमुख गण वीरभद्र, देवगुरु वृहस्पति और उनके शिष्य चन्द्र आदि देव रस सिद्धो ने तथा दैत्यगुरु शुक्राचार्य और देवर्षिनारद और बालखिल्य आदि मुनि रस सिद्धो ने तथा नागार्जुन आदि अनेक मानव रस सिद्धो ने अपने अपने शिष्यों को इसकी शिक्षा देकर-रस तन्त्रों का निर्माण कार्य किया; इनके रसतन्त्रो के नामों का उल्लेंख-गोरक्ष संहिता और वृहद्योगतरंगिणी और बड़ौदा से प्रकाशित कवीन्द्राचार्य सूची पत्रों में तथा और भी अनेक प्राप्त ग्रन्थों में मिलता है।

1. शिव रचित शिवागम (रस तन्त्र) का उल्लेंख वृहद्योगततरंगणी के 42वें तरंग में तीन वार आया है।
2. उमा (पार्वती) रचित - रसोपनिषद् रसतंत्र (6000 श्लोक) का उल्लेख गोरक्ष-संहिता रसतन्त्र में मिलता है!
3. गुह (कार्तिकेय) रचित महोदय रसतन्त्र (6000 श्लोक) का उद्‌बोध गोरक्ष-संहिता रसतन्त्र में मिलता है)
4. विनायक (गणेश) रचित रसोदय रसतन्त्र (8000 श्लोक) का उल्लेख भी गोरक्ष-सहिंता रसतंत्र में मिलता है।
5. वीरभद्र (गण) रचित महाद्भुत रस तंत्र (6000 श्लोक) का उल्लेख भी गोरक्ष-सहिंता रस तंत्र में मिलता है।
6. देव गुरु वृहस्पति रचित रस चक्ररस तन्त्र (8000 श्लोक) का उल्लेख गोरक्ष-सहिंता रस तन्त्र में दिया है।
7. चन्द्र रचित रसांकुश रसतंत्र (100000 श्लोक) का उल्लेख गोरक्ष संहिता रसतंत्र में मिलता है।
8. शुक्राचार्य रचित रसावलोक रसतन्त्र (6000 श्लोक) का उल्लेख गोरक्ष संहिता में मिलता है।

9. आदिम चन्द्रसैन नागार्जुन आदि रसरत्नसमुच्चय (अ० 1/2-4) में निर्दिष्ट 26 रससिद्धों के नाम व उनके रचे रसतन्त्रों का उल्लेख प्राप्त है–

रसग्रन्थों में आने वाले रससिद्ध

1. व्याडि आचार्य	2. चन्द्रसेन	3. सुबुद्धि (सिद्ध बुद्ध)
4. नरवाहन	5. नागार्जुन	6. रसकोश
7. सुरानन्द	8. यशोधन	9. इन्द्रद्युम्न
10. माण्डव्य	11. चर्पटी	12.शूरसेन
13. आगम	14. नागबोधि	15. खण्ड
16. कापालिक	17. कापाली	18. तात्विक
19. शंभु	20. लंकेश	21. लम्पट
22. शारद (विशारद)	23. बाणासुर	24. मुनिश्रेष्ठ
25. गोविन्द	26. कपिल	27. बलि

(र० र० अध्याय 1/6) से सात श्लोक में और भी नाम दिये हैं। यथा–

1. रसाकुश	6. काकचण्डीश्वर	11. मैथिल
2. लेख	7. वासुदेव	12. महादेव
3. नन्दी	8. ऋषि श्रृंग	13. नरेन्द्र योगी
4. स्वच्छन्द भैरव	9. रसेन्द्र तिलक योगी	14. रत्नाकर
5. मंथान भैरव	10. भालुकी	15. हरीश्वर

रस रत्नाकर ने केवल 6 रस सिद्धों के ही नाम दिये है–

1. व्याडी 2. सुबुद्धि 3. चर्पटी 4. आगम 5. मुनिश्रेष्ठ 6. बाणासुर

आनन्द कन्द के रसतन्त्र में निर्दिष्ट सिद्ध दस हैं।

1. घोड़ा चोली	2. मील	3. कोरण्ड
4. सूर्यकर्ण	5. मुक्तापी	6. रेवण
7. कुक्कुरपाद	8. सूर्यपाद	9. कणेरिक
10. किंकिणक।		

रसेश्वर दर्शन में चार नामों का मानव सिद्धों के रूप में उल्लेंख किया है–

1. सोमेश्वर	2. गोविन्द भगवत्पादाचार्य।
3. गोविन्द नायक	4. कन्दसायन

रस रत्न प्रदीप में दो ही रस सिद्धों को गिना है– 1. शिव 2. दामोदर।

हठयोग प्रदीपका में एक ही नाम पूज्यपाद का दिया है रसेन्द्र मंगल में दो नाम और है वशिष्ठ, श्रीनाथ। इसी प्रकार वर्ण रत्नाकर में निर्दिष्ट रससिद्ध दो और हैं 1. कंकालयोगी

2. धर्मपाल राजतरंगिणी में दो हैं- 1. कोकण वर्ण 2. चकुण। इस प्रकार नामों की संख्या अनेक हैं जिनका कोई उल्लेख विशेष तो कुछ नहीं दिखाई पड़ता है। परन्तु उनके योग ग्रन्थों में मिलते है अतः यह संख्या अधिक भी हो सकती है इस प्रकार अनेक सिद्धों के अनेक तन्त्र स्वयं प्रकट हुए है।

नाथ सम्प्रदाय में भी कई सिद्ध महात्मा योगी हुए है। आनन्द कन्द में नाथ सिद्धों की नामावली में 9 सिद्धों का उल्लेख मिलता है– 1. आदि नाथ, 2. मीननाथ, 3. गोरक्षनाथ, कोकणेश्वर 4. ज्वालंध्रेश (जालन्धरनाथ), 5. कन्थनीश, 6. उड्डीका, 8. चिंचिणीश्वर, 9. चौरंगी (आनन्दकंद अमृतीकरण विश्रान्ति उल्लासं - 3 (37-48)।

गोरक्षनाथ रचित ह० यो० प्र० में 31 सिद्धो के नाम हैं जिनमें सात नाथ सिद्ध रसतन्त्र प्रवर्त्तको में भी है यथा :- 1. आदिनाथ, 2. मत्स्येन्द्र नाथ, 3. चौरंगी, 4. मीन नाथ, 5. गोरक्ष नाथ, 6. कन्थडी, 7. नित्यनाथ- इस प्रकार अनेक रससिद्ध है और उनके रसतन्त्र आज दुर्लभ है।

गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत रससिद्ध सम्प्रदाय के दस सिद्धो का नाम मिलता है। द्रविण में इनके दो सम्प्रदाय है। पहला- शिव व पार्वती से ही इनका प्रारम्भ काल होता है एक के बाद दूसरे को रस ज्ञान देने की गुरु शिष्य परम्परा के अन्तर्गत इसमें शिव ही रस तन्त्र के मुख्य प्रवर्त्तक है।

अतः क्रमशः 1. शिव, 2. पार्वती, 3. नन्दी, 4. अश्वनी, 5. विश्वनी, 6. धन्वन्तरि, 7. अगस्त्य, 8. पुलस्त्य, 9. तैय्यर, 10. यूहिमुनि – इसमें गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत एक के वाद दूसरे को ज्ञान मिला इस प्रकार शिव-पार्वती से रस ज्ञान क्रमशः फैला। द्वितीय मत यह है कि रससिद्ध नन्दी से मूलनाथ (आदिम तिरुमूली) ने शिक्षा प्राप्त की उनसे कालांगनाथ आदि 18 रस गुरु-शिष्य परम्परा में उल्लेंखित हुए है यथा–

1. नन्दी	2. मूलनाथ (आदिमतिरुमूलि)	3. कालांगनाथ
4. भोग	5. कंकण	6. अगस्त्य
7. पुलस्त्य	8. रोममुनि	9. धन्वन्तरि
10. घोड़ा चोली (शहेमुनि)	11. मत्स्यमुनि	12. कण्ड
13. त्रिनिनाकीश	14. पूहिमुनि	15. गोरक्ष
16. तैय्यर	17. इडैक्कार	18. भैरव

श्री सोम देव शर्मा सारस्वत ने रस सिद्ध विमर्श में इनका नाम विस्तार से दिया है।

रस सिद्ध माहेश्वर मत से रसेश्वर दर्शन अनुयायी जीवन्मुक्त शैवयोगी कहलाते थे यथा देवसिद्ध महेश, महेश्वर, शंकर, शिव, उमा, नन्दी, भैरव आदि।

आज प्राचीन ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध रसार्णव भी श्री भैरव उवाच आदि सकेतों

को लेकर महादेव द्वारा पार्वती को दिए गए रस ज्ञान के रूप में लिखा गया है, इसी प्रकार रस ज्ञान से जुड़े अनेक तन्त्रों का स्वरूप किसी व्यक्ति विशेष के रूप से प्रकट नहीं हुआ है।

रस तन्त्र समय निरूपण

अनेक ग्रन्थों के अध्ययन के पता चलता है रसतन्त्र काल तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है

1. प्राचीन काल
2. मध्यकाल
3. अर्वाचीन काल

रस तन्त्र के प्रवर्त्तक देव रस सिद्ध महादेव (शिव) से लेकर तन्त्र प्रचारक एवं प्रसारक दैत्य। मुनि और मानव रस सिद्धों का सिद्ध तन्त्र साहित्य है। यह प्राचीन कालीन रस शास्त्रीय साहित्य के रूप में है। आज इसके रसार्णव, रसहृदय; रसोपनिसद- कक्षपुट आनन्दकन्द, गोरक्ष संहिता तथा रस रत्नाकर और रससार आदि रसतन्त्र उपलब्ध हैं परन्तु उनमें वर्णित देह वेध एवं लोह वेध से जुड़ी वर्णित क्रियाऐं सिद्धि उपायो से वंचित है-

मध्य कालीन रसतंत्र उन्नीसवी शताब्दी तक के टीकाकारों द्वारा रस रत्न प्रदीपं रसेन्द्र चूड़ामणि, रस रत्न समुच्चय तथा रसेन्द्र चिन्तामणि, रस प्रकार सुधाकर; रस मञ्जरी रसेन्द्र सार संग्रह, रससंकेत कलिका, रस पद्धति आयुर्वेद, प्रकाश और रसकौमुदी: रसकामधेनु आदि कुछ रस तन्त्र उपलब्ध हैं।

अर्वाचीन कालीन रस शास्त्र - बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से वर्तमान समय तक शास्त्रज्ञों द्वारा रचित ग्रन्थों के रूप में दिखाई पड़ते है, इनमें रसायनसार पारद संहिता, रसामृत, रसतरंगिणी, रस जलनिधि, रस रत्न दीपिका, रसयोग, रस-चिकित्सा, रसेन्द्र सम्प्रदाय, रसोद्धार तन्त्र, रसमिज: तथा- रस चिकित्सा विमर्श और अभिनव रसशास्त्र आदि अनेक नामों का उल्लेंख ग्रन्थालयों में प्रकाशित हुआ है जिनमें प्राच्य ग्रन्थों की टीकाएँ श्लोकबद्ध तरीके से कर पारद से जुड़े प्राच्यज्ञान के स्वरूप को अपने तरीके से प्रकट करने का प्रयास अवश्य किया गया है।

प्रसिद्ध रससिद्धों का परिचय

कुछ प्रसिद्ध रस सिद्धों का परिचय सोमदेव शर्मा सारस्वत जी ने अपनी पुस्तक अभिनव रस शास्त्र में लिखा है यथा-

1. रस सिद्ध नन्दी

रससिद्ध नन्दी के नाम का निर्देश रसेन्द्र चूड़ामणि; रसरत्नसमुच्चय तथा रस प्रकाश सुधाकर नामक रस ग्रन्थों में और आनन्द कन्द तथा दक्षिण भारत में प्रसिद्ध 18 द्रविण रस सिद्धो से प्राप्त होता है रसेन्द्र चूड़ा मणि में इनका नन्दीकेश्वर और रसप्रकाश सुधाकर

में नन्दीराज नाम भी मिलता है; दक्षिणी भारत के द्रविण रस सिद्धो की गुरु-शिष्य परम्परा के अन्तर्गत यह पार्वती के शिष्य और अश्वणी रससिद्ध के गुरु थे, इस गुरु-शिष्य परम्परा का उल्लेंख यूही मुनि के वादसाहस्री ग्रन्थ में किया है रससिद्ध नन्दी ने पारद का शोधन विधि का अविष्कार कर पारद को दोष मुक्त कर पारद के विशिष्ट सस्कारों में क्रामण आदि विधि का अविष्कार किया था तथा पारद की भस्म बनाकर उसका प्रयोग भी किया जिसका उल्लेख रसेन्द्र चूड़ामणि में मिलता है; पारद द्वारा स्वर्ण निर्माण करने वाली हेम क्रिया के भी ये विशेषज्ञ थे जिसका उल्लेंख रस प्रकाश सुधाकर में मिलता है; रस सिद्धोपयोगी यन्त्रों के स्वरूप की प्रकल्पना से उर्ध्वपातन- नाभियन्त्र; धूपयन्त्र, कोष्टिका तथा पाताल कोष्टिका आदि यन्त्रों का निर्माण कर ताम्र और लौह की शोधन विधि का अविष्कार नन्दी ने किया था।

रससिद्ध नन्दी ने अपना नन्दीतन्त्र नामक रस ग्रन्थ भी बनाया था जिसका उल्लेंख बड़ोदा में मुद्रित कविन्द्राचार्य के सूचीपत्र में पृ० 16 क्रमांक 967 पर मिलता है,

रससिद्ध नन्दी रस विद्याओं के ज्ञाता थे रस चिकित्सा के क्षेत्र में भी उनके महत्वपूर्ण योगदान का विवरण मिलता है; शार्ङ्गधर संहिता की दीपिका व्याख्या के कर्त्ता श्री आढ़मतध द्वारा उद्धृत निम्न श्लोक से ज्ञात होता है यथा-

अस्थ्नः प्रकोष्ठाद्वाहयस्थ्यमध्यमानामिकासिता।
जीवनाऽीति सा प्रोक्ता नन्दिना तत्त्ववेदिना।।

(शा. सं.)

इस श्लोक से यह भी प्रमाणित होता है कि नाड़ी परीक्षा का आविष्कार नन्दी आदि रससिद्धों द्वारा हुआ। नन्दी के बनाए रोगनाशक सिद्ध योग विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। बारहवीं शताब्दी में विद्यमान राजा सोमदेव ने अपने रसेन्द्र चूणामणि नामक ग्रन्थ में रससिद्ध नन्दी का मत प्रकट किया है, अतः नन्दी इससे पूर्व दशवी शताब्दी का हो सकता है।

2. रससिद्ध गोविन्द भगवत्पादाचार्य (गोविन्द भिक्षु)

रससिद्ध गोविन्द भगवत्पादाचार्य के नाम का उल्लेख आचार्य माधव ने अपने सर्व-दर्शन संग्रह ग्रन्थ के रसेश्वर दर्शन प्रकरण में सम्मान पूर्वक किया है। श्री रामराज नृप ने रसरत्नप्रदीप ग्रन्थ में और नृप सोमदेव ने भी अपने रसेन्द्र चूड़ामणि ग्रन्थ में इनके नामका निर्देश आदर पूर्वक किया है; तथा' रसाचार्य वागभट्ट ने अपने रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थ में इनके लिखे हुए 27 आर्या छन्द उद्धृत किये है। रससिद्ध गोविन्द भगवत्पादाचार्य का वास्तविक नाम गोविन्द था, सन्यास लेने के पश्चात भिक्षु गोविन्द नाम से यह प्रसिद्ध हुए थे तथा ज्ञानी एवं विद्वान सन्यासी होने के कारण यह गोविन्द भगवत्यादाचार्य नाम से विख्यात हो गए थे, इन्होंने अपने बनाए रस हृदय तन्त्र में अपना परिचय स्वयं लिखा है और ग्रन्थ के अन्त में अपना नाम भिक्षु गोविन्द लिखा है।

गोविन्द भगवत्पादाचार्य के पितामह मंगल विष्णु और पिता सुमनु विष्णु था, करात देश के अधिपति चन्द्रवंशी हैहयकुल में उत्पन्न महाराजा मदन से सम्मान प्राप्त कर रस क्रियाओं में तत्पर रहा करते थे। महाराजा मदन स्वयं भी रम विद्या में प्रवीण रसाचार्य थे, इसलिये उनकी सहायता से भिक्षु गोविन्द रस क्रियाओं का पूर्ण अनुभव कर रस हृदय तन्त्र बनाने में सफल हुये थे। आद्य शंकराचार्य ने अपने को गोविन्द भागवत्पाद का शिष्य कहा है, जबकि शंकराचार्य का समय आठवीं शताब्दी का उत्तरार्ध है इसीलिये श्री गोविन्द भगवत्पाद का समय भी आठवीं शताब्दी का सिद्ध होता है। रससिद्ध गोविन्द भगवत्पादाचार्य ने रसहृदयतन्त्र नाम के एक रस तन्त्र का निर्माण किया जिसमें पारद की महिमा और उसके सेवन से दिव्य शरीर प्राप्त कर जीवन मुक्ति की प्राप्ति बताकर पारद के अठारह संस्कारो को विस्तार पूर्वक आर्याछन्दों में वर्णन किया गया है।

3. रससिद्ध नागार्जुन

पारद क्रियाओं से जुड़े नागार्जुन नाम के एक नही बल्कि बहुत से व्यक्तियों का पता चलता है।

1. बोधिसत्व राजा नागार्जुन (राज तरंगिणी, तरंग-1 श्लोक 172-173)।
2. बोधिसत्त्व मन्त्री रससिद्ध नागार्जुन (प्रथम) (वृहत्कथा श्लोक संग्रह, कथा सरित्सागर) और बृहत्कथामंजरी।
3. सुश्रुत संहिता का प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन (सुश्रुत संहिता की डल्हण कृत निबन्ध संग्रह व्याख्या)।
4. अगदतन्त्रकार नागार्जुन („ „ „ „ „)।
5. भदन्त नागार्जुन (रस वैशेषिक सूत्र ग्रन्थ का रचयिता)।
6. नागार्जुन नागेश (रस कक्षपुट का कर्त्ता)।
7. रससिद्ध नागार्जुन (द्वितीय) (प्रभावकचरित विविध तीर्थ कल्प प्रबन्ध चिन्तामणि, प्रबन्ध कोश)।
8. रससिद्ध नागार्जुन (तृतीय) (हरि प्रसाद शास्त्री कृत बौद्धगान और दोहा आदि भोट भाषा के ग्रन्थ)।

इन उपर्युक्त नागार्जुनों में क्रमांक 1-2-7 के नागार्जुन बोधिसत्त्व के अंशावतार क्रमशः राजा-मन्त्री और लौह सिद्धि के ज्ञाता माने जाते थे। क्रमांक तीन चार पाँच और छः के नागार्जुन आयुर्वेद के विद्वान अवश्य थे, किन्तु पारद से प्राप्त लौह सिद्धि और देह सिद्धि के ज्ञाता नहीं थे।

नागार्जुन तृतीय

भोट (तिब्बत) देशीय ग्रन्थों के आधार पर श्री पं० हरप्रसाद शास्त्री ने अपने-बौद्ध गान और दोहा ग्रन्थ में रससिद्ध नागार्जुन तृतीय का वृत्तान्त दिया है।

नागार्जुन जब बच्चें ही थे, उन्हें नालन्दा के मुख्याधिष्ठाता सरहभद्र ने भिक्षु बना लिया था। इनका जन्म एक ब्राह्मण कुल में हुआ था, जिसे किसी कारण बस ब्राह्मण ने बालक नागार्जुन को नालन्दा (बिहार) छोड़ दिया था। वही रहकर नागार्जुन ने बौद्धधर्म और रसतन्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी, प्रखर बुद्धि के कारण वह रसतन्त्र क्रियाओं में पारंगत हो गया था, कुछ वर्ष पश्चात् वहॉ बहुत बड़ा अकाल पड़ा जिसके कारण अन्नादि के अभाव में भिक्षु दुःखी हुए उनका दुःख दूर करने की दृष्टि से नागार्जुन ने लोहवेध क्रिया द्वारा बहुत सा स्वर्ण बनाकर नालन्दा के भिक्षुओं के लिये बहुत से अन्न आदि की सुव्यवस्था की थी उसके पश्चात नागार्जुन दक्षिणी भारत के श्री शैल (श्री पर्वत) पर निवास करते थे।

नागार्जुन ने नालन्दा (बिहार के विश्वविद्यालय) में रहते हुए वहाँ के प्रसिद्ध रस तंत्र गुण से रस सिद्ध वशिष्ठ और माण्डव रचित रस तन्त्रों को पढ़कर महारस एवं उपरस की क्रिया विधियों द्वारा पारद को सिद्ध करने की क्रिया विधि का ज्ञान प्राप्त किया था। बाद में श्री शैल पर्वत पर जाकर रस सिद्धि के लिये कठिन तप भी किया था, और यक्षिणी को प्रसन्न कर दुर्लभ रसबन्ध (पारद बन्धन) की साधन विधि का ज्ञान प्राप्त किया, तत्पश्चात नागार्जुन ने अपने मित्र राजा सालवान की सहायता से रस विद्या के क्रिया भेदों का प्रयोगात्मक रूप प्रकट करते हुए, उस समय के प्रसिद्ध शाम्भव तन्त्र, शैव तन्त्र, यामल तन्त्र, शकतन्त्र, मौलतन्त्र, कौलेयतन्त्र, डामरतन्त्र, स्वच्छन्दतन्त्र, नाकुल तन्त्र, वातुल तन्त्र, काक- चण्डीश्वर तन्त्र, हरमेखला तन्त्र आदि का भी गहरा अध्ययन किया था।

भोट देशीय ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि नागार्जुन ने आदि शंकराचार्य के मत का खण्डन किया था, और शंकरा चार्य का समय 788 ई० से 820 ई० तक है, तथा दूसरे प्रभाग के रूप में नागार्जुन के साथ आचार्य सरहभद्र से शिक्षा प्राप्त करने आदि प्रमाण से समय 760 ई० से 809 ई० तक है। उक्त दोनों प्रमाण आठवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और नवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान शंकराचार्य और सरहभद्र के समकालीन होने से रस सिद्ध नागार्जुन का समय भी जो कि नागार्जुन तृतीय के नाम से प्रसिद्ध आठवी शताब्दी के आखिर और नवीं शताब्दी के शुरू भाग में माना जाता है।

रससिद्ध नागार्जुन तृतीय के नाम का उल्लेंख – रसरत्नप्रदीप, रसेन्द्रचूड़ामणि, रसप्रकाश सुधाकर, काकचण्डीश्वर, कल्प तन्त्र, लोह सर्वस्व, वृन्द, चक्रदत्त तथा रसौपनिषद नाम के ग्रन्थों में मिलता है; रस रत्नाकर और रसरत्नसमुच्चय में दिए गए सत्ताईस रस सिद्धो की नामावली में भी नागार्जुन नाम का उल्लेख हुआ है।

रस सिद्ध नागार्जुन (तृतीय) पारद द्वारा होने वाली देहसिद्धि और लौहसिद्धि दोनों का ज्ञाता एवं बौद्ध धर्म का अनुयायी होने से बौद्ध धर्म के भी विद्वान थे और महायान मत की स्थापना इन्होंने की थी, इनके संस्कृत और मागधी भाषा में लिखे हुए ग्रन्थों को भोट (तिब्बती) भारत के अनुवाद में तंजूर संग्रह मिलता है, जिनमें से कक्षपुट नाम का ग्रन्थ रसविद्या का है। और शेष ग्रन्थ वज्रयान और महायान के है।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त रस रसायन तथा तन्त्र सम्बन्धी नागार्जुन कृत पुस्तकें निम्नलिखित है–

1. नागार्जुन तन्त्र 2. नागार्जुन सिद्धान्त 3. लौहशास्त्र 4. रस रत्नाकर 5. रसेन्द्र मंगल 6. योगशतकम् 7. चिन्तानन्दपरियसी 8. आरोग्य मंजरी 9. योग रत्नमाला 10. रूद्रयामलतन्त्र 11. सिद्धनागार्जुनीयम् अथवा कक्षपुट।

रससिद्ध नागार्जुन रस चिकित्सा के क्षेत्र में भी अति उच्चकोटि के रसौषध निर्माण क्रिया भेदों से परिचित थे, रस पद्धति; रस संकेत कलिका, रसरत्नसमुच्चय, योग रत्नाकर, रसकामधेनू, काक चण्डीश्वर, आदि औषध कल्प अनेक ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होते हैं।

वाग्भट्ट

यह रस वाग्भट्ट के नाम से प्रसिद्ध सिंह गुप्त के पुत्र थे, जिनका समय तेरहवी शताब्दी के लगभग माना जाता है। इन्होंने रसरत्नसमुच्चय की रचना कर वैद्य समाज को बहुत लाभान्वित किया है।

ढुण्ढुकनाथ

नाथ रससिद्ध श्री ढुण्ढुकनाथ जी श्री कालनाथ के शिष्य हुए थे इन्होंने रसेन्द्र चिन्तामणि नाम का एक रसतन्त्र बनाया, जिसमें इन्होंने ग्यारहवी शताब्दी के विद्यमान सिद्ध नित्यनाथ द्वारा निर्मित "कामेश्वर मोदक" प्रयोग को उद्धृत किया है। अतः इनका समय तेरहवी शताब्दी का प्रमाणित होता है।

श्री गोपाल कृष्ण भट्ट जी द्वारा रचित रसेन्द्र सार संग्रह वैद्य समाज में बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हुआ है इसके प्रथम अध्याय में पारद तथा धातु, उपधातु, रत्न, उपरत्न, विष, उपविष आदि का शोधन, मारण! जारण तथा द्वितीय अध्याय में ज्वरादि रोगों की चिकित्सा का वर्णन मिलता है। उत्तर भारत में पंजाब से बंगाल के वैद्यों में रसेन्द्र सार संग्रह के प्रयोग चिकित्सा में बहुत प्रचलित हुए है।

रससिद्ध माण्डव्य

रससिद्ध माण्डव्य के नाम का उल्लेख रस रत्नाकर और रस रत्न समुच्च्य नाम के रस ग्रन्थों में मिलता है।

रस सिद्ध माण्डव्य ने मत्तमाण्डव्य सिद्धान्त (रसतन्त्र) का निर्माण किया था, जिसका उल्लेंख बड़ोदा के प्रकाशित कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र के पृष्ठ 17 पर क्रमांक 980 में मिलता है; माण्डव्य का यह रसशास्त्र एक पाढ्य ग्रन्थ के रूप में देखा जाने से अत्यन्त उपयोगी एवं प्रसिद्ध था, जिसे नागार्जुन ने अपने गुरु पढ़ा था; नागार्जुन ने स्वय अपने बनाए रसेन्द्र मंगल (कक्षपुट ग्रन्थ) में लिखा है- यथा- शास्त्रं वसिष्ठमाण्डव्यगुरुपार्श्वे मया श्रूतम्।

माण्डव्य ने इसके अतिरिक्त "रस वारिधि" नाम का दूसरा रस ग्रन्थ बनाया था, जिसका उल्लेख श्री स्वामी हरिशरणानन्द जी ने अपने भस्म विज्ञान ग्रन्थ में प्रथम भाग के पृष्ठ 110 पर किया है।

माण्डव्य का समय नागार्जुन से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व छठी शताब्दी में माना जा सकता है।

उपाध्याय माधव

उपाध्याय माधव सत्रहवी शताब्दी में गुजरात में उत्पन्न हुए थे। बनारस में रहकर अनेंक रस ग्रन्थों के आधार पर आयुर्वेद प्रकाश नाम का एक रस ग्रन्थ बनाया था। इसमें सोलहवी शताब्दी में निर्मित भाव प्रकाश के नाम का उल्लेख होने के कारण माधव का समय सत्रहवी शताब्दी का माना जा सकता है।

उपर्युक्त प्रमाणों से विदित होता है, वेध क्रिया स्वरूपों को लेकर पारद पर मानव की आसक्ति प्राच्य काल से जुड़ी है। अत: देह एवं लोह सिद्धि को लेकर पूर्वाचार्यो द्वारा पारद की सिद्धि के लिये अनेक अन्वेषणात्मक कार्य किये गए थे, जिनका परिचय उनके द्वारा रचित रस ग्रन्थों में मिलता है; जिनमें मुख्यत: आदिनाथ मत्स्येन्द्रनाथ, भैरवनाथ, मीननाथ तथा गोरक्षनाथ, सुरानन्द, सिद्धपाद, कापली, नित्यनाथ, कंथड़ी, सिद्धबुद्ध निरन्जन, सुरानन्द, विन्दुक नाथ, काक चण्डीश्वर, अल्लाभ, प्रभुदेव, घोड़ा चोली, टिटिणी, भालुकी एवं नागार्जुन, सुरानन्द, यशोधन आदि का नाम आज भी लिया जाता है। इन रस सिद्धो ने लौहवेध क्रिया का आविष्कार कर ताम्रादि धातुओं को स्वर्ण में परिव़र्तन करने की पारद क्रियाओं का पता लगाया था, तथा देहोपयोगी पारद बनाने के लिये अष्टविध संस्कारों का अमृतरूप रस प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर अठारह संस्कारों की कल्पना से विशेष अनुसन्धानात्मक कार्य किये थे, जिनसे इन्हें सफलताएँ भी प्राप्त हुई थी। इन्होंने धातु वेध क्रियाओं के साथ-साथ रस क्रियाओं द्वारा अनेक प्रकार के असाध्य रोगों की चिकित्सा के लिये अनेक रसोषधों की निर्माण विधियों का पता लगाया था, कालान्तर में जो धीरे-धीरे आयुर्वेद का मुख्य स्तम्भ रस चिकित्सा के रूप में जो अति प्रभावी था; बन गया। बाद में अनेक आचार्यो द्वारा पूर्व रचित शास्त्रों के आधार पर शोध कार्यों को आगे बढ़ाते हुए अपने-अपने रस ग्रन्थ बनाए जिनमें रसरत्नसमुच्चय आदि प्रसिद्ध हुए है।

पारद द्वारा स्वर्ण निर्मित क्रियाओं का उल्लेख अनेक रस तन्त्रों में आया है, आज उपलब्ध सबसे प्राच्य ग्रन्थ रसार्णव मुख्यत: देह वेध व धातुवेध क्रियाओं से जुड़ा हुआ उपलब्ध है; तथा लौह सिद्ध क्रिया का प्रादुर्भाव काल अति प्राचीन है। प्राच्यकाल से ही लोहसिद्ध पारदक्रिया का भेद अति गोपनीय रखा जाता था, आज भी तांबा तथा वंग आदि से स्वर्ण और चांदी बनाने की इच्छा से पारद पर अनेक प्रयोग हो रहे है; जोकि प्राच्यकाल से जुड़ी भ्रान्तियों को लेकर किये जाते है।

पारद द्वारा बनाए गए स्वर्ण का उल्लेख रसज, रस विद्ध, रसेन्द्र वेध संजात, रसेन्द्र वेध तथा रसवादोत्थ स्वर्ण के नाम से रसशास्त्रों में मिलता है। आचार्य चाणक्य रचित

कौटिलीय अर्थशास्त्र में इसका रस विद्ध स्वर्ण के नाम से उल्लेख मिलता है; आचार्य चाणक्य मगध के सम्राट चन्द्रगुप्त का प्रधान मंत्री था जो कि ईसा से 329 वर्ष पूर्व विद्यमान था। आनन्द कन्द नाम के रस तन्त्र के अनुशीलन से ज्ञात होता हैं कि सम्राट चन्द्र गुप्त ने कोटि वेधी पारद से धातु वेध कराकर पर्याप्त मात्रा में स्वर्ण का निर्माण कर अपने राज कोष मे रखा था इससे स्पष्ट है कि ईसा से 321 वर्ष पूर्व अर्थात अब से लगभग 2300 वर्ष पूर्व सम्राट चन्द्रगुप्त के शासन काल में पारद से ताम्र धातु का स्वर्ण बना था, इसी प्रकार बौद्ध काल में भी स्वर्ण निर्माण का पता चलता है।

उस समय तीन परम्पराएँ मुख्य रूप से प्रचलित थी–

1. पारद के प्रयोग से लौहवेध की सरल प्रक्रिया उस समय ब्राह्मण परम्परा से रस विद्या विशेषज्ञ (रसाचार्य) कहलाते थे।
2. बोद्ध धर्मावलम्बी होने से रसवाद में बौद्ध परम्परा का अपना अलग ही स्वरूप बन गया, जिसका नागार्जुन आदि रसाचार्यो द्वारा बहुत विकास हुआ था।
3. इस बीच जैनों ने ब्राह्मण और बौद्धो की मिश्रित पद्धति को अपना कर अपने अलग तन्त्रों का विकास कर लिया था।

इस प्रकार ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन ये तीनों परम्पराऐं द्राविण देशीय परम्परा से अनभिज्ञ थी यद्यपि अघोरी, अवगढ़ (अवधूत) नाथ आदि सम्प्रदायों के अनुयायिओं ने माहेश्वर परम्परा गत परम्परा के ज्ञान से ये तीनों परम्पराऐं अनिभिज्ञ ही रही थी क्योंकि ये तीनों परम्पराऐं वाम मार्गियों के आचरण के विपरीत थी; ऐसी स्थिति में माहेश्वर परम्परा के तंत्र प्रयोगों को समाज के कल्याण कार्यों में प्रयोग करना सम्भव न हो सका, अतः इस प्रकार का ज्ञान, नाथ औघड़ आदि परम्पराओं से जुड़े वाम मार्गियों तक ही सीमित रह गया था। माहेश्वर परम्परा का मुख्य स्थान द्रविण रहा है। इसके अन्तर्गत कई सम्प्रदाय है, शैव, पाशुपत, लिंगायत एवं भैरव आदि का वर्णन मिलता है। इनके तन्त्रों में वेध क्रियाओं में पारद के साथ-साथ औषधि विशेष (जड़ी-बूटियों) का भी उल्लेख मिलता है।

धातुवेध सम्मति

पारद द्वारा देह एवं धातु वेध को लेकर लिखा हुआ प्राच्य ज्ञान आज के वैज्ञानिक युग में तर्क संगत दिखाई पड़ता है, परन्तु जहाँ तक मैं समझता हूँ यह असम्भव ज्ञान प्राच्य ज्ञान के रूप में बहुत ही बिखरा हुआ अस्पष्ट रूप से प्रकट होकर औषध विशेष क्रिया विधि रूपों तक ही सीमित होकर रस चिकित्सा के रूप में आयुर्वेद का मुख्य अंग बनकर रह गया है। जिसकी सिद्धि का उपाय वेध क्रियाओं के रूप में कही भी दिखाई नहीं पड़ता फिर भी यह कहना ठीक नही है कि पारद द्वारा वेध क्रिया असम्भव है। यह दूसरी बात है कि हम इस विशिष्ट ज्ञान से वंचित होकर वास्तविकता से बहुत दूर चले आए है। अतः सूक्ष्म बुद्धि द्वारा सोचें तो पारद में सर्व धातुओं को आत्मसात करने की अद्‌भुत शक्ति है। मैंने अपने बहुत से प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध करके देखा है; इस दृष्टि से पारद को वेध क्रियाओं के रूप में देखा जा सकता है। पूर्वाचार्यों के मत से अभ्रक और गन्धक जीर्ण

पारद जब नाग द्वारा मारित स्वर्ण जो अतिरिक्त वर्ण का होता है, विभूषित हुआ पारद इनका ग्रास करता हैं तभी देहोपयोगी बनकर संसार के दुःख दारिद्रय को नाश करने में समर्थ होता है अर्थात पारद का बुभुक्षित रूप समस्त धातुओं को शीघ्र खा जाता है। अभ्रक और गन्धक जीर्ण पारद नाग मारित स्वर्ण का ग्रास कर वेधोपयोगी हो जाता है। अतः ऐसा पारद पूजनीय शक्ल व्याधि नाशक दरिद्रता आदि दुखो को हर लेता है अतः जब ऐसा सिद्ध पारद प्राप्त होता है, तभी देह वेधोपयोगी बनकर पिण्डस्थैर्य की दृष्टि से जराव्याधि नाशक होता है, इसके अतिरिक्त अष्टादश संस्कारित पारद दीर्घायु देने वाला एवं रोग नाशक औषध विशेष की कल्पना में प्रयुक्त होता है, तथा इसका विधि विशेष द्वारा मूर्च्छन बन्धन करने पर क्रमशः जराव्याधि नाशक एवं खेचर गति को देने वाला रूप सिद्ध होता है।

ये सभी क्रियाऐं प्राच्य काल में सम्भव होने लगी थीं, तथा आध्यात्म तथा योगिक क्रियाएँ भी रस तन्त्र के माध्यम से होने लगी थी। रसेश्वर दर्शन में, पारद में देह वेध शक्ति का निरूपण करते हुए लिखा है। यथा–

अपरे-माहेश्वराः परमेश्वरतवादात्म्यवादिनोऽपि
पिण्डस्थैर्यं सर्वाभिमता जीवनमुक्तिः सेत्स्यतीत्यास्थाय
पिण्डस्थैयोपायं पारदाही परवेदनीयं रसमेव लिख्ते!

(रसेश्वर दर्शन)

रस सूक्ष्मता पर रसोपनिषद लिखता है, यथा–

यथा रसस्तथा ह्यात्मा यथा हात्मा तथा रसः।
आत्मविद् रसविच्चैव द्वाविभौ सूक्ष्मदूर्शिनौ।।

(रसोपनिषद्)

भारत वर्ष में वैदिक काल से ही तन्त्रों का प्रादुर्भाव देहोपयोगी सिद्धि के लिये हो गया था; आत्म ज्ञानी ऋषि मुनियों ने पारद की सूक्ष्मता को आत्म स्वरूप जानते हुए इसमें देह वेध की अद्भुत शक्ति को पहचानते हुए मुक्ति की कल्पना से अनेक गुणाधान कार्यो को शुरू कर दिया था। यथा–

(1) न च रसशास्त्रं केवलं धातुवादार्थ
मेव मन्तव्यं मुक्तेरेच परम प्रयोजनत्या:त्

(र.चि)

(2) इतिधनशरीर भोगान्मत्वाद्ऽनित्यान् सदैव यतनीयम्।
मुक्तौ सा च ज्ञानात् तच्चाभ्यासात् स चास्थिरे देहे।।

अर्थात धन शरीर और भोग ये सभी अनित्य है अतः इन सभी का ध्यान छोड़कर मुक्ति के लिये प्रयत्न करना चाहिए, कयोंकि मुक्ति का साधन शरीर होने से पारदादि वैधोपयोगी साधन के रूप में तन्त्र विद्याओं का आविष्कार हुआ होगा जिनसे रसतन्त्र विद्या अति उपयोगी सिद्ध होने लगी थी, बाद में देहवेध ही लौह वेध की कसौटी के रूप में प्रयोग किया जाने लगा होगा; क्योंकि मुमुक्षुओं की धारणा इस रूप में बनी होगी जो पारद

लौह को वेधकर कांचन बना सकता है, वह पारद निश्चय ही मेरे शरीर को वेध कर कांचन बना देगा, ऐसा मुमुक्षुओं का सोचना किसी भी रूप में गलत नहीं था, (क्यूंकि शरीर भी रस क्रिया द्वारा धातुओं के पैदा होने से धारण होता है।) धातुओं का नाश होने से शरीर का भी नाश हो जाता है; अतः शरीर के धातुओं को सदैव के लिये स्थिर बनाने की प्रक्रिया में पारद का प्रयोग धातु वेध के रूप में किया गया; मुमुक्षुओं की धारणा पारद के प्रति जो बनी थी धातु वेध सिद्ध पारद की परीक्षा का ही एक कार्य रहा होगा; क्योंकि शरीर की प्राप्ति दुर्लभ होने से उसका प्रयोग करने से पूर्व उसकी परीक्षा करना जरूरी था जो कि धातु वेध के रूप में की जाती थी। यथा–

पूर्व लोहे परीक्षेत ततो देहे प्रयोजयेत्।

शरीर के महत्व को समझते हुए रस परीक्षाओं के लिये धातु वेध की परीक्षा से जानना आवश्यक समझा जाता था जो बाद में देह वेध क्रियाओं की असफलता में धातु वेध क्रियाओं के रूप में प्रयोग किया जाने लगा, जबकि धातु वेध ही रसौषध के विशिष्ट गुण को परखना था।

ईसा पूर्व चाणक्य निर्मित कौटिल्य अर्थशास्त्र में एक स्थान पर "रस सिद्ध सुवर्णम" ऐसा लिखा मिलता है। जिसके आधार पर यह अनुमान लगाना गलत नही है चाणक्य समकालीन राजा चन्द्रगुप्त के शासन काल में रस विद्या का अविष्कार धातु वेध के रूप हो गया था।

कुछ विद्वानों का मत है नागार्जुन द्वारा धातु वेध क्रियाओं से जुड़ा पारद ज्ञान इसी काल में विकसित हुआ था। राजाओं द्वारा अपनी सैन्य शक्ति बल का संचालन करने के लिये धातु वेध क्रियाओं को अपनाया जाता था।

धातुवेध क्रियाओं को लेकर सुवर्णतन्त्र गोंडल रसशाला द्वारा प्रकाशित है इसमें महेश्वर व परशुराम के संवाद रूप में स्वर्ण बनाने के 39 कल्प दिये है उनमें कुछ रजत के भी प्रसंगवश आ गए है! इसके लिखने का कोई समय नहीं है, न ही इसका कोई लेखक है, केवल महेश्वर व परशुराम संवाद का ही विवेचन मिलता है ग्रन्थकार ने प्रारम्भ में रामाय नमः लिखकर प्रारम्भ किया है, इससे ज्ञात होता है शैव सम्प्रदाय का विवरण देते हुए भी लेखक राम भक्त रहा होगा अथवा रामाय से परशुराम बोधक होने से लेखक राम भक्त है।

प्राच्य ग्रंथ के रूप में लिखा रसार्णव शिव पार्वती के बीच संवाद को लेकर वेध क्रियाओं का वर्णन करते हुए पारद गुटिका द्वारा आकाश में उड़ने की क्रिया विधि को दर्शाया गया है।

प्रकरण-2

पारद का स्वरूप एवं भेद निरूपण

पारद पृथ्वी पर एक ऐसी विलक्षण धातु है, जिसकी तुलना अन्य किसी भी धातु से करना सम्भव नही है, पिघली हुई-चॉंदी के सद्रश जिसे देखने मात्र से ही आश्चर्य स्वाभाविक है। अति भारयुक्त धातु जलीय रूप में होने पर भी स्पर्श से गीला नहीं करता। पकड़ने पर हाथ न आकर इधर-उधर फिसल जाना तथा छिटकने पर छोटी-छोटी बूंदो के रूप में बिखर कर फैल जाना, एकत्र करने पर प्रगट एक रूप होकर अपने चंचल स्वभाव को नही त्यागता है। शीत-उष्ण क्रिया से प्रभावित होने के कारण ताप मापक यन्त्रों में इसका विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। प्राच्य रस तन्त्रों में पारद के स्वरूप की तुलना ब्रह्म स्वरूप से करते हुए रस ही ब्रह्म है, ऐसा कहा है, जो कदाचित उचित है। जिस प्रकार आत्मा अक्षम शक्ति वाला है, उसी प्रकार पारद को जानना चाहिए, तथा पारद के स्वरूप की कल्पना अचिन्त्य आत्म रूप में करने से जो इसकी सिद्धि का उपाय करता है, वह निश्चय ही सफल होता है। शिव स्वरूप की कल्पना से जो पारद को सिद्ध करता है, वह अजेय होकर त्रिलोक विचरण करता हुआ एक ही शरीर के अनन्त काल तक जीवित रहता है। अमृतरूप में कल्पना करता हुआ, पारद का शोधन करने वाला जरा-व्याधि मुक्त विशिष्ट रसोषधों की प्राप्ति कर, उसके भक्षण से सर्व रोगों से रहित दीर्घायुष्य जीवन को प्राप्त कर लोक में घन्य हो जाता है। इस प्रकार पारद की कल्पना अनेक रूपों में उसके स्वरूप को ध्यान में रखते हुए करना सम्भव है। जिस प्रकार ब्रह्म ज्ञान हो जाने पर मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है, उसी प्रकार पारद का समुचित ज्ञान होने पर मनुष्य मोक्ष का अधिकारी हो जाता है। सिद्ध गुणों की कल्पना से पारद को शास्त्रों में मुख्य रूप से पांच भेदों में विभक्त करते हुए शिव से उत्पन्न धातुक्षेत्र भेद से पारद के विषय में रस रत्न समुच्चयकार लिखता है। यथा-

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा
इति पञ्चविधो जातः क्षेत्रभेदेन शम्भुजः

(रसरत्न समु.)

अर्थात 1. रस, 2. रसेन्द्र, 3. सूत, 4. पारद और 5. मिश्रक - प्राच्य ग्रन्थ रसार्णव में भी मुख्यतः पारद के इन्हीं पाँच रूपों की व्याख्या की गई है। यथा-

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदश्चाथ मिश्रकः

(रसार्णव)

1. रस- नामक पारद सर्व दोषों से रहित तथा रक्त वर्ण का होता है। यथा-

रसो रक्तो विनिर्मुक्तः सर्वदोषै रसायनः।

(रस-रक्त-समुच्च्य)

यह रस अमृतत्त्व का देने वाला, मृत्युन्जय है, रसार्णव में वर्णित– रस की कल्पना सिद्ध स्थान में आश्रित रस सिद्ध रस, समझना चाहिए। यह सिद्ध रस सभी रोगों व बली पलित का नाश कर पुनर्युवावस्था का स्थायी रूप देने वाला कहा है। यथा–

रसं सिद्धरसं विद्यात् सिद्धक्षेत्रसमाश्रयम्।
नाशयेत् सकलान् रोगान् बलीपलितमेवं च।।

उपर्युक्त श्लोकों पर ध्यान देने से पारद के सिद्ध रूप की कल्पना "रस" के रूप में कर उसका सेवन स्थिर देह की दृष्टि से जरा व्याधि नाशक के रूप में अमृत की भाँति जानना चाहिए, अतः ऐसे सिद्ध रस की प्राप्ति का उपाय अवश्य करना चाहिए!

2. रसेन्द्र– नामक पारद दोषों से रहित श्यामवर्ण (कपिश वर्ण) लिये हुए तथा स्पर्श में रूक्ष तथा देखने में अत्यन्त निर्मल श्रेष्ठ रसायन गुण देने वाला है। इसका सेवन भी जरा व्याधि नाशक मृत्यु तथा बुढ़ापे से मुक्त करने वाला है। यथा–

रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तः श्यावो रूक्षोऽतिनिर्मलः।

(रसरत्नसमुच्चय)

रसार्णवकार ने शुद्ध रसेन्द्र को देह तथा लौह कारक माना है अर्थात रसेन्द्र का भक्षण शरीर को अजर अमर करने वाला और लौहों को स्वर्ण में बदलने वाला होने से इसे रसेन्द्र कहा है। यथा–

देहलोहकरं शुद्धं रसेन्द्रमधुनाभृणु।
शरीरे हेम्निकर्ता च जारणे सारणासु च।।

रसेन्द्र पारद बुभूक्षित गुणों वाला धूम्रवर्ण का दिखाई पड़ता है। जिसका प्रयोग जारण-मारण क्रियाओं में करने से देह-एवं लौह वेधक रूपों में प्राप्त कर अभीष्ट कार्य की सिद्धि प्राप्त होती है।

3. सूत पारद– सूत पारद देखने में कुछ पीला स्पर्श में रूक्ष तथा सप्त कचुंकनागादि दोषों से युक्त होता है, जिसके अठारह संस्कार करने पर देहोपयोगी हो जाता है। यथा–

ईषत्पीतश्च रूक्षाङ्गो दोषयुक्तश्च सूतकः।
दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः।।

(रस रत्न सम)

रसार्णवमकार ने भी पारद के सूत रूप को- ईषत्पीतश्च रूक्षांग दोषयुक्तश्रव सूतकः कहा है :

4. पारद– चंचल एवं सफेद वर्ण का होता है, जमीन में कुंओ में रहने वाला जिसे जमीन के अन्दर कुओं से बाहर निकाला जाता है, वह पारद कहलाता है, इसे विविध

औषधि संयोग व अष्टादस संस्कार करने से सम्पूर्ण रोग नाशक औषधियों के रूप में प्रयोग किया जाता है। यथा–

अथान्यकूपजः कोऽपि स चलः श्वेत वर्णवान्।
पारदो विविधैयोगैः सर्वरोगहरः स हि।।

(रसरत्नसमुच्चय)

रसार्णवकार ने भी पारद को बाहर भीतर से श्वेत तथा बहुत कञ्चुकों से आवृत माना है। जिसका प्रयोग रजतकर्म में करने का निर्देश दिया है। शरीर के लिये अयोग्य मानकर देहनाश कर देने वाला माना है। यथा–

यो बाह्याभ्यन्तरे श्वेतो बहुलं कन्चुकावृतः।
तं विद्यात् पारदं देवि! तारकर्म्मणि योजयेत्।।

यथा काञ्चिक संस्पर्शात् क्षीरभाण्डं विनश्यति।
तथा हेमशरीरश्य पारदेन विनश्यति।।

कूपो से प्राप्त इस प्रकार का पारद बाजार से आसानी से उपलब्ध हो जाता है। जिसका सेवन कुष्टोत्पादक एवं देह नाश करने वाला होता है; अनेक प्रकार के दोषों से युक्त होने पर विशिष्ट गुणाधान द्वारा (गन्धकादिक जारणाओं के द्वारा) संस्कारित करने पर पारद शुद्ध हो जाता है।

5. मिश्रक– पारद का पांचवा भेद कहा है। यह मयूर पंख की आभा से युक्त अनेकवर्ण वाला, रसदार पारद को मिश्रक जानना चाहिए यह पारद भी अठारह संस्कार करने पर अनेक सिद्धियों को देता है। यथा–

मयूरचन्द्रिकाच्छायः सरसो मिश्रको मतः।
सोऽप्यष्टादशसंस्कारयुक्तश्चातीवसिद्धिदः ।।

(रसरत्नसमुच्चय)

रसार्णवकार ने भी - मिश्रक को मयूर पुच्छ की आभा वाला कहा है। यथा–

मयूरपत्रिकाभासं मिश्रकच्च विद्रबुधाः।

सूत, पारद और मिश्रक ये तीनो सूत (रस) सम्पूर्ण सिद्धियों को देने की शक्ति से युक्त होते है तथापि इनका विधिवत शोधन (अष्टादश) स्वेदन आदि संस्कारो से सिद्धकर दोष से मुक्त करने से शक्ति वर्धक हो जाने पर अभीष्ट कार्यों की सिद्धि का लाभ प्राप्त कराते है। यथा–

त्रयः सूता द्वयः सूताः सर्वसिद्धिकरा अपि।
निजकर्मविनिर्माणैः शक्तिमन्तोणितमात्रया।।
एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः।
आयुरारोग्यसन्तानं रससिद्धिं च विंदति।।

(र.र.स.रा.सु.)

(सूत पारद मिश्रक) तीनो सूतादिक अनेक प्रकार की सिद्धि देने वाले अपने-अपने कार्यो से सिद्ध किये हुए अत्यन्त शक्ति वाले हो जाते है जो इस रसैत्यन्ति को जानता है वह धर्मात्मा आयु-आरोग्य संतान और रस सिद्धि को प्राप्त करता है।

संस्कार भेद से पारद के प्रकार– प्राच्य रस ग्रन्थों में पारद के अनेक भेद संस्कार भेद से हो सकते है परन्तु संस्कार भेद से पारद के मुख्यतः सात रूपों का वर्णन मिलता है। 1. मूर्च्छित, 2. मृत, 3. जलूक वन्ध, 4. मूर्ति बन्ध, 5. पट्ट बन्ध, 6. भस्मसूत, 7. खोट बन्ध।

1. मूर्छित रस– जब पारद विशिष्ट गुणाधानों द्वारा घन तथा चंचलता चाञ्चल्य को त्याग कर नाग वर्ण का होता है, इससे मूर्छित पारद जानना चाहिए। यथा–

नागवर्णं भवेत सूतं विहाय घनचापलम्।
लक्षणं दृश्यते यस्य मूर्च्छितं तं वदन्ति हि।।

(रसार्णव)

2. मृत– मृत पारद के लिये आर्द्रत्व (गीलापन) घनत्व, तेज (चमक) भारीपन तथा चंचलता से मुक्त अर्थात दिखाई न देवें तो मृत पारद का लक्षण कहा है। यथा–

आर्द्रत्वञ्च घनत्वञ्च तेजो गौरवचापलम्।
यस्यैतानि न दृश्यन्ते तं विद्यान्मृतसूतकम्।।

(रसार्णव)

3. जलूकाबन्ध– जलौका बन्ध रस का स्वरूप अनेक वर्ण स्वच्छ जलौका की भांति योनि में द्रुतयो पारद जलौका की तरह बंध जाता है उस पारद को जलूकाबन्ध कहा है। यथा–

नागवर्णं तथा स्वच्छं द्रुतं योनौ जलूकवत्।
वध्यते सूतकं यच्च जलूका बन्धलक्षणम।।

(रसार्णव)

4. मूर्तिबन्ध पारद– गुरुता अरुणिमा तथा सूर्य के सदृश तेज से युक्त होकर अग्नि के मध्य में रखने से स्थिर हो जाता है यह मूर्ति बन्ध का लक्षण कहा है। यथा–

गुरूत्वमरूणत्वञ्च तेजसा सूर्य्यसन्निभम्।
शिखिमध्ये घृतं तिष्ठेत् मूर्तिबन्धस्य लक्षणम्।।

(रसार्णव)

5. पट्टबन्ध– पारद श्वेत, पीत वर्ण से युक्त गुरू तथा भोम की तरह मृद् अग्नि में स्थिर रहता है। यथा–

श्वेतं पीतं मुक्त तथा मृद् सिक्रथकसभिन्नम्।
अग्निमध्ये यक्ष तिष्ठेत पट्टबन्धस्य लक्षणम्।।

6. भस्म निभ पारद– कृष्ण, श्वेत, पीत, नील तथा भस्म की भाँति का होकर जब पारद का अपना चंचलत्व दोष नष्ट हो जाता है यह लक्षण भस्म सूत का है। यथा–

कृष्णं श्वेतं तथा पीतं नीलं भस्मनिभं तथा।
चञ्चलत्वं यथा नष्टं भस्मसूतस्य लक्षणम्।।

(रसार्णव)

7. खोट बन्ध– जब पारद मुर्गी के अण्डा जैसा लवण को भेदन करनेवाला आवर्तित होता हैं इस प्रकार का लक्षण खोटबन्ध पारद का है। यथा–

कुक्कुटाण्डनिभं सूतं यदा लवणभेदि च।
आवर्तते रसस्तद्वत् खोटकस्य च लक्षणम्।।

(रसार्णव)

छेदन करने पर स्निग्ध प्रकाश से मृदुता के साथ द्रव हो जाय अक्षय कठिन तथा श्वेत वर्ण युक्त हो, यह खोट बन्ध का लक्षण है। खोट आदि ये पाँच बन्ध है वे जलूका को छोड़कर तीव्राग्नि में धमने करने पर मूर्च्छित अवस्था में नहीं ठहरते है। लक्षण सूर्य के सदृश तेज अनेक वर्ण वाला रन्जित रस भैरव (पारद) लौह तथा देह वैधोपयोगी होता है। अर्थात जो सिद्ध रस (पारद) सुर्ख वर्ण वाला अग्नि के मध्य ठहरता है वह देह एवं लौह वेधोपयोगी होकर जगत कल्याण कार्य करने वाला हो जाता है; ऐसा जानने से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है, उसका सेवन जरा व्याधि नाशक एवं लौहों में स्वर्ण करने वाला अद्‌भुत गुण प्रभाव शाली हो जाता है; अतः ऐसे सिद्ध रस की प्राप्ति का उपाय अवश्य करना चाहिए!

पारदीय मूर्च्छनादि भेद निरूपण

मूर्च्छित पारद का लक्षण

कज्जलाभो यदा भूतो विहाय घनचापले।
द्रश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितः सुतरां बुधैः।।

(रस दर्पण, टोडरानन्द,–रसमंजरी)

अर्थात– जब पारद धन और चञ्चलता को छोड़कर काजल के समान दीखने लगे तब पारद को विद्वान मूर्च्छित हुआ जाने।

बद्ध पारद का लक्षण

यस्मिन्गुरुतारुणता तेजस्वित्वं च दृश्यते सूते।
दृढशिखिमध्ये तिष्ठेद् बद्धः सूतोऽमृतोपमो ज्ञेयः।।

(रसेन्द्र संग्रह)

अर्थात– जिस पारद में भारीपन ललाई चमकीलापन दीखता होवे, और उसको तीक्ष्णाग्नि में रखने पर उड़ता नही हो, अर्थात अग्नि को सहने वाला बद्ध पारद ही अमृत के तुल्य होता है।

बद्ध पारद का यह गुण जो अग्नि स्थाई होकर भारीपन और लालिमायुक्त चमकीला दिखाई देने पर अमृत के समान तुलना की है, अर्थात् उसका सेवन सिद्धि का दाता है, जो कि देह एवं लोह वेध की सिद्धि के रूपों में गुण वाला भी होता है, अतः ऐसे पारद की सिद्धि का उपाय अवश्य करना चाहिए और

अक्षयी च लघुद्रावी तेजस्वी निर्मलो गुरुः।
स्फूटनं पुनरावृत्तौ बद्धसूतस्य लक्षणम्।।

(रस मंजरी, वाच-वृह, नि.र.)

अर्थात- अक्षय गुण पैदा हुआ (जो अग्नि पर रखने से उड़े नहीं) शीघ्र ही द्रव हो जाय, चमकीलापन, स्वच्छ, भारी और दुबारा बद्ध करने पर खील-खील हो जाये इत्यादि बद्धपारद के लक्षणों को कहा है।

इस प्रकार मतान्तर के रूपों को देखते हुए इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि बद्धरूप में अग्नि स्थायी पारद विशिष्टगुण प्रभावशाली होता है।

मृत पारद लक्षण

अगरूतेजाः शुभो वाह्य स्थायी स्थिरो धूमः।
हेमादिधातुभोक्ता तत्कर्ता स्यान्मृतः सूतः।।

(वृहद्योगतरंगिणी) र.रा.श., र.सा.प.नि.र.)

अर्थात- जो पारद भारीपन को त्यागा हुआ तेज रहित सफेद वर्ण को प्राप्त हुआ अग्नि में ठहरने वाला धूम रहित गुण को प्राप्त हुआ हो तथा स्वर्णादि धातुओं का खाने वाला और स्वर्णादि धातुओं का बनाने वाला होने पर मृत पारद का लक्षण कहा है और-

आर्द्रत्वं च घनत्वं च तेजो गौरवचापलम्।
यस्यैतानि च दृश्यन्ते तं विद्यान्मृतसूतकम्।।

(रस मंजरी, वा.वृ.)

अर्थात- गीलापन, कठोरता, चपलता, चमक और गुरुता ये लक्षण जब पारद में दिखाई नही देते तब वह मृत पारद कहा जाता है।

पारद की तीन दशाओं की प्राप्ति विधि का रूप

मारयेज्जारितं सूतं गंधकेनेव मूर्च्छयेत्।
बद्धः स्याद्द्रुतिसत्त्वाभ्यां रसस्यैवं त्रिधा गतिः।।

(रस रत्नाकर)

अर्थात- बुद्धिमान मनुष्य को रसक्रियाओं में- गंधक जारित पारद को मारण के लिये और गन्धक जारण से पारद को मूर्च्छन करे, (अर्थात गन्धक जारण से जारित पारद को मृत करे और गन्धक जारण से पारद का मूर्च्छन करे।) द्रुति और सत्व के द्वारा पारद का बन्धन करे, इस प्रकार पारद की तीन गति है। जिनकी प्राप्ति का उपाय किया जा सकता है।

प्रकरण - 3

पारदोत्पत्ति प्रकरण

दो भूतो के संयोग से स्वतः ही प्रकट होने वाला तेजस्वी गुण युक्त पारद कहलाया, शंकर द्वारा पारद (रस) की उत्पत्ति का वर्णन रसार्णव में मूलभूत-के संयोग से अर्थात शिव पार्वती के संयोग से उत्पन्न रस (पारद) कहा है- अपनी इच्छा से उत्पन्न होने के कारण तेजस्वी पारद कहा गया, जो सर्व रोगों को पार करता है, उसे पारद कहा, दुख दारिद्रता को हर लेने वाला होने से अर्थात पार करने से इसे पारद कहा, शिव से उत्पन्न सूत (पारद) उन्ही के गुणों वाला प्राणी को संसार के भव सागर से पार करने वाला पारद कहलाया। यथा-

त्वं माता सर्वभूतानां पिता चाह सनातनः।
द्वयोश्च यो रसो देवि! महामैथुनसम्भवः।।

स्वैरतः खम्भवोदेवि पारदः कीर्त्तितो महः।
पारदो गदितो यश्च परार्थसाधकोत्तमः।।

सूतोऽयं मत्समो देवि! मम प्रत्यङ्गसम्भवः।
मम देहरसो यस्मात् रसस्तेनायमुच्यते।।

रसरत्न समुच्चयकार ने भी पारद की उत्पत्ति का वर्णन शिव पार्वती समागम को लेकर किया है; अतः पारद की उत्पत्ति को लेकर अनेक कल्पनाऐ हुई है। इनके- मुख्यतः मूल-भूत संयोग ही पारद की उत्पत्ति का मुख्य कारण, शीत उष्ण क्रिया भेद से पंचभूतात्म गुणो को धारण करने से जीव रूप से रस रूप की कल्पना में सृष्टि का मुख्य जीवाधार माना जाता है; अर्थात बिना रस क्रिया के जीवन की कल्पना करना सम्भव नहीं है, अतः यहाँ इतना लिखना ही उपयुक्त समझता हूँ। पारद की उत्पत्ति के वास्तविक ज्ञान के स्वरूप को विभिन्न प्रमाणों के आधार पर सिद्ध कर पाना तो सम्भव नहीं है- फिर भी पुस्तक में आगे चलकर पारद उत्पत्ति के विषय क्षेत्र को लेते हुए जितना मैंने इस विषय में स्वयं जानने का प्रयास किया है, उसी की निरुक्ति कर शोधकर्ताओं एवं पाठको के लिये पारद विषयक जानकारियों की दृष्टि से तथा वैज्ञानिक आधार तथ्यों को ध्यान में रख, अपनी बात कहकर प्राच्य ज्ञान की तुलना से सहज एवं सरल भाषा ज्ञान से वास्तविक स्वरूप को ही सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

पारद पृथ्वी के अन्दर (भू-गर्भ) में हजारो फिट की गहराई पर पाया जाता है, भारत में प्राच्यकाल में पारद प्राप्ति का स्थान हिमालय क्षेत्र माना जाता है, हिमालय में शिव का स्थान होने से उनके आश्रित "रस" सिद्ध रस माना जाता था, जिसका सेवन जराव्याधि नाशक, मृत्यु को हरने वाला था, इन सिद्ध रस कुओं को इन्द्र की प्रार्थना पर, मनुष्यों को वंचित करने के लिये, शिव ने अनेक प्रकार के विषों से युक्त कर दिया था। कुछ आचार्यों

को मत है प्राच्य काल में हिमालय ज्वालामुखी का क्षेत्र रहा है, अतः वहाँ पारद के कूप थे, कुछ पारद ज्वालामुखी फटने पर वाष्प रूप में लावा के साथ पृथ्वी के सतह पर ठण्डा होकर इधर उधर की गहरी खाइयों में ठहर गया था, अतः हिमालय क्षेत्र ही पारदोत्पत्ति का मुख्य क्षेत्र शास्त्रों में वर्णित हुआ है। पारद का प्रयोग भारत में अति प्राचीन है। पूर्वकाल में अनेक रस सिद्धक पारद प्राप्ति के उद्देश्य को लेकर हिमालय क्षेत्र में भ्रमण कर पारद को खोजते थे, परन्तु आज पृथ्वी से प्राप्त होने वाले खनिजों में पारद बहुतायत भाग में निकाला जाता है, अनेक देशों में पारद के कूप पाए गए है, जो दूसरे देशो को पारद का निर्यात करते हैं, आज भारत भी पारद का आयात विदेशों से करता है, मुख्य निर्यातक देशों में- इटली, मैक्सिको, चायना, स्पेन, साउथ अफ्रीका, न्यूजीलैण्ड, अल्वेनिया, फ्रांस, जर्मनी, हंगरी, जापान, रूस इत्यादि देशों में पारद के कूप मिलते हैं।

पारद मुख्यतः दो रूपो में प्राप्त होता है– 1. मुक्तावस्था, 2. हिंगुलादि धात्वादि सांयोगिक अवस्था!

1. मुक्तावस्था– मुक्तावस्था में पारद भूमि के अन्दर दो हजार फीट की गहराई से लेकर तीन हजार फीट अथंवा अधिक गहराई तक भी पाया जाता है, आज के इस वैज्ञानिक युग में आधुनिक उपकरणों की सहायता से पारद को बड़ी आसानी से भूगर्भ से निकालने का कार्य हो जाता है।

2. हिंगुलादि धात्वादि सांयोगिक अवस्था– हिंगुलादि धात्वादि संयोगिक अवस्था में मुख्य रूप से पारद हिंगुल में सबसे अधिक पाया जाता है, आयुर्वेद के क्षेत्र में की जाने वाली रस क्रियाओं में हिंगुल से प्राप्त पारद का विशेष महत्व है।

अतः इसे शुद्ध पारद की दृष्टि से भी देखा जाता है, कूप से निकले पारद की अपेक्षा यह पारद अधिक उपयोगी होता है। भारत में प्राच्यकाल से ही पारद की प्राप्ति हिंगुल से की जाती है, जिसे सप्त कंचुक मुक्त एवं जीर्णगंध समगुण माना है। शुद्ध पारद के विषय में रस रत्न प्रदीपा में लिखा है, यथा–

अन्तः सुनीलो वहिरुज्ज्वलो यो।
मध्याह्न सूर्य-प्रतिमप्रकाशः।।

(र.र.प्र.)

अर्थात शुद्ध पारद अन्दर के भाग में नीली आभा युक्त बाहर से उज्वल और मध्याह्न के सूर्य समान प्रकाश वाला होता है, ऐसा पारद प्रशस्त माना गया है। हिंगुल की भांति लाल रंग के रेती जैसे कण वाला गिरि सिन्दूर होता है यह भी खनन द्वारा हिगुल की भांति प्राप्त होता है, इसमें भी पारद का अंश पाया जाता है, ऊर्ध्वपातन क्रिया द्वारा इसमें से पारद निकल आता है।

महागिरिषु चात्मीयपाषाणान्तःस्थितो रसः।
शुष्कः शोणः से निर्दिष्ठो गिरिसिन्दूरसंज्ञकः।।

(रस रत्न समुच्चय)

पारद दोष निरूपण

विष को विष मत जानो, पारद भी एक विष है, जिसका अशुद्ध रूप देह को नाश करता है। यथा–

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम्।
देहस्य नाशं विदधाति नूनं कुष्ठान् समग्रान् जनयेन्नराणाम्।।

पारद पृथ्वी के भू-गर्भ से खनिज धातु के रूप मे प्राप्त होता है। अनेक धात्वादिक तत्वों के संसर्ग में आने के कारण इसमें भू-गर्भ के अन्दर ही अनेक धातु विषजन्य विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

जिन्हें सप्त कंचुक दोष दूष्य जनित विकारों के रूप में विष तुल्य जानना चाहिए। पारद में इन सप्त कंचुक दोषो की तुलना सर्प के ऊपर उत्पन्न होने वाले कंचुकी से की गई है– जिस प्रकार सर्प कंचुक मुक्त होकर तेजस्वी होता है, उसी प्रकार पारद भी कंचुक मुक्त होने पर तेजस्वी हो जाता है; अतः पारद के सप्त कंचुक निवृत्ति के लिये अष्टसंस्कारित गुणाधानों का कार्य शास्त्रोक्त जो वर्णित किया गया है, वह पारद की विशुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है।

रसरत्नसमुच्चयकार ने भूमिजा, गिरिजा, वार्जा, ते च द्वे नाग वंगजा– ऐसा कहकर द्रव्यान्तर संयोगजन्य सात कंचुक दोषो की गणना की है। यथा–

पर्पटी पाटली भेदी ढावी मलकारी तथा।
श्यामा कापालिका चेति पारदे सप्त कंचुकाः।।

(रसेन्द्रसार संग्रह आयु.वे. वि.र.र.स.र.रा.सुं.)

अर्थात- पर्पटी-पाटली भेदी दावी मलकारी, अन्धकारी और ध्वांक्षी ये सात पारद की कंचुकिया है। अन्यच्च–

मृत्याषणजलाख्याश्च कालिकोपालिका तथा।
श्यामाकापालिका चेति पारदे सप्त कंचुकाः।।

(यो.त.वृ.यो.र सा.व.)

अर्थात मिट्टी, पाषाण और जल इनसे पैदा हुए कंचुक कालिका, उपालिका, श्यामा और कापालिका ऐसा कंचुक दोष कहा है। अन्यच्च–

योगिकौ नागवंगौ तौ जाड्याध्मानकुष्ठादौ।
औपाधिकाः पुनुश्चान्ये कीर्तिदाः सप्त कंचुकाः।।

(र-र-स०. र.रा.सुं-नि.र.)

अर्थात, जड़ता आध्मान (अफरा) और कोढ को देने वाले नाग और वंग से पैदा हुए ये और औपाधिक चार कंचुक और दूसरे तीन कंचुक मिलकर पारद में सात कंचुक होते है।

पंच विध दोषों का निरूपण

पहला मल दोष, दूसरा वह्निदोष, तीसरा भूमि दोष, चौथा उन्मत्त दोष, पाँचवा शैलदोष ये पाँचो ही दोष पारद में माने गए है। मल दोष युक्त पारद मनुष्य को बेहोश कर देता है, वह्नि दोष युक्त शरीर में दाह, भूमि दोष युक्त तेज का नाश कर देता है, तथा उन्मत्त दोष युक्त पारद का सेवन मनुष्य को पागल और गिरि (शैल) दोष युक्त पारद शरीर को जकड़ देता है। यथा–

मलदोषो भवेदेको द्वितीयो वह्निसंज्ञकः।
भूमिदोषस्तृतीयः स्यादुन्मत्तश्च चतुर्थकः।।

पंचमः शैल दोषश्च पंचदोषाः प्रकीर्तिताः।
मूर्च्छयेन्मल संयुक्तो वह्नियुक्तश्च दाहकृत्।।

भूदोषात्तेजसां नाशोन्मन्मत्तादुन्मत्तता भवेत्।
शरीरजाडत्र्यं गिरिणा पंच स्युः पंचदोषतः।।

(र.रा.प.हो.न.)

मल, वह्नि, भूमि, उन्मत्त और शैल ये पाँच दोष पारद के कहे गए है। यथा–

मलदोषो वह्नि दोषो भूदोषोन्मत्तदोषकाः।
शैलदोषश्च पंचैते दोषाः सूते समीरिताः।।

दस प्रकार के दोष व उनके अवगुण

मृत्यु, संताप, मूर्च्छा, देने वाले विष,. वह्नि और मल ये तीन पारद के मुख्य एवं स्वभाविक गुण है। पृथ्वी, पर्वत और जल से पैदा हुए दो सीसक-वंग से पैदा हुए सात कंचुकी कहीं गई हैं, इस प्रकार तीन दोष सात कंचुकी का योग पारद में दस दोषों के रूप में जाना गया, पृथ्वी से पैदा हुई कुष्ठरोग की पर्वत से पैदा हुई जड़ता का जल से पैदा हुई, कंचुकी वात व्याधि को नाग और वंग से पैदा केचुकी अनेक रोगो को करती है: यथा–

विषं वह्निर्मलं चेति दोषा नैसर्गिकास्त्रयः।
रसे मरणसंतापमूर्छानां हेतवः क्रमात्।।

भूमिजा गिरजावार्जा द्वे च वै नागवंगजे।
कथिताः कंचुकाः सप्त रस दोषा दश स्मृताः।।

भूमिजा कुरुते कुष्ठं मिरिजा जाडत्र्यमेव च।
वारिजा वातसंघातं दोषा वै नाग वंगजाः।।

(ध.सं.)

पारद में आठ दोष भी माने गए हैं। यथा–

नागो वंगोग्निचापल्यमसह्यश्च विषं गिरिः।
मलं तथैव जानीयाद् द्दोसाश्चाष्टौ रसे स्थिताः।।

जाडच्यं-कुष्ठं दाहवीर्यनाशौ मूर्च्छा तथैव च।
मृत्युः स्फोटो रोगपुंजान्कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम्।।

(ध.सं.)

यथा– नाग, वंग, अग्नि तथा चांचल्य, असह्य, विष, गिरि और मल ये उनके नाम हैं और वे आये दोष, जड़ता, कोढ़, दाह, वीर्य का नाश, मूर्च्छा, मृत्यु, विष्फोटक और अनेक प्रकार के रोगो को पैदा करते है!

सात दोषो के रोगो में शास्त्र लिखता है। यथा–

मलेन मूर्च्छा मरणं विषेश दाहोऽग्निना भूमिभृता तु जाडचम्।
वीर्यक्षयश्चापलतोथवंगात्कुष्ठानि नागाद्गलगंडरोगाः।।

(वृ.यो.)

अर्थात– मलदोष से मूर्च्छा, विष से मृत्यु, अग्सि से दाह, शैल से जड़ता, (जकड़ना) चापल्यदोष से वीर्यनाश, वंग से कोढ और नाग (सीसा) दोष गंल गंड रोग पैदा करता है।

सप्त विध कंचुक के रूपो में

यथा–

मृद्रूपश्चाश्मरूपश्च जलरूपः पयोनिणमः।
पंचवर्णः कृष्णवर्णस्तैलवर्णश्च कंचुकाः।।

(योग तरंगणी)

अर्थात मृदू, पाषाण रूप, जलरूप, दुग्ध रूप, पंचवर्ण, कृष्णवर्ण और तैलवर्ण इस प्रकार सात वर्णों के कंचुक होते हैं।

अनेक रस ग्रन्थों में पारद में हुए दोषों को कंचुकादि दोषों के रूप में जानते हुए सप्त कंचुक एवं तज्जन्य विकारों की निवृत्ति में साविक्रति कंचुक कोष्ट दिया है। यथा–

तस्माद् दोषनिवृत्यर्थं सहपैर्निपुणैर्भिषक्।
सर्वोपस्करमादात्य रस कर्म समाचरेत्।।

(आयुर्वेद प्रकाश)

मुख्य रूप से पारद में पाँच दोष व सात कंचुक को ही गिना जाता है। रसेन्द्र चूड़ामणिकार ने बडे ही सुन्दर शब्दों में वर्णन किया है। यथा–

एतान् सूतगतान् दोषान् पञ्च सप्त च कंचुकाः।
अनयाकृत्य यो दद्यात् स वैद्यो ब्रह्महा भवेत्।।

द्वादशैतान् महादोषान् अपनीय रसं दहेत्।
स लभते महद्त्पुष्यं अगण्यं च महयशः।।

(रसेन्द्रचूड़ामणि)

पारद के मुख्य दोषों में– विष, वहिन एवं मल इन दोषों की व्यापकता को ही पारद के मुख्य रूप जानना चाहिए। यथा–

वह्निर्विषं मलश्चेति मुख्यदोषास्त्रयो रसे।
एते कुर्वन्ति संतापं मूर्तिं मूर्छां नृणां क्रमात्।।

(वाच वृ०)

अर्थात पारद में वह्नि, विष, और मल ये तीन प्रधान दोष ही कहे हैं, जिनसे मनुष्यों को संताप मृत्यु और मूर्छा होती है। यद्यपि अन्य दोष भी कहे हैं– तथापि ये तीनों दोष मुख्य रूप से निवारण करने आवश्यक है।

नाग–वंग–मल, चापल्य, विष गिरिदोष असह्याग्नि आदि पारद में प्रकृति में ही रहते है इनमें विष दोष–मल–दोष एवं दाहादि ये मुख्य है: सप्त कचुंक औपाधिक माने जाते है। भूमिजा, गिरिजा, वार्जा, नाग–वंगज इनका वर्णन क्रमानुसार करने पर–

1. विष दोषो में मल्ल–अजंन–नीलाजंन आदि विषैले द्रव्य मिश्रित माने जाते है जिनसे मृत्यु होती है।

2. मलदोष पारद में नैसर्गिक रूप में आता है, जिससे पारद का वर्ण मलिन होता है तथा मल दोष युक्त पारद का सेवन भ्रम, मूर्छा पैदा करता है।

3. बह्नि दोष यह भी पारद का प्राकृतिक दोष है; इसमें संताप दाहादि विकार उत्पन्न होते है पाषाणादि व तीक्ष्ण उष्ण आग्नेयण द्रव्यों से ये दोष उत्पन्न होते है, भूगर्भ में पारद वाष्प के साथ अन्य धातुओं से मिलकर वह्नि दोष युक्त होता है। पारद द्रव्य रूप होने से वाहिन शब्द रुद्र वीर्य से भी जाना जा सकता है।

4. गिरि दोष–पर्वतीय खनिजों के सम्पर्क से पैदा हुआ दोष, गिरि दोष माना गया है।

5. मद (उन्मत्तता) रस प्रकाश सुधाकर ने इसे दोष माना है, वस्तुत: यह दोष पारदीय मिश्रक विकार कहा जा सकता है

6. नाग एवं वंग दोष– भूगर्भ में पारद में प्राप्त एवं व्यापारियों द्वारा लाभ कमाने हेतु मिलावट का कार्य माना गया है।

7. दर्प दोष की रस प्रकाश सुधाकर ने स्फोट होना स्वीकार किया है।

8. चापल्य दोष को पारद की ऊर्ध्व शक्ति के रूप में (व्यर्थ ताप पर उड़ने वाला) अर्थात चपल गर्भ वाला कहा है। जो कि दोष रूप न होकर पारद का स्वभाविक गुण है। अग्निस्थायी क्रियाओं में पारद का यह दोष देखा जाता है। प्राकृत्यचापल्य की निवृत्ति के लिये नियमन संस्कार कर पारद को अग्निस्थायी बनाने का कार्य किया जाता है।

9. पाञ्चभौतिक दोषों में पार्थिव के सम्पर्क से पार्थिव कुष्ट जन्य रोगो की उपत्ति का कारण रूप माना गया है।

10. आप्य दोष– जल के संसर्ग से पारद में आप्यदोषारोपण कहलाता है, जिसे जल कंचुक दोष के रूप में भी जाना जा सकता है।

11. आग्नेय दोष– पारद में आग्नेय द्रव्यो के संसर्ग से उत्पन्न हुआ बल्कि दोष रूप से दाहोत्पत्ति जनक होता है।

12. नाभास्म– नाभास्म द्रव्यों के संगर्ग से दोषोत्पत्ति व इनमें बार्धिय रोग उत्पन्न होते हैं।

13. अनिल– वायवीय द्रव्यों के संसर्ग से पारद में अनिल दोषोत्पत्ति कही है, इस दोष का कारण रूप शूलादि रोगों की उत्पत्ति के जनक में माना गया है।

14. पुण्डरीकादि– चर्म रोगों की उत्पत्ति करने के कारण पारद की रोगाकरण शक्ति से व्यक्त किए गए है।

15. विसर्प– रोग को उत्पन्न करने वाले पारद को विसर्प दोष माना गया है। (विसर्प एक प्रसरणशील रोग है, इसके विषय में चरक ने निम्न उल्लेंख किया है। यथा–

विविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः।

अर्थात विविध प्रकार के सर्पण शील रोगो को विसर्प संज्ञा दी गई है। यथा–

रक्तं लासिका त्वङ्–मांस दूष्य दोषास्त्रयो मलाः।
विसर्पाणां समुत्यत्तौ विज्ञेयाः सप्तधातवः।।

सप्तरूप दोष दूष्यों को विकृत कर पारद जब विसर्प रोग उत्पन्न कर देता है, अर्थात मलयुक्त पारद कचुंकी प्रधान गुण वाले दोषों से भरा हुआ, असंस्कारित रूप से सेवन किया अुआ विकृति प्रधान रोगों की उत्पत्ति कर देता है।

16. हारिद्र– शरीर का हरिद्रावत वर्ण कर देना इसका हरिद्र दोष माना है; (हरिद्रवर्ण) पाण्डुकामला का एक लक्षण है।

17. मण्डूक का लक्षण– मण्डूकवत गति विशेष होने से जो अग्नि के कारण रूप से जाननी चाहिए इससे चर्म कील रोगोत्पादक कहा है।

18. कौटिल्य– यह शब्द कुटिलता परक है इस प्रकार के पारद के सेवन से कपालारूक की उत्पत्ति होता है।

इस प्रकार अनेक दोषों से व्याप्त पारद अनेक प्रकार के मृत्युकारक एवं साध्य एवं असाध्य कष्टकारक रोगोत्पाद होता है, अतः पारद की विशिष्ट गुणाधान क्रियाओं द्वारा शोधन करने का विधान प्राच्य काल से चला आ रहा है, इनमें पारद को विशिष्ट औषधि की कल्पना से अष्ट संस्कारित पारद का विशेष महत्व माना गया है।

प्रकरण-4

पारदगुण प्रकरण

शास्त्रों में पारद के गुणों की व्याख्या ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त कराने वाला, अमृतरूप (अमर करने वाला गुण), जरा-व्याधि युक्त देह एवं लौह सिद्धि की प्राप्ति के रूप में रचनात्मक कार्य करने वाला तथा आकाश में भ्रमण कराने की शक्ति से पारद के स्वरूप की व्याख्या देखने को मिलती है। सिद्ध पारद का सेवन करने वाला त्रिलोक विजयी की शक्ति को प्राप्त करने वाला माना है।

विधि सहित मूर्छित पारद व्याधि नष्ट करने वाला दीर्घायु दाता होता है, स्वेदनादि बन्धन साधन की प्रक्रियाओं से बद्ध पारद मोक्ष प्रदान करता है; भस्मीकृत पारा मनुष्य को अमर करता है, अतः मनुष्य पर पारद से बढ़कर और मोक्ष कृपा करने वाला कोई नहीं है, अर्थात-

यथाः मूर्च्छितो हरति दुःखं बन्धनमपकृत्य मुक्तिदो भवति।
अमरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकर सूतात्।।

(र.र.स.)

पारद देह शुद्धि करता है और नाना प्रकार के रोगों को नाश करने में समर्थ है, पुष्टिकारक, मृत्यु को हरता, निश्चयकल्प की उम्र करता है, तथा पारा सम्पूर्ण रोगों को पार करने वाला शोष यक्ष्मा, दाह, इनको मेघ के समान शान्त करने वाला है। पारा नागर पान के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण रोगों को दूर करता है। मूर्च्छित पारद रोग का नाश करता है। पारद की गोली मुख में रखने से व्यक्ति आकाश मार्ग से होकर चले, नीला पारा सर्व सिद्धि करता निश्चल मुक्ति का देने वाला है। यथा-

देहस्य शुद्धिं कुरुते च पारदो नानागदानां हरणे समर्थः।
करोति पुष्टिं हरते च मृत्युं कल्पायुषं चापि करोति नूनम्।।

पारदः सकलरोगपारदो राजयक्ष्मशरणैकपारदः।
सर्वरोगमपि हन्ति तत्क्षणान्नागवल्लिरसराजभक्षणात्।।

मूर्च्छितो हरते व्याधिं बद्धः खेचरतां व्रजेत्।
सर्वसिद्धिकरो नीलो निश्चलो मुक्तिदायकः।।

(यो.चि.मणि)

रस मंजरी में भी पारद के गुण को लेकर मूर्च्छित हुआ मनुष्यों के सर्व रोगों का हरण करने वाला तथा बंधा हुआ खेचरत्व (आकाश में उड़ने की शक्ति) देता है, और जो सकल देवता और मुनीश्वरों से नमस्कार किया हुआ श्री महादेव जी का वीर्य है, उस संसार रूपी समुन्द्र से पार करने वाले पारद की जय हो। यथा-

हरति सकलरोगान्मूर्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दिनं शंभुवीजं
स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम्।।

(रस मंजरी)

रस महिमा के रूप में पारद गुणो की व्याख्या यथा–

हतो हन्ति जराव्याधिं मूर्च्छितोव्याधिधातकः।
बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात्कृपाकरः।।

(रस रत्नाकर रसेन्द्र सार संग्रह)

अर्थात– मरा हुआ पारद बुढ़ापे के दुःखों (वृद्धावस्था से मुक्त कर पुनः यौवनावस्था प्राप्त कराने वाला), मूर्च्छित पारद देह रोगों को दूर करता है, और वंधा हुआ आकाश गति को प्राप्त कराता है, अतः पारद के अन्य दूसरा कौन कृपा करने वाला है, अर्थात कोई दूसरा नही है।

मूर्च्छितो हरते रोगान् बंधनमुपलभ्य खेगतिं धत्ते।
अमरीकरोति सूमृतः कोऽन्यः करूणाकरः सूतात्।।

अर्थात् पारद मूर्च्छित होकर रोगों को दूर करता है, और बंधन को प्राप्त होकर आकाश गति को देता है, और स्वयं मरा हुआ दूसरो को अमर करता है, इसलिये पारद के सिवाय कृपा करने वाला और कोई दूसरा नहीं, चाँदी में 80 गुण, काँतिसार में 40 गुण, वंग में 64, गुण तांबे में 32 गुण सुवर्ण में 100, अभ्रक में 1000 गुण, हीरा में 10000000 गुण और पारद में अनगिनत गुण है। यथा–

तारे गुणाशीति तदर्द्धकान्ते वंगे चतुःपष्टि रवौ तदर्द्धम्।
हेम्नः शतैकमं गगने सहस्त्रं वज्रे गुणाः कोटिरनंतसूते।।

(यो.चि.म.)

रसार्णव में मोक्ष साधन के रूप में, रस (पारद) तथा प्राण (वायु) का विवेचन करते हुए बताया है। रस तथा वायु मूर्च्छित होने पर व्याधि को नाश करते है। मृत होने पर जीवन प्रदान करते है। तथा बद्ध होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करते है। अर्थात रस (पारद) औषधि विशेष आदि द्रव्यों के साथ मूर्च्छन संस्कार से सिद्ध, रस सिन्दूर आदि के रूप में होकर व्याधि को नाश करता है। स्वयं मृत (भस्म) हो जाने पर मनुष्य को जीवित कर देता है। तथा बद्ध (गुटिका) होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करता है; वायु भी मूर्च्छित (प्राणायामादि क्रिया द्वारा) होकर रोग नाश करता है। यौगिक क्रियाओं द्वारा मृत होने पर जीवन प्रदान करता है। बद्ध होने पर आकाश में विचरण करने की शक्ति प्रदान करता है, अर्थात औषधि के योग से पारद को मूर्च्छन् किया जाता है, वायु का मूर्च्छन प्राणायामादि विधि द्वारा प्राणवायु को नियन्त्रित किया जाता है, अनेक औषधि के योग से पारद भस्म किया जाता है, तथा प्राण वायु को विशिष्ट यौगिक

प्रक्रिया से प्रसुप्त कर दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ औषधियों के योग से पारद को बद्ध किया जाता है; तथा प्राण वायु को समाधि आदि उपायो से वद्ध क्रियाओं का निरूपण किया गया है। शिव संहितादि ग्रन्थों में वायु मूलक क्रियाओं को देखना चाहिए यहाँ पारद मूलक क्रियाओं की ही विस्तृत विवेचना की दृष्टि से रस मूलक और वायु मूलक क्रियाओं की समानता से वर्णन किया गया है। यथा-

मुर्च्छितो हरते व्याधिं मृतो जीवयति स्वयम्।
बद्धः खेचरतां कुर्य्यात् रसो वायुश्च भैरवि।।

(रसार्णव)

मोक्ष में रसगुण की प्रधानता को लेकर ज्ञान की विवेचना से ऐसा कहा है। यथा-

ज्ञानान्मोक्षः सुरेशानि! ज्ञानं पवन धारणात्।
तत्र देवि! स्थिरं पिण्डं यत्र स्थैर्य्यै रसः प्रभुः।।

आचिराज्जापते देवि! शरीरमजरामरम्।
मनसश्च यथा ध्यानं रसयोगादवाप्यते।।

सत्यं स लभते देवि! ज्ञानं विज्ञानपूर्व्वकम्।
तस्य मन्त्राश्च सिध्यन्ति योऽश्नति मृतसूतकम्।।

अर्थात- ज्ञान से मोक्ष कहा है, और पवन के धारण करने से ज्ञान होता है। (योगशास्त्रों में प्राणायाम ध्यान, धारणा, समाधि आदि उपायों का ज्ञान साधन से बताया गया है। अतः ज्ञान के लिये शरीर का स्वस्थ रहना अति आवश्यक है)।

इसी लिये शरीर को स्वस्थ रखने में रस की प्रधानता मुख्य रूप से विशेष गुण प्रभावशाली होती है, अर्थात 'रस' ही समर्थ है, अर्थात रस के संयोग से शरीर अजर अमर (वृद्धावस्था रहित चिरस्थाई जिसे शास्त्रों में पिण्ड स्थैर्य कहा है) हो जाता है, और "रस" सेवन से चांचल्यादि दोषो से रहित मन ध्यान में स्थित हो जाता है। इस प्रकार ध्यान में लगा हुआ समाधिस्थ मन ज्ञान (सम्पूर्ण प्राणियों में एक अव्यक्त भाव को देखता हुआ विभक्त में भी अव्यक्त भाव को देखता हुआ तथा विज्ञान के क्षेत्र में भी- एक ही मूल भूत अव्यक्त से अलग-अलग भिन्न पदार्थो की उत्पत्ति प्रक्रिया का भी ज्ञान पूर्वक सत्य (सत्त्वमन) को प्राप्त करता है। तथा उसकी मन्त्र क्रिया भी सिद्ध हो जाती है, जो पारद भस्म को सेवन करता है।

पारद और मन के तुलनात्मक स्वरूप को लेकर योग प्रदीपिका में रस मूलक क्रियाओं का समन्वय वायुमूलक क्रिया से करते हुए दोनों की एक रूपता को दर्शाया गया है। यथा-

रसस्य मनसश्चैव चंचलत्वं स्वभावतः।
रसो बद्धो मनो बद्धं किं न सिद्धयति भूतले।।

(यो.प्र.)

अर्थात– पारद और मन दोनों ही स्वभाव से चन्चल है। यदि चित्त और पारद ये दोनों बंध जाय तो संसार में कुछ भी असंभव नही है, अर्थात अनेकानेक असम्भव कार्य भी सम्भव हो जायेंगे।

मूर्च्छितो हरते व्याधीन् मृतो जीवर्यात स्वयम्।
वद्धः खेचरतां धन्ते रसो वायुश्च पार्वति।।

(यो.प्र.)

अर्थात– महादेव पार्वती को कहते है– औषधि विशेष योग से मूर्च्छित बांधा हुआ पारा अनेक रोगों को नष्ट करता है, तथा कुम्भक आदि प्राण निरोध द्वारा मूर्च्छित वायु भी अनेक प्रकार के रोग कास, सांस आदि अनेक दोषों का नाशक है। भस्मीभूत पारा तथा ब्रह्मरन्ध्र में स्थित प्राणवायु दीर्घायुष्यदाता है, बद्ध पारद तथा ब्रह्म—रन्ध्र में अवधारित वायु, दोनों ही आकाश में गमनागमन करा सकते है;

पारदीय अवस्था गुण निरूपण

दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः।
मारितो रुद्ररूपी स्याद्वद्ध साक्षात्सदाशिवः।।

(र.चि., र.सा., र.क., र.सा.प., र.र.)

अर्थात– पारद सर्व दोष मुक्त होने पर ब्रह्मा का रूप है, और मूर्च्छित हुआ पारद विष्णु का रूप होता है, तथा भस्म हुआ पारद रुद्र रूप कहा है, यही बद्ध हुआ पारद साक्षात् शिव रूप जानना चाहिए और–

मूर्च्छितो हरते व्याधीन्वद्धः खेचरसिद्धिदः।
सर्वसिद्धिकरो लोके निरूद्धो देह सिद्धिदः।।

(शब्दकल्पद्रुम)

अर्थात– मूर्च्छित हुआ पारद रोगों का नाश करता है, बद्ध हुआ पारद आकश में गमना गमन की शक्ति पैदा करने वाला तथा मृत पारद सर्वसिद्धि दाता होने से देह सिद्धि को देता है। और–

मूर्च्छा प्रपन्नों हर्षा च रोगान बद्धस्तथा खेचरतां ददाति।
मृतो मृतिं नाशयति प्रकर्षोज्जीयाद्रसेन्द्रोऽगणित प्रभाववः।।

(योग तरंगिणी)

अर्थात– मूर्च्छा को प्राप्त हुआ पारद रोगों का नाश करता है, मरा हुआ मृत्यु को जीतने वाला और बद्ध हुआ पारद आकाश गति का देने वाला, होने से अनेक प्रभाव वाले पारद की जय हो।

बद्धं विमुक्तचाञ्चल्यं नाद गन्धक जारणात्।
मनः पारदमाप्नोति निरालम्बाख्य खऽटेनम्।।

जिस प्रकार ओषधि विशेष प्रयोग द्वारा बांधा (आबद्ध) पारा चाञ्चल्य हीन होकर आकाश में गमनागमन करने योग्य हो जाता है उसी प्रकार नाद रूप गन्धक भस्म द्वारा विक्षिप्त-चित्त समाहित होकर निराकार सर्वव्यापक परमात्मा में अवस्थित होने योग्य हो जाता है। यहाँ पर नाद और चित्त का एक दूसरे में समाहित होना तथा पारद और गन्धक की जारण क्रिया द्वारा एक दूसरे में समाहित होने के स्वरूप की कल्पना से सर्व व्यापक परमात्मा में अवस्थित होने का अर्थ प्रतीत किया है।

रसौषध विशेष गुण की कल्पना से यथा–

रोगिभ्यो यो रसं दत्ते शुद्धिपाकसमन्वितम्।
तुलादानाश्वमेधांना फलं प्राप्तोति शाश्वतम्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– जो वैद्य सम्पूर्ण शुद्धि करके पारद की भस्म या उसका पाक करके रोगियों को औषध रूप देता है, उसको तुला दान तथा अश्वमेघ यज्ञ करने का अनश्वर फल प्राप्त होता है।

पारद फल निरूपण

पारद की महिमा का कोई पार नही, जिस प्रकार शिव महिमा अपरंपार है, उसी प्रकार पारद भी है। जितना भी पारद का गुण है, वह उसकी महिमा का ही स्वरूप है। इसी दुष्टि से पारद के मुख्य रूप से शास्त्रो में छः प्रकार के वक्ष्यमाण फलों को कहा है,–

1. दर्शन का फल 2. स्पर्शन का फल 3. भक्षण का फल 4. पूजन का फल 5. स्मरण का फल, 6. दान का फल।

1. दर्शन फल

विधि सहित किये हुए अश्वमेघ यज्ञों से अथक करोड़ों गौओं के दान से और हजारो मन स्वर्ण का दान करने से तथा काशी प्रयागादि पुण्य स्थलों में स्नान करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है, वही फल मनुष्य को केवल पारद के दर्शन से प्राप्त हो जाता है। यथा–

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात्।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन यत्सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

औषधरूप से पारद का सेवन तथा स्पर्शन, दान, ध्यान और पूजन करना यह पांच प्रकार वक्ष्यमाण फल बड़े-बड़े पापों को नष्ट करने वाले पारद की पूजा से प्राप्त होते हैं। यथा–

भक्षणं स्पर्शनं दानं ध्यानं च परिपूजनम्।
पन्चधा रसपूजोक्ता महापातकनाशिनो।।

(रसरत्नसमुच्चय)

पारद के दर्शन लाभ के प्रति रसेश्वर दर्शन लिखता है यथा–

केदारादीनि लिंगानि पृथिव्यां यानिकानिचित्।
तानि दृष्ट्वा च यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात्।।

(र.चि.वि.र.–र.सा.प.र.राय. रसेश्वर दर्शन रसेन्द्र सा. सं)

अर्थात– इस भूमण्डल पर केदार नाथ से लेकर जितने भी श्री महादेव जी के लिंग (प्रतिमा) है. उन सबके दर्शन करने से जो पुण्य होता है, वह पुण्य केवल रस (पारद) के दर्शन करने से मिल जाता है; अतः इस दृष्टि से पारद के बने शिवलिंग का दर्शन करने मात्र से मनुष्य शिव दर्शनों की भांति अनेक प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है। पारद शिव लिंग के दर्शन का लाभ उठाने की दृष्टि से हरिद्वार में कनखल के अन्दर पारद शिव लिंग का निर्माण कर श्रद्धालुओं के प्रति दर्शनार्थ रखा गया है। परन्तु अभी यह निश्चय नहीं कि वह विशिष्ट रासायनिक क्रिया द्वारा बंधा पारद है, अथवा नाग वंगादि में पारद को अलोह कर श्रद्धालुओं को भ्रमित किया जा रहा है। मैंने भी कुछ शिव भक्तों की विनती को स्वीकार करते हुए डिप्टीगंज, बुलन्दशहर में शिव मन्दिर के लिये उनके द्वारा लाए गए पच्चीस किलो पारद की शिवपिण्डी बनाकर उन्हें दे दी थी।

2. स्पर्शन का फल

पूर्वजन्मकृतं पापं सद्यो नश्यति देहिनाम्।
सुगन्धनिष्टसूतेन यदि शम्भुर्विलेपितः।।

(र.र.स.)

अर्थात– जिन मनुष्यों ने सुगन्धित वस्तुओं के साथ घिसे हुए पारद से शिव की पूजा की है, उनके पूर्व जन्म के किये हुए पापों को श्री महादेव जी शीघ्र ही नाश कर देते हैं।

चन्दनागुरुकर्पूरकुंकुमान्तर्गतो रसः।
मूर्छितः शिवपूजा सा शिवसान्निध्यसिद्धये।।

(र.चि.र.र.रा.रसे.सा.सं.)

अर्थात– चन्दन, अगर, कर्पूर, केशर और कस्तूरी के भीतर स्थित जो पारद मूर्छित है, वही शिव पूजा है, और उसी को शिव दर्शन होते हैं।

चन्दनागुरूकर्पूरकंक्कुममान्तर्यतो रस।
मूर्च्छितः शिवपूजायां शिव सन्निध्यसिद्धये।।

(रसार्णव)

अर्थात चन्दन अगर कर्पूर तथा केशर आदि में सुगन्धित द्रव्य के साथ मूर्च्छित पारद शिव पूजा में प्रयोग करने से शिव लोक की प्राप्ति कराने का साधन कहा है।

इस प्रकार पारद स्पर्शन फल का रूप शास्त्रोक्त दर्शन को मिलता है। प्रयोगात्मक–औषधरूप से पारद का स्पर्शन कुष्ठादिक अनेक प्रकार के संक्रामक रोगों का नाशक सिद्ध होता है।

3. भक्षण का फल

पारद भक्षण का फल तीन प्रकार के पाप (कायिक वाचिक, मानसिक), तीन प्रकार के ताप (दैहिक, दैविक, भौतिक) तथा तीनों दोषों (वात, पित्त, कफ) से उत्पन्न तीन प्रकार के रोगों (वार्तिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक) को नाश करता है और मनुष्य ब्रह्म ज्ञानियों को भी दुर्लभ ब्रह्म पद प्राप्त करता है। यथा–

भक्षणात् परमेशानि हन्ति पापत्रयं रसः।
तथा तापत्रयं हन्ति रोगान् दोषत्रयोद्भवान्।।
दुर्लभं ब्रह्मनिष्णातैः प्राप्यते परमं पदम्।

(रसार्णव)

पारद भक्षण का फल दूसरे रूप में कुछ इस प्रकार कहा है यथा–

उदरे संस्थिते सूते यस्योत्क्रामति जीवितम्।
स मुक्तो दुष्कृताद्घोरात्प्रयाति परमं पदम्।।

(र.र.स.)

अर्थात् उदर में पारद के रहते हुए जिस मनुष्य का प्राण निकल जाय, तो वह मनुष्य घोर पा.ां से छूटकर परम पद को प्राप्त करता है।

4. पूजन का फल

पारद द्वारा निर्मित किए गए शिव लिंग बनाकर पूजन करने से तीनो लोकों में जितने शिवलिंग है, उन सब की पूजा के फल को प्राप्त होता है। यथा–

विधाय रसलिङ्गं यो भक्तियुक्तः समर्चयेत्।
जगत्त्रितयलिंगानां पूजाफलमवाप्नुयात्।।

(रस.र.समु.)

पारद पूजा करने का दूसरा फल– यथा–

स्वयंभूलिंगसाहस्रैर्यत्कलं सम्यगर्चनात्।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिंगार्चनाद्भवेत्।।

(नि.र.–र.सा.प.–र.रा.प.रसे.सा.स.)

अर्थात– सहस्रोंशिवलिंगों की पूजा करने से जो फल प्राप्त होता है, उस से कोटि गुणा फल (रसंलिंग) पारद के शिवलिंग की पूजा करने से होता है।

5. स्मरण का फल

हृद्योगकर्णिकान्तःस्थं रसेन्द्रं परमेश्वरि।
स्मरन् विमुच्यते पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः।।

(र.सा.सं.र.रा.प.–र.चि.नि.र)

हे पार्वती! जो मनुष्य हृदयकमल में स्थित पारद का स्मरण करता है, वह अनेक जन्मों के संचित पापों से तत्काल छूट जाता है।

हृद्व्योमकर्णिकान्तःस्थरसेन्द्रस्य महेश्वरि।
स्मरणान्मुच्यते पापैः सद्यो जन्मान्तरार्जितैः।।

(रसार्णव)

हे माहेश्वरी मनुष्य हृदय में अभ्रक को धारण किये हुए पारद के स्मरण से जन्मजन्मान्तर के उपर्जित पापों से शीघ्र ही मुक्त हो जाता है; अर्थात अभ्रक जारित सिद्ध पारद का स्मरण जन्म जन्मान्तरो के पापों से मुक्त करता है।

6. दान का फल

रोगिभ्यो यो रसं दत्ते शुद्धिपाकरसान्वितम्।
तुलादानाश्वमेधानां फलं प्राप्नोति शाश्वतम्।।

(र.र.स.)

अर्थात जो मनुष्य शुद्ध पाक (अर्थात परिपक्वरस जो कच्चा न हो) ऐसा सिद्ध पारद रोगियों के लिये देता है, वह निरन्तर तुला दान एवं अश्वमेघ यज्ञों के फल को प्राप्त होता रहता है।

रस विद्या के दान का फल

रस विद्या (रस का ज्ञान एवं उसके समुचित प्रयोग) सबसे उत्तम विद्या ज्ञान है, और वह तीनों लोकों में दुर्लभ है, यह युक्ति (ऐहलौकिक ऐश्वर्य भोग) तथा मुक्ति (सांसारिक दुःख-सुख एवं आवागमन से मोक्ष) देने वाली है, अतः पारद के गुणों को जानने वाले मनुष्य, गुणशाली साधक मनुष्यों के लिये रस विद्या का दान करे। यथा–

रसविद्या परा विद्या त्रैलोक्येऽपि सुदर्लभा।
भुक्तिमुक्तिकरो यस्मात् तस्माद्देया गुणान्वितैः।।

(रसार्णव)

पारद के शिव लिंग निर्माण भेद से प्राप्त पूजन का फल

पारद के शिव लिंगो का निर्माण अनेक प्रकार से होता है; उसमें खगवाद अर्थात अभ्रक के संयोग से निर्मित (अभ्रक और पारद से बना) शिवलिंग पूजना अधम, विभिन्न विड के साथ निर्मित पारद शिव लिंग का पूजन मध्यम, मन्त्रनिर्मित पारद लिंग का पूजन उत्तम तथा रसवाद अर्थात रसक (खर्पर या उपरस महा रसादि) के संयोग से निर्मित पारद के लिंग का पूजन सबसे उत्तम होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रस लिंगो का निर्माण चार प्रकार से होता है 1. अभ्रक संमिश्रण से बना अधम, विल (विड) निर्मित रसलिंग मध्यम, मन्त्र निर्मित रस लिंग उत्तम तथा (रसक खर्पर, उपरस महारस) आदि की दुर्लभ क्रियाओं द्वारा बना शिवलिंग महोत्तम (सबसे उत्तम) होता है। यथा–

अधमः खखवादस्तु विल(ड)वादस्तु मध्यमः।
उत्तमों मन्त्रवादस्तु रसवादो महोत्तमः।।

(रसार्णव)

आजकल कुछ दुष्ट लोग रस ज्ञान से अनभिज्ञ होने पर भी रस ज्ञान का धोखा देकर नाग-वंगादि द्वारा निर्मित शिव लिंगो का निर्माण कर उन्हें पारद शिवलिंग बताकर बेचने का धन्धा करते है।

पारद का शिवलिंग स्वर्ण रजत अथवा ताम्र के संयोग से (बुभूक्षित पारद में इनका आत्मसात होने पर) रस लिंग का निर्माण करने से उत्तम रस लिंग पूजा का फल प्राप्त हो जाता है, तथा महारसादि (तुथ्य) द्वारा रसलिंग का निर्माण सर्वोत्तम रूप से फलदायक माना गया है।

सर्वोत्तम पारद का शिवलिंग निर्माण करने के लिये संस्कारित पारद लेकर द्रुत गति को प्राप्त हुए स्वर्ण रजत, अथवा ताम्र इनको समान मात्रा में पारद के साथ आत्मसात् कर उसका बन्धन करावे; अथवा रस उपरत्न महारसादि के साथ पारद का आत्मसात कराने से भी सर्वोत्तम रसलिंग का निर्माण हो जाता है। शिवकृपा से मैनें दोनों ही विधियों द्वारा पारद के शिवलिंग व पारद मणि आदि अनेक मूर्ति रूपों को बनाया है।

पारद के महात्म्य में मै यहाँ पारद धारण का सातवाँ फल इसलिये लिख देना उचित समझता हूँ कि मैंने अनूकूल रूप से जाना है- पारद धारण करने का फल शरीर की रक्षा करने की दृष्टि से कवच की भाँति विशिष्ट रक्षा सूत्र का कार्य करता है। वर्षों तक निरन्तर पारद गुटिका पहनने से शरीर में व्याप्त असाध्य रोग भी शान्त हो जाता है तथा पारद का धारण अनेक प्रकार के संक्रामक रोगो से भी शरीर की रक्षा करता है, मणि माणिक्य हीरा आदि बहुमूल्य धातुओं की अपेक्षा अकूत गुणशाली पारद का धारण करना जानना चाहिए।

मनोवांछित फलों के दाता शिव की भांति जो पारद को जानने का प्रयास करता है, वह रस क्रियाओं का ज्ञान होने पर उत्तम फलों को प्राप्त करता है। जो व्यक्ति पारद को दोष दृष्टि से देखता है, उसका कल्याण कदापि नही होता। रस विद्या का ज्ञान एवं उसका समुचित उपयोग करना ही सबसे उत्तम विद्या जाननी चाहिए। ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना देवताओं को भी दुर्लभ है, इस ज्ञान की प्राप्ति होने पर ऐहलोकिक एवं पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों को मनुष्य सहज प्राप्त कर लेता है। पारद में आस्तिक बुद्धि रखने पर ही सिद्धि की आशा की जा सकती है, यथा-

अस्तीति भाषते कश्चित् कश्चिन्नास्तीति भाषते।
आस्तिके तु भवेत्सिद्धिः तस्य सिद्ध्यति भूतले।।

(रसार्णव)

अर्थात- कोई व्यक्ति पारद की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसकी विशेषता (फल) को कहता है और कोई व्यक्ति उसकी विशेषता को नही कहता, पारद में आस्तिक बुद्धि होने पर उसकी सत्ता को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को संसार में सफलता मिलती है।

पारद निंदक की दशा

यथा :

यश्च निंदति सूतेन्द्रं शंभोस्तेजः परात्परम्।
स पतेन्नरके घोरे यावत्कल्पविकल्पना।।

(र.रत्न.स.स.र.क.)

अर्थात जो सर्वोत्तम शिव के तेज पारद की निंदा करता है वह कल्प और विकल्प पर्यन्त घोर नरक में पड़ता है।

ब्रह्मज्ञानेन सोऽयुक्तो यः पापी रसनिन्दकः।
न हि त्राता भवेत्तस्य जन्मकोटिशतैरपि।।

(रसार्णव)

जो रस की निंदा करने वाला पापी है, उसको ब्रह्म ज्ञान नही होता, और कोटि जन्मों में भी उसकी रक्षा नहीं होती।

पारद की निंदा शिव निंदा की भांति जाननी चाहिए, अतः जो व्यक्ति पारद का थोड़ा भी ज्ञान रखता है और उसके महत्व को स्वीकारते हुए उसकी विशेषता को कहता है, उसे भी शिवमाहात्म्य का फल प्राप्त होता है, जो ऐसा कहता है, पारद कुछ नहीं सब बेकार की बाते है, ऐसा कहना भी नही है, ऐसा पापी शिव निन्दा के पाप से युक्त- सूअर, कुत्ता, गदहा, आदि अनेक पशु योनियो में उसका जन्म होता है।

प्रकरण-5

रस निरुक्ति प्रकरण

आयुर्वेद में संस्कारित पारद को "रस" नाम से जाना जाता है, "रस" ही जीव है, ऐसा जानते हुए "रस" रूप को प्राप्त हुआ पारद (षोडश संस्कारित) क्रिया विधि विशेष के संयोग से जीवन दाता शक्ति वाला "रस" कहा गया।

रसरत्नसमुच्चयकार ने रस शब्द की निरुक्ति में पारद को जरा-व्याधि को हर लेने से मृत्युञ्जय की कल्पना से "रस" (अमृत) स्वरूप को मानते हुए कहा है,

रस्यते (जरारुङ्मृत्युनाशाय) इति रसः
जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मतः।

दूसरे शब्दों में रस की निरुक्ति कुछ इस प्रकार से की गई है।

रस्यतेऽमर्त्यमर्त्याद्यैर्भुक्तिमुक्तिप्रलिप्सुभिः।
यतस्ततो रस इति प्रोच्यते पारदो बुधैः।।

(बृ०यो०)

अर्थात- भोग और मोक्ष को चाहने वाले देवता और दैत्य लोग इस पारद का रस चखते है, इसलिये पण्डित जन पारद को रस कहते है।

रसनात् (सर्वधातूनां) रसः यथा
रसनात् सर्वधातूनां रस इत्यमिधीयते।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात पारद स्वर्णादिक धातुओं को जीर्ण करने के कारण रस कहलाता है, यथा-

कनकं च लीयते सूते

(र.र.स्रम.)

अथवा

रसनात्सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते।
जरारुग्मृत्युनाशाय रस्यते वा रसो मतः।।

अर्थात जो समस्त धातुओं को खा जाता है, ऐसा पारद रस कहा जाता है, अथवा जो बुढ़ापा, रोग, मृत्यु नाश करने के लिये चखा जाता है, इसलिये पारद को रस कहा जाता है।

अनेक शास्त्रों में पारद की निरुक्ति "रस" नाम से की गई है; जिसका मुख्यतः अर्थ जरा व्याधि नाशक के रूप में ही किया गया है, परन्तु इस शब्द का बड़ा ही व्यापक अर्थ है; जिसने जितना जाना उतना तो अवश्य लिख दिया है। "रस" ही जीव है, ऐसा मानते हुए सभी प्राणियों का मुख्य आधार रस होने के कारण जीवनोत्पत्ति एवं मृत्यु का कारण रूप रस ही है, इस विचार को ध्यान में रखते हुए पारद में रस की कल्पना करते हुए उससे जीवन की कल्पना ममुक्षुओ द्वारा प्राच्य काल से की जाती रही है।

रसवीर्यविपाके च सूतकस्त्वमृतोपमः।
तेन जन्मजराव्याधीन् हरते सूतकः सदा।।

(रसार्णव)

यहाँ पारद को "रस" वीर्य एवं विपाक में अमृत के समान कहा है, इसीसे वह जन्म- मरण तथा जरा (वृद्धावस्था) एवं रोगों को हरता है।

इस शब्द की व्यापकता का अर्थ तो उसके उच्चारण मात्र से हो जाता है यथा-

रसो जलं रसो हर्षो रसः श्रृंगारपूर्वकः।
स्वाद्वादिषु च निर्यासे पारदेऽपि रसो विषे।।

साहित्य मर्मज्ञ रस शब्द से श्रृंगार, हास्यादि सब रसों का बोध होता है, औषध वैद्य मधुराम्लादि छह रस का ज्ञान करते है; परन्तु रस तन्त्रों में पारद ही रस शब्द की निरुक्ति में देखा जाता है।

रसक्रिया भेद निरूपण

पाञ्चभौतिक तत्वों से युक्त सभी प्राणियों में रस की उत्कर्षता से ही जीवन वृद्धि होती है। रस का ह्रास होने पर जीवन की समाप्ति हो जाती है क्यूंकि रस ही धात्वादिक क्रिया भेद रूप से समस्त सृष्टि में व्याप्त होकर जन्म-मरण का कारण रूप है। अमृत रूप होने से सृष्टि का मुख्याधार जीवनोत्पत्ति, वृद्धि, क्षय एवं मृत्यु का कारण रूप होकर प्रकृति से भिन्न नहीं है, जो ऐसा जानता है, वह ज्ञानी है।

इस क्रिया भेद से पारद में जो "रस" की कल्पना की गई है, उसका मुख्य आधर - "पारद" और "रस" दोनों का गुण स्वभाव एक रूप ही दिखाई पड़ता हैं। पारद विषयक ज्ञान की इच्छा वाले व्यक्तियों को इस सूक्ष्म ज्ञान के एक पहलू को थोड़ा खुलासा रूप देकर पारद में छुपे इस विशेष गुण से परिचित कराने का यहाँ मेरा प्रयास है।

"रस" स्वभावतः समस्त सृष्टि में व्याप्त है। बिना रस के सृष्टि की कल्पना अज्ञानी ही कर सकते है। पंचभूत देहादि सभी वानस्पतिक जीवों में रस ही प्रधान रहा है। सभी धात्वादिक गुणों एवं उनका संगठनात्मक स्वरूप भी इस क्रिया से जुड़ा हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है कि अणु मात्र भी रस के बिना इस सृष्टि में अस्तित्व में नहीं आता। अतः अति सूक्ष्म, सर्व व्यापक रूप से जाना जा सकता है। 'रस' गुण-प्रधान ही सृष्टि का मुख्य रूप है।

जीवोत्पत्ति का कारण रूप

पिता का शुक्र और माता का आर्त्तव होने से रस क्रिया का ही एक रूप शरीरोत्पत्ति के रूप में विकसित होता है; जिसका मुख्य कारण रस अपने में सर्व धातुओं का धारण करने से व अपने से अलग करने की प्रवृत्ति का गुण रखने से जाठराग्नि के विशिष्ट परिपाक द्वारा शरीरों का निर्माण करता है; इसी प्रकार पारद भी सर्व धातुओं को अपने में समाविष्ट करने व अपने से अलग करने की प्रवृत्ति का गुण रखता है, ये दोनों ही वीर्य एवं विपाक में, एक रूप गुण होने से पारद (शम्भुबीज) शरीर की उत्पत्ति का कारण रूप भी माना जाता है। धातु के अपने में आत्मसात करने व प्रकट करने की शक्ति के गुण से सम्पन्न पारद में छुपे इस विशिष्ट गुण को अपने प्रयोगात्मक रूपों से मैंने स्वयं भी सिद्ध करके देखा है; शास्त्रों में धातुओं का पारद में लय होने का प्रमाण, यथा–

अमृतत्वं हि भजन्ते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः।।

अर्थात् जिस प्रकार शिव मूर्तियों में मग्न हुए योगिराज मोक्ष को प्राप्त होते है, उसी प्रकार अभ्रक जारण किये हुए पारद में सुवर्ण आदि लीन हो जाते है; (र.र.स.–ह.)।

लयक्रम में पारद के ब्रह्मरूप को के लेकर–

यथा काष्ठौषध्यो नागे नागो वंगेऽ्य नंगमपि शुल्वे।
शुल्वं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते।।
परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम्।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते।।

(र.र.समु.र.ह.)

अर्थात जड़ी बूटियाँ (काष्ठ औषधि) सीसा धातु में लीन हो जाती है, सीसा– वंग (रांगा) में, और वंग तांबे में, तांबा चादी में, चाँदी, सोने में और सोना रस (पारद) में लीन होता है, जिस प्रकार परमात्मा में सकल सत्त्वो (जीवो) का लय होता है; उसी प्रकार रस (पारद) में भी समस्त सत्त्वोंका लय होता है, अर्थात जड़ी बूटी स्वर्णादि धातु और रस उपरसों का लय होता है, वह रस (पारद) ही एक ऐसा तत्त्व है जो शरीर को अजर अमर बना देता है।

रसेन्द्र की निरूक्ति

रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इतिकीर्तितः।

अर्थात रस और उपरसो का राजा होने से पारद को रसेन्द्र कहा है।

सूत की निरुक्ति

देहलौहमयीं सिद्धिं सूतेऽतः सूतकः स्मृतः।

(र.सा.प.)

अर्थात– जो पारद देह एवं लोह की सिद्धि को देता है, उसको सूत कहते है

पारद निरुक्ति

रोगपंकात्विमग्नानां पारदानां च पारदः।

अर्थात– रोग रूपों को पार करने से पारद कहा है; मनुष्य देह रोग रूपी कीचड़ में फंस कर रह जाता है; पारद उसे उस रोगरूपी कीचड़ से बाहर कर (पार करने से) पारद कहा गया।

प्रकरण-6

वनौषधि प्रकरण

"रस" क्रियाओं में वनौषधियों का विशेष महत्त्व है, पारद के शोधन कार्य से लेकर मूर्च्छन, मारण, जारण एवं भस्मीभूत क्रियाओं तक अनेक वनौषधियों के प्रयोग का वर्णन शास्त्रोक्त रूप से पाया जाता है। कुछ ऐसी विशिष्ट औषधियों की विवेचना भी की गई है, जिनके प्रभाव से शीघ्र ही बन्धन को प्राप्त होकर भस्मीभूतादिक दुर्लभ पारद सिद्धि प्राप्त हो जाती है। ऐसी वनौषधियों को दिव्यौषधि कहकर पुकारा जाता है। इनके रस में पारद का स्वेदन-मर्दन और जारण करने पर पारद की सिद्धि का उपाय सहज रूप होकर उत्तम फलों की प्राप्ति कराने वाला होता है। अत: ऐसी जड़ी बूटियों की तलाश दीर्घ काल से होती रही है, जिसका मुख्य क्षेत्र हिमालय पर्वत माना गया है।

रसौषध एवं पारद दोनों ही एक रूप आत्मसात् करने की शक्ति, से एक दूसरे में निर्लिप्त होकर बंधन एवं जारण क्रियाओं में प्रशस्त है; जो रसज्ञाता ऐसा जानता है, वह अन्य रस सिद्धों की अपेक्षा बहुत कम समय में रस सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। अत: रस क्रियाओं में वनौषधियों के महत्व को देखते हुए, इनका ज्ञान होना भी बहुत आवश्यक हो जाता है। जो साधक वनौषधियों का ज्ञान नहीं रखता उसे पारद सिद्धि का मार्ग सहज प्राप्त नहीं होता क्योंकि पारद सिद्धि में कार्योपयोगी रस, उपरस, महारस, रत्न व धात्वादिक तत्त्वों का शोधन, मारण, जारण आदि क्रियाएँ वनौषधियों के सहयोग से ही की जाती हैं। प्राच्यकाल से ही परम्परागत प्राप्त परलत ज्ञान रससिद्ध क्रियाओं से जुड़ा हुआ अनेक रस सिद्धों के पास अतिगोपनीय रूप से छुपा था, धीरे-धीरे कालान्तर में उसका ह्रास होता चला गया, जो अब शास्त्रोकत वर्णित क्रियाओं के रूप में ही दिखाई पड़ता है। अब भी अनेक शोधकर्त्ताओं द्वारा हिमालय आदि क्षेत्रो में वनौषधियों की खोज का कार्य चलता रहता है; मुख्यत: इन वनौषधियों को तीन भागों में बांटा जा सकता है– 1. दिव्यौषधि 2. महौषधि 3. औषधि।

1. दिव्यौषधि– दिव्यौषधि गुण विशेष रूप से देखी जाती है। 2. महौषधि– दिव्यौषधि से कुछ कम विशेष गुण वाली होती है। 3. औषधि– साधारण गुण रखने वाली मानी जाती है।

आज इन जड़ी बूटियों का ज्ञान बहुत कम व्यक्तियों के पास है। रस क्रिया में संलग्न व्यक्ति को वनौषधियों का ज्ञान स्वयम् नहीं हो तो जड़ी-बूटियों की जानकारी रखने वाले व्यक्ति के साथ सम्पर्क बनाकर रखना चाहिए।

रसार्णव आदि जिन रस ग्रन्थों में वनौषधियों का वर्णन किया गया है, मुख्यतः उन्हें निम्नलिखित 11 भागों में विभक्त कर पारद क्रियाओं से जोड़ा गया है-

1. पारद मारण औषधियाँ
2. पारद बांधने वाली औषधियाँ
3. पारद द्रावण कारक औषधियाँ
4. पारद को क्रामण करने वाली औषधियाँ
5. पारद शोधन बन्धन जारण कारक औषधियाँ का वर्णन
6. पञ्च रत्न अष्ट मूलिका
7. सिद्ध पञ्च रत्न औषधियाँ
8. द्रावण पञ्चक
9. पारद नियामक औषधियाँ
10. निर्जीव कारक औषधियाँ
11. अम्ल वर्ग की औषधियाँ

1. पारद मारण औषधियाँ– कड़वी लौकी गो सन्धि (एक वनस्पति) देव दाली (बन्दाल) इन्द्रायण (गवाक्ष) देशी भाषा में उत्तरी भारत में फरफैद्का के नाम से भी यह औषधि जानी जाती है, वाकुची, त्रहम बीज (पलाश पापड़ा) कपास की लकड़ी, काला जीरा, क्षीर काकोली कन्चुकी, कृष्ण कनक (काला धत्तूर), श्वेत मदार (सफेद फूल का आक) पिपीलुक (डिढोरी का वृक्ष) दन्ती, यवचिन्वा (इमली), ककड़ी, करेला, जंगली गोभी, काकजंघा, महाकाली (वृश्चिकाली), शम्भारी (मूणकर्णी) श्वेत गुन्जा, श्वेत अंकोल-मीठा परवल तथा बेल इन सभी औषधियों का प्रयोग पारद मारण क्रियाओं में किया जाता है।

2. पारद को बांधने वाली औषधियाँ– पारद को बांधने वाली औषधियों में मुख्य रूप से प्रयोग की जाने वाली औषधियों के नाम- रक्त सैंहुड़, सोमलता, रुद्रवन्ती, लालचीता, शाखोटकी (सागवान), दग्ध रुहा (एक दिव्यौषधि), मोदनी (अजमोद), विधायरा, त्रिशूली (त्रिशूलनी लता), कृष्ण मंजरी, चकवड़ क्षीर कुकुटी, सेमर, देवदाली, शंखपुष्पी, मकोय, वानरी, नील ज्योति (दिव्यौषधि), त्रिदण्डी (त्रिदण्डी लता), ब्रह्मदण्डी (ब्रह्मयष्टी), चक्राक्रि (सुदर्शन लता), स्थल पदमनी (दिव्यौषधि), वतुल पर्णिका (चटुलपर्णी), अर्क पत्री (एकलता विशेष जिसके फूल आक के फूलों सदृश होते है), वंश पत्ररस (बांस के पत्तों का रस) ताम्रपर्णी (मंजीठ), ईश्वरी (बांझखेकसा), इन्दुरी (वाकुची) इन सभी का प्रयोग पारद बंधन क्रियाओं में किया जाता है।

3. पारद द्रावण कारक औषधियाँ– सूर्यवर्त (गजपिप्पली), केला-बन्ध्या, कर्कोटकी, वन सूरण (वज्र कन्द), उदक कण (जलपीपल), मकोय, संहिजना और बन्दाल, इन औषधियों से पारद की द्रावण क्रिया करे।

4. पारद को क्रामण कराने वाली औषधियाँ– मकोय, नागर मोथा, कासमर्द (कसौंदी) कृताञ्जली (छुई-मुई- एक लजालू लता जिसके पत्ते छूने पर मुरझा जाते हैं) वराण कर्णी (अश्वगंधा) सीटरी (औषधि विशेष) हंसपादी, अगरू, चंदन, शतावरी, पान,

नागनी (नाग दन्ती), ब्राह्मी, लक्ष्मणा बूटी (श्वेत कण्टकारी) अर्जुनी, क्षीरनाली, करेला, अर्कपत्र (आक के पत्तों का रस) कण्टकारी, चवी (चव्य) तथा कुरवक (रक्त सहचर)-ये सभी औषधियाँ पारद को बांधने वाली है।

5. पारद शोधन, बन्धन, जारण कारक औषधि विशेष का वर्णन– ब्रह्म दण्डी (ब्रह्म यष्टी), सुदण्ड (गोरक्षी सुदण्डी) तथा लौहदण्ड (मजीठ या लोहयष्टी-ये औषधियाँ क्रम से ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सदृश और रसायन क्रियाओं के योग्य है। यथा–

ब्रह्मदण्डः मुदण्डश्च लौहदण्डस्तृतीयकः।
एते रसायने योग्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।।

(रसार्णव)

कुछ अन्य मुख्य औषधियाँ भी रुद्रवंती, भृंगराज, भांग, लांगलीः अन्सल प्याज, तौलिया कन्द, सहदेवी छोटे पत्ते वाली दुद्धी, सिरवाली, चर्णपत्री, नागबला बेल पत्र, सेहुंड़ विधारा आदि भी इसी प्रकार के गुणों को प्राप्त कराने वाली है।

6-7 पञ्चरत्न अष्ट मूलिका–

भूपाटली च कौमारी सिंहवल्ली च शूकरी।
हेमपर्णी पटोली च नागवल्ली च भृंगराट्।।
इत्यष्टमूलिकाः प्रोक्ताः- पञ्चरत्नं श्रृणु प्रिये।

(रसार्णव)

हे देवी पारद के शोधन तथा मारण के लिये ये अष्ट रत्न हैं, भूपाटली (भोय पाढ़ल) कौमारी (घृतकुमारी), सिंहवल्ली (सिहीलता), शूकरी (वाराहीकन्द), हेमपर्णी (हेमपत्र या धत्तूर) मीठा परवल, पान तथा भृंगराज। ये अष्टमूलिका औषधियाँ है। पंचरत्न औषधियाँ यथा–

मन्त्रसिद्धासना देवि तथा कंकांलखेचरी।
इन्दिरा च क्षमापाली पञ्चमी तू निशाचरी।
पंञ्चरत्नमिदं देवि! रसशोधनजारणे।।

(रसार्णव)

मन्त्र सिद्धाषना, कंकाल खेचरी, इन्दिरा, क्षमापाली तथा निशाचरी-ये पञ्च रत्न औषधियाँ पारद के साथ योग होने से खेचरी सिद्धि को देती है। यथा–

रसस्य बन्धने शस्तमेकैकं सुरवन्दिते।
रसांकुशेन गृह्णीयात् पञ्चरत्नानि सुव्रते।।
ददाति खेचर्री सिद्ध रसभैरवसंगमे।

(रसार्णव)

8. द्रावण पञ्चक– गुन्जा (चोंटनी) सुहागा, मधु, घृत तथा गुड़ ये द्रावण पंचक कहे हैं।

9. पारद नियामक औषधि– जलपीपल, सर्वाक्षी (विष्णुकान्ता) कर्कोटकी, कन्चुकी, शतावरी, भृंगराज, सरफोंका, पुनर्नवा (सांठी), मण्डूकपर्णी, मत्स्याक्षी (ब्राह्मी), ब्रह्मदण्डी, विखण्डनी (गुन्जा या यूथिका), अनन्ता (अनन्त मूल), काकजंघा, मकोय, कपोतिका (नरम मूली), कटसरैया, सहदेवी, नागबला, महावला, कृष्णा (कुटकी), पाऽल, आँवला, नील और ज्वालनी, पद्मचार्णी (कमलनी) गोभी (जंगली गोभिया), गांजवा (भांग की जाति का एक नशीला पौधा), दूर्वा (दूबघास), कोकिलाक्षा (क्षुरक गोरूक्ष), धनध्वनि (नागर मोथा), आखुपर्णी (मूसाकर्णी), शालपर्णी (त्रिषणा), द्विपर्णी (पृश्निपर्णी), कचूर, तिन्तिडीक, (वृक्षाम्ल) क्षीरणी (गम्भारी), रास्ना, मेडासिगी, सेमर, काली तुलसी, सफेद तुलसी तथा अपराजिता-इन सभी के पुष्प, मूल एवं पत्रों से युक्त पञ्चांग का प्रयोग किया जाता है।

10. निर्जीव कारक औषधियाँ– चण्डाली (शिव लिंगी), राक्षसी (सुगन्ध द्रव्य), व्याधि (कांटो भरी कटेली), खंगारी (खडंगभार), गजकर्णिका (इन्द्रायण कट रस बेल), शंखपुष्पी, अग्नि धमनी या दमनी (जवासा भेद), शृंगी (रक्तकाकड़ा सिंगी), रक्तिका (लाल घुंगची), काला चित्रक, शृगाल जिव्हा, भटकटैया बज्री (सेंहुड़) विधारा, चक्रमर्द, राई, वांझखेकसा, नरकसा, नील वृक्ष, रुद्रन्ती, ब्रह्मयष्टी (ब्राह्मी), उच्चटा (श्वेत गुन्जा), लक्ष्मणा बूटी, घृतकुमारी, रक्त चित्रक, लक्ष्मी (श्वेत तुलसी), शाखोटक (सागवान), मेढ़ा सिंगी (क्षीरकंचुकी), हिमावर्ती (एक प्रकार की पहाड़ी वनस्पति), सोमलता, अजमोद, व्याघ्रनखी, लसोड़ा, मकोय, केशनी (जटामांसी), विधारा (कोष्टराक्षी), हेमपुष्पी (स्वर्ण यूथिका), काक मुण्डी (काकतुण्डी), कालिका (काकोली), तोप बल्ली (अमृतबल्ली), ताम्बूल (पान) तथा सूर्य भक्ता (हुर-हुर)-ये सभी औषधियाँ पारद को निर्जीव करती है अर्थात् चांचल्य दोष दूर करती है।

11. अम्ल वर्ग की औषधियाँ– इनका प्रयोग पारद को निर्मल करने में किया जाता है अम्लवेत, जम्बीरी नींबू, चणक, अम्लवृक्ष, चांगेरी (खटरी तिपारीया) नारंगी, इमली, बिजोरा, (नींबू की जाति का) तथा कांजी आदि का प्रयोग किया जाता है। रस क्रियाओं में अम्ल वर्ग, की औषधियों का प्रयोग जानने वाला भी रससिद्धि में शीघ्र निपुण होता है।

रसशास्त्रों में पारद गुटिका बनाने का बड़ा महत्व माना गया है क्योंकि पारद बंधने पर देह सिद्धि एवं लोह सिद्धि के लिये कार्योपयोगी होता है। प्राचीन रसग्रन्थों में पारद गुटिका (पारद बांधना) वनौषधि के सम्पर्क से विवेचित है। रसेन्द्र चूड़ा मणि नामक ग्रन्थ में वनौषधि को लेकर पारद बांधने और उससे ताम्र को स्वर्ण बनाने का उल्लेख किया गया है। कांगक्षेत्री नामक एक वनस्पति बेल जाति की होती है, इसके पत्ते छत्री के आकार के होते है, उनको तोड़ने से उनमें दूध निकलता है। इसकी जड़ में एक ही कन्द होता है। इस वनस्पति के रस में इतनी प्रबल शक्ति होती है, उसके स्पर्श मात्र से पारद बंध जाता है, फिर उस गोली को ताम्र अथवा चाँदी में वाहित करने पर स्वर्ण बन जाता है।

काली जाति का चित्रक होता है, उसके पत्तों का रस निकालकर दूध में डालने पर दूध का रंग काला हो जाता है। इस वनस्पति के रस में पारद को घोटने पर गोली बंध जाती

है।

काला भृंगराज के रस में एक तोला पारद पन्द्रह दिन घोटने पर बंध जाता है। एक लता पलाश तिलका नाम की होती है इसके पत्ते, फूल और फलियाँ सब पलाश के समान होते है। इसके कन्द से पीला रस निकलता है, इस रस में भी पारद की गोली बन जाती है।

एक अजगरी नामक वनस्पति होती है। उसकी बेल देखने में अजगर की भांति होती है। इस वनस्पति का रस भी पारद की गोली बांध देता है।

अजनायिका औषधी का रसकर्म में प्रयोग

पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि रसबन्धं सुद्दुर्लभम्।
त्रैलोक्यजननी या स्यादोषधी अजनायिका।।
तस्याः सम्पर्कमात्रेण बद्धस्तिष्ठति पारदः।

(रसार्णव)

अर्थात जो तीनों लोकों की माता अजनायिका नामक औषधि है, उसके सम्पर्क मात्र से पारद बद्ध होकर स्थिर रहता है।

विभिन्न औषधियों का रसकर्म में प्रयोग

गजारिस्पर्शनाद् देवि क्ष्मापालेन च बध्यते।
वज्रवल्लीरसेनैव भवितं गगनं प्रिये।।
जारयेद्वालुकायन्त्रे खोटो भवति तत्क्षणात्।।

(रसार्णव)

गजारि (गजमादन शल्लकी वृक्ष) के स्पर्श मात्र से, क्ष्मापाल नामक दिव्यौषधि से, पारद बद्ध हो जाता है, बज्रबल्ली (हड़जोड़) के रस के साथ अभ्रक को भावित करे और उसको बालुकायन्त्र में जारण करे, इससे वह उसी समय खोट हो जाता है।

इस प्रकार अनेक दिव्यौषधियाँ जैसे– तृणज्योति, स्थल, पद्मिनी, वृश्चिका, हंसपादी, सोमलता (निशाचरी) तुरसिंहली, हरीदरी, कंकाल खेचरी तथा मन्त्र सिंहासनी, आदि महौषधि, क्ष्मापाल, बध्याकर्कोटकी (बांझ खेकसा) वनकन्द (वन सूरण) लांगली (कलिहारी) उच्चटी, रक्तस्नुही, ज्योतिष्मती आदि रसबद्ध करने वाली दिव्यौषधिओं में दग्धारोहा नामक प्रसिद्ध दिव्यौषधि कही है, वह स्पर्श वेध करने वाली है। यथा–

दग्धारोहां प्रवक्ष्यामि रसबन्धकरी प्रिये।
स्पर्शवंधे तू सा ज्ञेया सर्व्वकार्यार्थसाधिनी।।

(रसार्णव)

महौषधि देवदाली का रस कार्यो में प्रयोग यथा–

देवदाल्या महौषध्या विधिं वक्ष्याम् तत्परम्।
सा श्वेता व्याधिनाशे च कृष्णपीता रसायने।।

(रसार्णव)

शुक्ल वर्ण वाली देवदाली रोग नाशक तथा कृष्ण एवं पीतवर्ण वाली रसायन कार्य में प्रयुक्त होती है। देवदाली का फल विष्णुकान्ता तथा पारद को एकत्र कर मूर्च्छन तथा बन्धन करे, यह शीघ्र ही ताम्र को स्वर्ण बनाता है। यथा–

देवदालीफलं देवि विष्णुकान्ता च सूतकम्।
मूर्च्छयेद्बन्धयेत् क्षिप्रं शुल्वं हेम करोति च।।

(रसार्णव)

प्रकरण-7

पारद भस्म प्रकरण

पारद भस्म करना रस क्रियाओं में जीव रक्षा की दृष्टि से अति उपयोगी जराव्याधि नाशक के रूप में तथा ताम्र वेधक की दृष्टि से देखा गया है, अतः ऐसा पारद भस्म प्राप्त करने के लिये ही रस सिद्ध-कर्त्ताओं का मुख्य ध्येय बना होता है। पारद भस्म करने के इच्छुक व्यक्ति मृगतृष्णा की भांति रस क्रियाओं के पीछे भागते हुए जीवन के आखिरक्षण तक भी अपना प्रयास जारी रखते है। आज भी अनेक पारद भस्म के इच्छुक व्यक्ति जड़ी बूटी आदि का सहारा लेकर पारद भस्म से जुड़ी कही से भी कोई जानकारी प्राप्त करने की कोशिश करते है। ऐसे व्यक्ति अनेक प्रयोगात्मक विधियों को अपनाते हुए अंधेरे में प्रकाश ढूँढ़ने की कल्पना से कार्य करते है; अतः ऐसे व्यक्तियों की जानकारी के लिये पारद भस्म को लेकर रस भस्म क्रियाओं का वर्णन करने से पूर्व रस भस्म क्रियाओं से जुड़ी संक्षिप्त जानकारी देना आवश्यक है। पारद अग्नि के सम्पर्क में आने पर दृढ़ मुद्रा को तोड़कर उड़ने की शक्ति रखता है। अतः पारद का स्वेदन, मर्दन कर जड़ी बूटियों के साथ उसका आत्मसात् करने से पारद बन्धित व मूर्च्छित होकर ऊर्ध्वपातजन्य गुण को त्याग देता है। अतः इस दृष्टि से कुछ दिव्यौषधि व महौषधि थोड़े परिश्रम से ही रससिद्धि के कार्य में सफल होती है। कुछ औषधियाँ जिन्हें "साधारण" औषधि की तीसरी श्रेणी में माना गया है, उनमें बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है। गन्धकादिक जारणा विधियों द्वारा पारद भस्म की कल्पना रस सिन्दूर आदि के रूप में की जाती है, वास्तविक रूप में वह पारद भस्म नही होती, बल्कि पारद और गन्धक का जारित हुआ सिन्दूर वर्ण का चूर्ण प्राप्त कर लिया जाता है। इन क्रियाओं में अग्नि के सहयोग से गन्धक और पारद की जारणा कन्वकूपियों की सहायता से कर पारद में आत्मसात् होकर गन्धक जारण होने से भूदर एवं बालुकादि यन्त्र विधियों द्वारा सुर्ख वर्ण का पारद चूर्ण प्राप्त कर उसे रसौषध की कल्पना से हरगौरी रसादि अनेक नामों से व्यक्त कर दिया गया है।

पारद की भस्म क्रियाओं से जुड़े एक बार एक महात्मा मुझे मिले उनका कहना था, पारद का श्वेत खीला उनके गुरू ने बनाया था। वह उसे पारद खील कहते थे जो ताम्र में वाहित करने पर स्वर्ण बना देती थी। इस प्रकार की किदवन्तियाँ जिनका कोई साक्ष्य प्रमाण नहीं होता सुनने को बहुत मिलती है।

पारद भस्म-1

चांदी की कटोरी में एक तोला पारद लेकर उसके ऊपर सफेद ढाक के फूलों का रस निचोड़ें, इसके बाद उसी ढाक के पेड़ में एक खकोदर बनाकर उस कटोरी को

सावधानी पूर्वक रखकर, उसी ढाक की सूखी लकड़ियाँ लेकर, कटोरी को तापित करे। ऐसा करने से पारद भस्मीभूत होकर खीला हो जाता है, यह पारद भस्म ताम्र वेधक होता है; (किदवन्ती)।

पारद की अनुभूत भस्म विधि-2

तिधारा (सैंहुड़ जाति का वृक्ष विशेष) इसमें तीन धार होती है जिनके सिरो पर नुकीले कांटे होते है जिन्हें तोड़ने पर दूध निकलने लगता है। नरम खाल पर यह दूध लगने पर उपाड़ लाता है। अतः दूध लेते समय आँख मुंह बचाना चाहिए।

विधि– एक तोला पारद लेकर सौ ग्राम तिधारा के दूध में घोटे। नष्टपिष्ट होने पर तिधारा की पंचाग भाग से लुग्धी भली भांति पीसकर बनावे, बाद में उस लुग्दी में तिधारा दूध के साथ हुए नष्ट पिष्ट पारद को रखे, फिर उसे खड़िया मिट्टी की दो शकोरियों के मध्य में रख कपड़ मिट्टी की सात परत चढ़ावे। जब कपड़ मिट्टी सूख जावे तब उसे गजपुट की अग्नि में पाँच सेर उपलों की आंच देकर निर्धूम स्वांग शीतल होने पर बाहर निकाल, सावधानी पूर्वक सम्पुट खोलकर, श्वेत धूम्रवर्ण का भस्म प्राप्त करें लेवे।

भस्म सूतम्-3

शुद्धं सूतं समं गन्धं वटक्षीरैर्विमर्दयेत्।
पाचयेन्मृत्तिकापात्रे वटकाष्टैर्विचालयेत्।।
लघ्वग्निना दिनं पाच्यं भस्मसूतं भवेद्ध्रुवम्।
द्विगुन्जं नागपत्रेषु पुष्टमग्नेश्च वृद्धिकृत्।।

(यो०चि०म०)

शुद्ध पारद और गन्धक समान मात्रा में लेकर बटवृक्ष के दूध में मर्दन करे फिर उसे मिट्टी के पात्र में पकावें। नीचे से अग्नि जलावे उपर पाक करते समय वटवृक्ष की लकड़ी से चलाते रहे। एक दिन मन्दाग्नि देवे तो पारद (सूत) भस्म हो जायेगा। मात्रा एक रत्ती पान में सेवन करे तो अग्निदीपन कर भूख बढ़ावे वृद्ध को भी तरुण करता है।

पारद भस्म-4

एक किलो ताजा भांग का रस निकालकर अग्नि पर अथवा थोड़ी देर तेज धूप में रखकर फाड़ लेवे, बाद में गाढ़े कपड़े से छानकर कांच की बोतल में भरकर रख देवे। पत्थर के खरल में शुद्ध पारद डालकर मात्रा एक तोला में, बोतल से थोड़ा भांग का रस डालते हुए मर्दन करती रहे। इस प्रकार एक तोला पारद के साथ थोड़ा-थोड़ा रस डालते हुए सम्पूर्ण रस का मर्दन कर एक शुष्क गोला तैयार कर लेवे लगभग पन्द्रह दिनों में पारद और भांग के रस की आत्मसातरूप से प्राप्त लुग्धी बन जाती है। फिर इस गोलक को गूलर की ताजा लकड़ी छः इन्च मोटी और दो फिट के लगभग लम्बी लेकर उसमें एक सिरे से सूराख करे– लगभग एक फिट गहरा गड्ढा कर उसमें गोलक को भर देवे। फिर बाकी बचे सूराख में, बाहर निकली छिलकन भरकर बन्द कर देवे, फिर नौ बार कपड़ मिट्टी

चढ़ाकर, बीस सेर उपलों को लेकर गजपुट की आंच देवे दूसरे दिन स्वांगसीतल होने पर सावधानी पूर्वक पारद भस्म को प्राप्त करे।

पारद भस्म-5

आखुकर्णी समग्रा च गुन्जा सर्वं समांशिकम्।
पेषयित्वा रसो नेयो बद्ध्वा वस्त्रेण साधितम्।।

पारदं मर्दयेत् शश्वद् दिनेकं खल्वयोगतः।
पातयेत्सप्तरात्रं तं पश्चाद्यामद्वयं तथा।।

औषधीभ्यां च तं ताभ्यां मर्दयेत्तदनु स्फुटम्।
हण्डिकां लेपयेदूर्ध्वं ताभ्यामेव समं रसम्।।

अधो दत्त्वा च मतिमादृढं सन्धिं निरोधयेत्।
द्वादशप्रहरान् यावन्नीचैर्नात्युच्चके भवेत्।।

वह्निशीतलमादाय परीक्षेत परीक्षकः।
अरुणादित्यसंकाशं सुन्दरं भस्म जायते।।

(गाथाश्लोक)

आखुकर्णी (मूसाकर्णी) और गुञ्जा (चोंटनी) दोनो का पंचांग समभाग में लेवे और बारीक पीसे। जब कल्क बन जाय कपड़े में रखकर, भलीभांति निचोड़कर, रस निकालकर, उस रस के साथ पत्थर के खरल में समभाग पारद डाल कर मर्दन करे। एक दिन मर्दन कर सात रात उसे रख छोड़े, आठवे दिन पुनः दोपहर दोनों औषधियों के साथ खरल करे। पुनः कल्क तैयार कर दो हंड़ियो के भीतरी भाग पर लेप चढ़ावे। एक हांड़ी में मर्दन किया हुआ पारद औषधियुक्त विधिपूर्वक रख दूसरी हांड़ी को ऊपर से संधि देवे। पहले मन्दाग्नि, मध्याग्नि और अन्त में तीक्ष्णाग्नि देवे शीतल होने पर हांड़ी का सम्पुट खोले। सम्पूर्ण पारद उड़कर ऊपर की हांड़ी में चला जाता है जो कि लाल वर्ण का भस्मपारद होता है।

पारद भस्म-6

नवप्रसूतासुरभिजरायुमिश्रितो ध्रुवम्।
अन्धमूसागतो ध्मातो म्रियते पारदस्तराम्।।

(गाथा श्लोक)

पहली बार व्याई गाय की अपरा के बीच पारद को रख उसे अन्धमूसा में भलीभांति वन्द कर तीव्राग्नि में धमन करने से पारद भस्मीभूत हो जाता है।

पारद भस्म-7

काकोदुम्बरिका दुग्धहिङ्गुमर्दनतो रसः।
म्रियते विधिना सम्यक् खोटरूपो हि जायते।।

(गाथा श्लोक)

कठ गूलर के दूध में हींग को भावित करे और उसी में पारद डालकर एक दिन मर्दन करे। बाद में छोटी-छोटी टिकिया बना कर सुखा लेवे। शराव सम्पुट (दो सकोरों के बीच) रखकर अग्निद्वारा पाक कर लेवे तो पारद भस्म हो जाता है! रस रत्न समुच्चयकार ने इस योग को कुछ परिवर्त्तन करके दिया है। हींग में कठगूलर के रस की भावना देवे और उसी के कल्क की दो मूसा बनावे उस मूसा में पारद रखकर सम्पुट कर मन्दाग्नि में पाक करने पर पारद भस्म होना लिखा है।

पारद भस्म-8

लज्जालुरससम्पिष्टो निबद्धः पारदो भवेत्।
नष्टपिष्टो विधातव्यो मूषिकामध्यसंस्थितः।।
तद्रसैश्च पुनः सम्यग् म्रियते पुटपाकतः।।

(गाथा श्लोक)

पत्थर के खरल में एक भाग पारद और चार भाग लाजवन्ती (लज्जालूलता) का स्वरस लेकर तीन दिन तक मर्दन करे। जब पारद नष्टपिष्ट हो जावे उसका गोला बनाकर पुनः लज्जालूलता का पञ्चमूल रस निकालकर एक बार फिर मर्दन कर एकत्र करे, फिर उसे मूसा में बन्द कर विधिवत शराब सम्पुट पाक करने से पारद भस्म होता है।

पारद भस्म विधि-9

अपामार्गासन्दता क्षाटिका लवणं भवेत।
आपूर्य हण्डिकां तेन मध्येगत म्रिथोकुरू।।

तन्मध्ये पारदंदत्वा भृंग राज रसं तथा।
दत्वाऽथ पालिकां दध्यात्तत सन्धि विमुद्रयेत्।।

दीपाग्नि क्रियते तत्र पावच्च प्रहरद्वयम्।
एवं रसो सूतो भूयात्वा खोट रूपः सितोऽथवा।।

(गाथा श्लोक)

अपामार्ग (औंगा यह लटदार चिरचिटा होता है, इसमें लम्बी-लम्बी बालियाँ निकलती है, जिनमें अनीदार काँटें होते हैं, उन्हीं में बीज छुपा होता है) इसे लगभग बीस सेर लेकर छोटे-छोटे टुकड़े कर एक बड़ी हांड़ी में भर देवे, ऊपर से एक ढकना लगाकर मुख बन्द कर देवे (भली भांति मिट्टी का लेप चढ़ावे) बाद में अग्नि पर चढ़ाकर सबकी भस्म बना लेवे भस्म को हांड़ी से बाहर निकाल कर उसे बारीक पीस कर कपड़ छान कर लेवे, उस भस्म को पुनः हांड़ी में बिछाकर दबावे और मध्य में एक छोटा गड्डा कर पारद को रखे और ऊपर भृंगराज का रस निकाल कर छोड़े फिर हांड़ी का पुनः मुख बन्द कर अग्नि पर चढ़ाकर क्रमशः अग्नि देवे। पहले मन्दाग्नि फिर मध्याग्नि बाद में तीक्ष्णाग्नि

देवे बाद में स्वांग शीत होने पर पारद भस्म प्राप्त करे।

पारद भस्म–10

कंटकारीकाकमाची कृष्णधन्तूरकै रसैः।
दिनं रसं विमर्द्याथ नवस्थाल्यां विनिक्षिपेत्।।
पटुनापूर्य तन्मूर्न्धि कुरु तोयाश्रितां पराम्।
दहेद् दीपाग्निनाधःस्था भस्म यात्यूर्ध्वभांडके।।

(निघंटु रत्नाकर)

अर्थात– कटेरी, मकोय, काला धतूरा इनके रसो में एक दिवस तक पारद को मर्दन कर नवीन हांड़ी में भर देवे और उस पर नोन साम्हर (पिसा हुआ) भर देवे फिर उस हांड़ी पर दूसरी हांड़ी रख कपरोठी करे। फिर ऊपर की हांड़ी में पानी भर देवे। नीचे की हांड़ी में दीपाग्नि देवे तो भस्म ऊपर की हांड़ी के तले में लग जायेगी।

पारद भस्म–11

देवेदाली हंसपदी यमचिञ्चा पुनर्नवा।
एभिः सूतो विघृष्टव्यो पुटनान्म्रियते ध्रूवम।।

(रसेन्द्रसार संग्रह, र.सा.प.)

वंदाल, हंसराज, यमचिन्चा और सांठ इनके रस से पारद को घोट कर बालुका यन्त्र में पकावे तो पारद की भस्म होगी इसमें संन्देह नहीं है।

पारद भस्म–12

लज्जालू रससंपिष्टो बहुशः पारदो भवेत्।
नष्टपिष्टो विधातव्यो मूषिकामध्यसंस्थितः।।
तद्रसैश्च पुनः सम्यक् म्रियते पुटपाकतः।।

(रससारपद्धति)

लज्जालू अर्थात छुई मूई के रस में बारबार घोटने से पारा नष्टपिष्ट हो जाता है, फिर नष्टपिष्ट हुए पारे को मूषा में रख बालुका यन्त्र में पकावे तो पारा भस्मर्हा (मर) जायेगा।

पारद भस्म–13

श्वेतांकोलजटानीरैः सूतो मर्द्यो दिनत्रयम्।
पुटितमूषायां सूतो भस्मत्वमाप्नुयात्।।
प्रत्यहं रक्तिकापंच भक्षयेद्घृतमाक्षिकैः।

(रस मंजरी, रसेन्द्र सा.स.रस पारि)

सफेद अंकोल की जड़ के रस में पारद को तीन दिवस तक दृढ़ मर्दन करे, अन्ध मूसा में रखकर बालुका यन्त्र में रखकर पकावे तो पारद की भस्म होगी। इस भस्म को प्रतिदिन पॉच रत्ती घृत और शहद के साथ भक्षण करे तो इसके गुणो को धरती पर वर्णन

नहीं कर सकता है।

पारद भस्म-14

नागवल्लीरसैः पिष्टः कर्कोटीकन्दगर्भगः।
मृन्मूषासम्पुटे पको रसो यात्येव भस्मताम्।।

(वैद्यकल्पद्रुम, अनु.तर नि. र.रा.श. शार्ङ्गधर र.सा.व.श.क.)

वंगला पानों के रस में पारद को खूब मर्दन करे गोली बनावे। फिर उस गोली को ककोड़ा में रख ऊपर नीचे मांटी के सरवा से ढांक कपरोटी कर देवे और उस सम्पुट को गजपुट में फूंक देवे तो यह भस्म समस्त कर्मो में देने योग्य योगवाही होता है।

इस प्रकार औषधि विशेष संयोग से पारद भस्म की अनेक प्रक्रियाऐं शास्त्रों में उल्लेखित की गई हैं! रसार्णव ग्रन्थ तो पारद और औषधि विशेष का संयोग स्वर्ण निर्माण करने की अनेक विधियों से भरा हुआ है। यथा-

तस्याः कन्दरसं दिव्यं कृष्णराजिसमन्वितम्।
ताम्बूलेन समं कृत्वा गुटिकां कारयेद्बुधः।।
सर्व्वेषामेव लोहानां द्रुतानां वह्निमध्यतः।
सहस्त्रं वेधयित्वा तू काञ्चनं कुरुते क्षणात्।।

(रसार्णव)

दग्धरोहा के कन्द के दिव्य रस को काली राई में मिलाकर ताम्बूल के साथ रखकर बुद्धिमान व्यक्ति गुटिका बनावे यह अग्नि में द्रुत सभी लोहो को सहस्त्र वेधी बनाकर क्षण मात्र में कान्चन बना देती है।

तथैव म्रियते सूतः कान्तहेमाभ्रसंयुतः।
कूरुते कांचनं दिव्यं देवाभरणभूषणम्।।

उसी प्रकार दग्धा रोहा की गुटिका से कान्त लोह, स्वर्ण तथा अभ्रक से युक्त पारद मृत हो जाता है, और वह देवताओं के उत्तम आभूषण रूप दिव्य कांचन बना देती है।

जड़ी द्वारा पारद भस्म के गुण

मूलिकामारितः सूतो जारणाक्रमवर्जितः।
न क्रमेद्देहलोहाभ्यां रोगहर्ता भवेद् ध्रुवम्।।

(रस रत्नाकर)

जारण क्रम को छोड़कर केवल जड़ियों से पारद को मारते है तो वह पारद केवल रोगों का ही नाश करता है, देह एवं धातू सिद्ध नहीं करता।

दूसरा प्रमाण

रसौषधिमृतः सूतो गन्धकादिविवर्जितः।
न देहे नैव लोहे स क्रमते किन्तू रोगहा।।

(रस मानस)

गंधकादिकों से रहित पारद को केवल जड़ी से भस्म करे तो वह पारद देह तथा लोहे में प्रवेश नहीं करता है, किन्तु रोगों का नाशक अवश्य है।

पारद भस्म-15

चार तोला-सरसों का तैल लेकर उसे लोह पात्र में रखकर थोड़ा गर्म करे। जब तैल उबलने लगे तक उसमें शुद्ध पारद (हिंगुल से निकाला हुआ पारद) एक तोला लेकर तैल में छोड़ देवे और बर्तन अग्नि से नीचे उतार कर पत्थर के खरल में डालकर एक तोला शुद्ध बंग के साथ मर्दन करे। रांगा (वंग) और पारद की जब एक रूप पिष्टी हो जावे तब उस पिष्टी को तेल में से निकाल कर कपड़े से पोंछकर तेल साफ कर लेवे बाद में उसे तेजबल की ताजी लकड़ी की छाल और आक के फूल ताजे तथा धत्तूर फूल ताजे लेकर भली भांति पीस कर लुग्दी बना लेवे। फिर उस लुगदी में बंग पारद की बनी डली को रखकर एक सेर सूत की (कच्चे धागे जो रूई से चरखे द्वारा काते जाते हैं।) ऊपर सावधानीपूर्वक लपेट कर एक गोला बना लेवे, फिर उसे ऐसे स्थान में रखे जहाँ हवा न जाती हो। अग्नि सुलगा कर छोड़ देवे, तीन दिन बाद ऊपर की जली राख को सावधानी पूर्वक हटा कर भीतर की भस्म को निकाल लेवे। पारद भस्म वंग से अलग होकर बैठ जाती है, औषधि लुग्दी एक पाव के अंदाज में बनानी चाहिए, अगर भस्म कच्ची रहकर पृथक नहीं बैठती है तो पुनः सूत लपेट कर अग्नि देनी चाहिए। इस प्रकार प्राप्त हुई पारद भस्म का सेवन रबड़ी खोवा आदि दूध गाढ़ा कर उसमें थोड़ी खांड मिलाकर एक चावल की मात्रा में खाने वाला मिर्च तेल खटाई को त्याग कर घी-दुग्ध का सेवन करता हुआ एक महीना सेवन करे तो नपुंसक भी सम्भोग की सामर्थ्य से अति प्रबल वेग वाला हो जाता है।

प्रकरण-8

पारद बद्ध प्रकरण

इस वनौषधि के बहुत से नाम है, संस्कृत- युग्मफल इन्दिवश, फलकण्टका चाण्डाल दुग्धिका इत्यादि। हिन्दी-उतरण और मराठी में उतरणी, उतरडी, बंगाली में छागुल पाटी, पंजाबी में सियाली, गुजराती में नागली, दुधैली और तेलगू-गुरुति।

यह वनौषधि भारतवर्ष के गर्म ऋतु वाले सभी प्रदेशों में पूरे वर्ष पायी जाने वाली वनौषधि हे बरसात के दिनों में बहुतायत मात्रा में पायी जाती है। इसके पत्ते गोलाईनुमा नोकदार और रूऐंदार होते है, इसके फूल सफेद और फल आंकड़े जैसे दो दो मिले हुए होते है इसीलिये इसे फलयुग्मा भी कहा गया है, इसके फलों पर कांटे होते है। इन फलों में से आंकड़े की तरह रुई निकलती है। तथा इसका फल तोड़ने पर डाली में से दूध निकलता है। तथा यह बहुजीव लता के रूप में वृक्षों और झाड़ों के ऊपर चढ़ी हुई रहती है। पारद बंधन क्रिया में इसकी जड़ का प्रयोग किया जाता है। इसमें से थोड़ी खराब गन्ध सी आती है। यह भी इसको जानने की एक पहचान होती है।

प्रयोग विधि

भली भांति शुद्ध किए गए एक तोला पारद को लेकर इस बनौषधि की जड़ निकाले फिर जड़ को मुंह में चबा-चबा कर पारद पर उसका रस निचोड़ता रहे और पारद को रस के साथ पत्थर के खरल में घोटता जावे इस प्रकार सात-दिनो तक पारद को छोटे तो पारद मक्खन के समान गाढ़ा हो जाता है, फिर पारद को कपड़े की पोटली में बन्द कर उस पोटली को धत्तूर के फल में रखकर ऊपर से गऊ का गोबर चढ़ावे जब सूख जावे तब एक उपला लेकर उसके बीच छोटा गड्ढा करे जिसमें वह फल आ जावे ऊपर बकरी की मैंगनियों से ढककर जमीन में उस उपले के आकार का गड्ढा खोद कर उसमें उस उपले को रख देवे और आग सुलगा देवे जब अग्नि शीतल हो जावे तब उसे निकाल कर दूसरे धत्तूर फल में रखे पुनः पूर्व की भांति कार्य करे इस प्रकार क्रम से थोड़ा थोड़ा बकरी की मैंगनिया बढ़ाते हुए अग्नि को बढ़ाते हुए सौ- धत्तूर फल में पचावे बाद में उसी प्रकार दाल चावल की खिचड़ी में पकाकर सौ पुट और देवे जब इतना कर चुके तो पारद की सख्त गुटिका चांदी सद्रश बंध जायेगी जिसका प्रभाव विशेष गुण वाला होता है। इसे स्वर्ण अथवा चांदी पत्र से मढ़वा कर गले में पहन लेवें। (म.पा.लि.)।

रस (पारद) बन्धन

रम्भा वीरस्नुही चैंव क्षीरकञ्चुकिरेव च।
दिनारिश्चैव गोरंभा मीनाक्षी काकमाचिका।।
एभिस्तु मर्दितः सूतः पुनर्जन्म न विद्यते।।

(यो. र. नि. र.)

केले का रस आक, थूहर, क्षीरकंचुकी, दीनारि, गोरम्भा, मछैधि, मकोय, इनके साथ मर्दन करने से पारद का पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात पारद महामूर्च्छित होता है।

रस (पारद) बन्धन-मूलिकाबद्ध

रजिकाफलिनीकंदतुलसीरसचित्रकैः ।
मूषा लेपस्तु कर्त्तव्यः क्षणार्धे वन्ध सूतकः।।

(यो. त.)

राई, फलिनी कन्द (जमीकन्द) तुलसी का रस और चित्रक इनसे घरिया में लेप कर एक क्षण तक अग्नि में रखे तो पारद बद्ध हो जावे।

रस बंधन गंध विधि

बलादरवभूधात्री सस्यघ्नी जिह्विकाम्बुभिः।
मर्दितस्तुर्यभावेन गंधकेन समन्वितः।।

वेष्टितो हिंगुना फल्गु क्षीराक्तेन दधित्थजे।
चूर्णं गर्भप्रदयोऽयमन्तर्लवणमीशजः।।

प्रध्मातः शनकैर्वद्धो रसो भवति नान्यथा।
वक्रस्थो वपुषः स्थैर्य करोत्यखिलरोगजित्।।

(यो०त०)

खरेटी (बला), नागरमोथा आख का दूध, भुँई आमला, सस्यघ्नी और बन गोभी- इनके रस से एक तोले गन्धक और चार तोले पारद, इन दोनों को घोट कर गोला बनावे उसके गूलर के दूध से पिसी हुई हींग का लेप देवे, फिर हींग से लिपटे हुए गोले को बेलगिरी के चूर्ण से लपेट देवे, तदनन्तर उस गोले को लवण यन्त्र में रखकर धोंके तो पारद बद्ध हो जाता है उसमें सन्देह नहीं उसको मुख में रखने से शरीर स्थिर होता है और समस्त दोषों को जीतता है।

प्रकरण – 9

अम्लपंचक प्रकरण

कोलदाडिमवृक्षाम्लचूल्हिकाचुक्रिकारसम् ।
पंचाम्लकं समुद्दिष्टं तच्चोक्तं चाम्लपंचकम्।।

(र.र.स., र.सा.प.)

अर्थात कोल (बेर), अनार, वृक्षाम्ल (अम्लवेत), चूल्लिका और चूका इनको (पंचाम्ल) अम्ल पंचक कहते है।

अम्लवर्ग

जम्बीरं नागरंगश्च मातुलुंगाम्लवेतसम्।
चांगेरी चणशुक्रश्च अम्लवर्गः प्रकीर्तितः।।

(काम रत्न)

अर्थात जंभीरी, नारंगी, विजोरा, अम्लवेत, चांगेरी (खट्टी तिपतिया) और चने का खार-इनको अम्लवर्ग कहते है और

अम्लवेतसजम्बीर-लुङ्गाम्लचणकाम्लकम् ।
नारङ्गं तिन्तिणीकं च चाङ्गेर्य्यम्लगणोत्तमाः।।

(रसार्णव)

अर्थात अम्लवेत, जम्बीरीनींबू और बिजोरा नींबू, चणक, अम्लवृक्ष, नारंगी, इमली तथा चांगेरी-ये उत्तम अम्ल गण के औषध है।

वृक्षक्षार

तिलापामार्गकदलीपलाशाः शिग्रुपौंड्रकौ।
मूलकार्द्रकचित्राश्च सर्वमन्तःपुटे पचेत्।।
समालोड्य जलैर्बद्धा वस्त्रे ग्राह्यमधोजलम्।
शोधये त्पाचयेदग्नौ मृद्भाण्डेन तु तज्जलम्।
ग्राह्यं क्षारावशेषं तु वृक्षक्षारमिदं स्मृतम्।।

(काम रत्न)

अर्थात- तिल, औगा, केला, ढ़ाक, सैंजना, पोण्डा, मूली, अदरख और चीता-इनमें से जिसफा क्षार बनाना हो उसको सुखा कर किसी मिट्टी के पात्र में भर-कर ऊपर से मुख

बन्द कर अग्नि में जलावे, फिर उस राख को जल में घोलकर एक टिकटी में कपड़ा बांध उस जल को अनेक बार दचुआकर साफ करें। उस जल को मिट्टी के पात्र में डाल अग्नि से फूंक लेवे, ज़ल फूकने पर क्षार नीचे जमता है; उसको वृक्षी का क्षार कहते है।

क्षाराष्टक

पलाशवज्रिशिखरिचिंचार्कतिलनालजाः ।
यवजः स्वर्जिका चेति क्षाराष्टकमुदाहृतम्।।

(र.रा.शं.)

अर्थात– पलाश (ढाक), थूहर, औंगा, इमली, तिलनाल, आक, जवब और सज्जी इन क्षारों को क्षाराष्टक कहते हैं।

क्षारत्रय

त्रिक्षारष्टंकणक्षारो यवक्षारश्च स्वर्जिका।

(काम रत्न)

अर्थात– सज्जी खार, जवाखार और सुहागे को क्षारत्रय (त्रिक्षार) कहा है।

लवण पंचक

सामुद्रं सैन्धवं काचं चूल्लिका च सुवर्चलम्
मूलिका च नवक्षारा ज्ञेयं लवणपंचकम्।।

(कामरत्न)

अर्थात– समुद्रनोन, सैंधव, कचनोन, खारीनोन, और कालानोन–ये लवण पंचक है,

पंच महाविष

सक्तुकं कालकूटं च सितमुस्ता तथैव च।
श्रृंगी, कृष्णविषं चैव पंचैते तु महाविषाः।।

(रसार्णव)

अर्थात– सक्तुक विष, काल कूट विष, सितमुस्ता (सफेद मोथा) श्रृंगी (श्रृंगीविष) तथा कृष्ण विष–ये पंच महा विष है।

मुख्य पांच उपविष

स्नुह्यर्कोन्मत्तकश्चैव करवीरं च लाङ्गली।

(रसार्णव)

अर्थात– सेंहुई, मदार, धतूर, कनेर, तथा लांङ्गली (कलिहारी)–ये पाँच मुख्य उपविष है।

मधुरत्रय

घृतं गुडो माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम्।

(र.सा.प.र.र.स.)

अर्थात घी, गुड़ और शहद इन तीनों को मधुरत्रय कहते है।

पांच तेल

कुसुम्भकङ्गणीनक्ता तिलसर्षपजानि तु।

(रसार्णव)

अर्थात–कुसुम्भ तैल (वर्रे का तैल) कगणी का तैल, नक्ता तैल (कन्जुअका का तैल) तिल तैल तथा सरसों का तैल ये उत्तम पांच तैल रस कर्म के प्रयोग होते हैं।

पंच पित्त

वाराहच्छागमाहिषमात्स्यमायूरपित्तकम् ।
पंचपित्तमितिख्यातं सर्वेष्वेव हि कर्मसु।।

(रसेन्द्रसार संग्रह)

इन समस्त रसादि कर्मो में सूअर, बकरा, भैंस, मत्स्य और मोर इनके पित्ते को पंच पित्त कहते हैं।

बिड गण

पारावतस्य चाषस्य कपोतस्य कलापिनः।
गृध्रस्य कुक्कुटस्यापि विनिर्दिष्टो हि बिड्गणः।।
शोधनं सर्वलोहानां पुटनाल्लेपनात्खलु।।

(र.र.स.)

अर्थात– रसकर्म में कबूतर, पपीहा, गीध, मोर और मुर्गा इनकी विष्ठा को विड्वर्ग कहा जाता है। इन विष्ठाओं के पुट देने से अथवा लेप करने से समस्त धातुओं की निश्चय शुद्धि हो जाती है।

मूत्रवर्ग

मूत्राणि हस्तिकरभमहिषी खरवाजिनाम्।
गोजावीनां स्त्रियां पुंसां मूत्रवर्ग उदाहृतः।।

(र.सा.व.र.र.स.)

अर्थात– हाथी, ऊँट, भैंसा, गदहा, घोड़ा, गाय, बकरी, भेंड़, पुरूषों और स्त्रियों के मूत्र को मूत्रवर्ग कहा है।

द्रावण पंचक

गुंजाटंकणमध्वाज्यगुडा द्रावकपञ्चकाः।

(रसेन्द्र सा.स.)

अर्थात– चोटनी, सुहागा, शहद, घी और गुड़ ये पाँच द्रावक पंचक कहे है। तथा मृत धातुओं को पुनः जीवित करने वाले पंचमित्रक है।

श्वेत वर्ग

तगरः कुटजः कुन्दो गुञ्जा जीवन्तिका तथा।
सिताम्भोरुहकन्दाश्च श्वेतवर्ग उदाह्वतः।।

(र.र.स.)

अर्थात तगर, कुटज (इन्द्रजौ का वृक्ष), कुन्द, चौंटनी, जीवन्तिका (जिसका गुजरात में शाक होता है-) श्वेत कमल और कमल कंद, इनको श्वेत वर्ग कहते है।

शुक्लवर्गः सुधाकूर्मशङ्खशुक्तिवराटिकाः।

(रसार्णव)

अर्थात सुधा (पाषाण चूर्ण-चूना) कछुआ, शंख, शुक्ति तथा वराटिका (कौड़ी)-ये शुक्ल वर्ग के द्रव्य है।

रक्त वर्ग तथा पित्त वर्ग

मंजिष्ठा कुङ्कमं लाक्षा खदिरश्चासनं तथा।
रक्तवर्गस्तु देवशि पीतवर्गमतः शृणु।
कुसुम्भं किंशुकं रात्री पतङ्गो मदयन्तिका।।

(रसार्णव)

मंजिष्ठा, कुङ्कम, लाक्षा, खैर, तथा असन (विजय सार), ये रकषवर्ग के द्रव्य है, कुसुम्भ (वर्रे) पलाश, हल्दी, पतंग (कुचन्दन) तथा मदयन्तिका (नव मल्लिका=मोगरा)- ये पित्त वर्ग के द्रव्य है।

कृष्ण वर्ग

कदली कारवल्ली च त्रिफला नीलिका नलः।
पंकः कासीस बालाम्रं कृष्णवर्ग उदाहृत।।

(र.र.स.)

अर्थात- केला, करेला, त्रिफला, नील, नल (नरसल), कीचड़, कसीस और आमलकी- इनको कृष्णवर्ग कहते हैं।

प्रकरण–10

धातु प्रकरण

धातुओं के फल का वर्णन

मृत्यूपमृत्युनाशार्थ पारदं विशदं भजेत्।
ये गुणाः पारदे देवि गंधकाभ्रे च ते गुणाः।।

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्सोमो धातुसमृद्धये।
रोगेशशान्तये सेव्यं देवदेवेशमुत्तमम्।।

(टोडरानन्द)

अर्थात– मृत्यु और उपमृत्यु के नाशार्थ उत्तम पारद का सेवन करे, हे पार्वती जो गुण पारद में कहे गए है; वे ही गुण गन्धक और अभ्रक में हैं; आरोग्य के अर्थ ताम्र का सेवन करे, धातु वृद्धि के लिये चांदी का सेवन और राज रोग की शान्ति के लिये सुवर्ण का सेवन करे।

अशुद्ध धातुओंके अवगुण

स्वर्ण सम्यग शोधितं श्रमकरं स्वेदावहं दुःमहं
रौप्यं जाठरजाडच्यमान्धजननं ताम्रं वमिभ्रान्तिदम्।
नागं च त्रपु चांगदोषदमथो गुल्मादि दोषप्रदं
तीक्ष्णं शूलकरं च कान्तमुदित कार्थ्यामयास्फोस्दम्।।
शुद्धौ न चेन्मुण्डकतीक्ष्णकौ यदा
क्षुदापहौ गौरवगुल्मदायकौ।
कान्तायसं क्लेदकतापकारकं
रीत्यौ च संमोहनक्लेशदायिके।।

(रस राज सुन्दर)

अर्थात– बिना शुद्ध किया हुआ अथवा कम शुद्ध किया हुआ सुवर्ण श्रम-स्वेद और दुख देने वाला है; अशुद्ध चांदी पेट का दर्द और मन्दाग्नि करता है। अशुद्ध तांबा वमन तथा शिरो भ्रम को करता है। अशुद्ध रांगा (वंग) तथा सीसा (नाग) शरीर का नाश तथा वायु गोला रोग को करता है, अशुद्ध फौलाद शूल को करता है, अशुद्ध कांत शरीर की कृशता रोग और फोड़ा फुन्सी को करता है। मुण्ड और तीक्ष्णा यदि अशुद्ध हो तो शरीर का अहितकर्ता है। क्षुदा का नाश जड़ता और गोला को करता है। अशुद्ध कान्त लेह, क्लेद, ताप उत्पन्न करता है। अशुद्ध पीतल तथा कांस को मोह और दुखकारक जानना चाहिए।

धातु शोधन हेतु सुगम उपाय

सर्व लोहानि तप्तानि कदलीमूलवारिणा।
सप्तधाभिनिषिक्तानि शुद्धिमायन्त्यथोतमाम्।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– सर्वधातुओं को तपा तपा कर केले की जड़ के रस में सातवार बुझाव देवे तो धातुओं की उत्तम शुद्धि होती है। और

सर्वाभावे निषेक्तव्यं क्षीरतैलाज्यगोजलैः।
शुद्धस्य शोधनं ह्येतद्गुणाधिक्याय सम्मतम्।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– जहाँ सव शोधन पदार्थ नही मिलते है,3

वहाँ दूध, तैल, घृत और गो मूत्र इनमें बुझाव देने से सब धातु शुद्ध होते है और शुद्ध धातु को इनमें बुझाव देने से विशेष गुणकारी होता है!

लौहभेद नाम निरूपण

सुवर्णरजतताम्रतीक्ष्णवंगभुजङ्गभम् ।
लोहं तु जड्विघं तच्च यथापूर्व्वं तदक्षयम्।।

तत्रादितः सुरेशानि सारं लोहद्वयं स्मृतम्।
साधारणे तीक्ष्णशुल्वे वंङ्गनागौ तू पूतिकौ।।

(रसार्णव)

सुवर्ण, रजत, ताम्र, तीक्ष्ण, वंग तथा भुजंगस (नाग) इस प्रकार लौह छः प्रकार का होता है। वह यथा पूर्व अक्षय होता है। अर्थात नाग से वंग, वंग से तीक्ष्ण, तीक्ष्ण से ताम्र, ताम्र से रजत, रजत से स्वर्ण अक्षय (नाश रहित) होता है।

हे सुरेशानि! वहाँ पर लौह दो प्रकार का है साधारण तथा पूतिक साधारण लौह तीक्ष्ण तथा ताम्र और पूतिक-वंग तथा नाग है।

स्वर्ण उत्पत्ति तथा रंगभेद निरूपण

रसजं क्षेत्रजं चैव लोहसङ्करजं तथा।
त्रिविधं जायते हेम चतुर्थ नोपलभ्यते।।

रक्ताभं पीतवर्णं च द्विविधं देवि! काञ्चनम्।
दाहे रक्तं सितं छेदे निकषे कुङ्कुमप्रभम्।।

सगौरवं मृदु स्निग्धं तारशुल्वविवर्ज्जितम्।
हेम सोऽशवर्णाढंचं शस्यते देहलोहयोः।।

(रसार्णव)

अर्थात्– स्वर्ण पारद से उत्पन्न, खान से उत्पन्न तथा लौह के संयोग से उत्पन्न तीन प्रकार का होता है। चौथे प्रकार का स्वर्ण नहीं मिलता है। हे देवि! रक्तवर्ण तथा पीत वर्ण भेद से दो प्रकार का होता है। स्वर्ण तपाने पर रक्त वर्ण काटने पर श्वेत वर्ण तथा घिसने पर केसर के वर्ण सदृश होता है। स्वर्ण भारी मृदु स्निग्ध, चाँदी तथा ताम्र से रहित होता है। सोलहवर्ण से युक्त स्वर्ण देह तथा लौह के लिये उत्तम होता है।

सुवर्ण शुद्धि निरूपण

सुवर्णमुत्तमं वह्नौ विद्रुतं निक्षिपेत् त्रिशः।
कांचनाररसे शुद्धं कांचनं जायते भृशम्।।

(रस सार पद्यति)

अर्थात्– उत्तम स्वर्ण को आंच में गलाकर कचनार के रस में तीन बार बुझावे तो सुवर्ण अत्यन्त शुद्ध होता है। और

मृत्तिका मातुलुङ्गाम्लैः पञ्चवासरभाविता।
सभस्मलवणा हेम शोधयेत् पुटपाकतः।।

(रसार्णव)

अर्थात्– मृत्तिका तथा विजौरा निम्बु के रस भावितकर भस्म तथा सैन्धानमक मिलाकर पुट पाक के द्वारा स्वर्ण को शुद्ध करे।

सुवर्ण गुण निरूपण

स्वर्णं स्निग्धमथास्ति पीतमधुरं दोषत्रयध्वंसनं
शीतं स्वादुरसायनं रुचिकरं चतुष्यमायुः प्रदम्।
प्रज्ञा वीर्य बल स्मृति स्वकरं कातिं विधत्ते तनोः
संघत्ते दुरितक्षयं श्रियमिदं धत्ते नृणां धारणात् ।।

(रससार पद्धति)

अर्थात्– सोना चिकना, पीला, मीठा, और तीनो दोषो (वात,पित्त,कफ) का नाशक है तथा ठण्डा स्वाद रसायन रुचिकारक नेत्रो को हित आयु का दाता बुद्धि वीर्य, बल स्मृति और स्वर का करने वाला शरीर की कान्ति को बढ़ाता है पापों को नाश करता है तथा धारण करने से वैभव शोभा बढ़ाता है

सुवर्ण भस्म निरूपण

स्वर्णस्य द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत्।
तद्गोलकसमं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम्।।

गोकलं च ततो रुद्ध्वा शरावदृढ़संपुटे।
त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटेनैव चतुर्दश।।
निरुत्थं जायते भस्म गंधो देयः पुनःपुनः।।

(यो.चि.मणि)

अर्थात– सोने से दुगुना पारा नींबू के रस में घोटे अर्थात- स्वर्ण एक भाग पारद दो भाग लेकर पत्थर के खरल में नींबू के रस में घोटे स्वर्ण के सूक्ष्म पत्र का अथक स्वर्ण वर्के लेना उत्तम रहता है; भलीभांति घोटकर गोली बना लेवे और उस गोली के बराबर ऊपर नीचे गन्धक का सम्पुट देवे फिर दो शंखों में रखकर सात कपट मिट्टी और तीस आरने उपलों की अग्नि देवे, जब भले प्रकार निर्धूम हो जावे इसी तरह चौदह पुट दे और बार-बार गन्धक डाले तो निरुत्थभस्म होवे; और

सिलासिन्दूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः।
सप्तधा भावयित्वा तु शोधयेच्च पुनः पुनः।।
ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः।
पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते।।
एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– मैंनसिल और सिन्दूर के चूर्ण को समानभाग लेकर आक के दूध से सातबार सुखा सुखाकर भावना देवे फिर सुवर्ण गलाकर उस कल्क को समान भाग लेकर सुवर्ण में डाल देवे, फिर गलाकर कल्क डाल देवे ऐसे क्रम से-तीन बार करे; गलावे और कल्क डालें तो स्वर्ण भस्म होगी।

सुवर्ण की द्रुति

मण्डूकास्थिवसाटंकहयलालेन्द्रगोपकैः ।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रुतम्।।

(र.र.स. रसार्णव)

अर्थात– मेंढक की हड्डी और चर्बी, सुहागा घोड़े की लार व वीर बहुटी (जो कि बरसात में रेतीली भूमि के अन्दर लाल मखमल के समान जीव होता है) इनको पीस कर चूर्ण बनावे इसके बाद सुवर्ण को आंच में गलावे और पूर्वोक्त चूर्ण का थोड़ा-थोड़ा प्रक्षेप करता रहे तो स्वर्ण जल के समान पतला होकर बहुत दिन तक ठहरता है। और

चूर्णं सुरेन्द्रगोपानां देवदालीफलद्रवैः।
भावितं सदृशं हेम करोति जलवद् द्रुतम्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

वीरबहुटियों के चूर्ण को देवदाती फलों के रस की सात भावना देवें और उस चूर्ण को गले हुए स्वर्ण में सात बार डाले तो सुवर्ण की द्रुति हो जाती हैं।

रजत (चांदी) निरूपण

शुक्लञ्च तारकृष्णञ्च द्विविधं रजतं प्रिये।
गुरू स्निग्धं मृदु श्वेतं तारमुत्तमभिष्यते।।

नागेन क्षारराजेन द्रावितं शुद्धिमिच्छति।
तारं त्रिवारं निक्षिप्तं पिशाचीतैलमध्यतः।।

(रसार्णव)

अर्थात– हे प्रिये तार शुक्ल तथा कृष्ण भेद से, रजत दो प्रकार का है। गुरु, स्निग्ध, मृदु तथा श्वेत रजत (चाँदी) उत्तम होता है। पिशाची (जटामांसी) के तैल के साथ (तैल में) रजत को तीन बार भावित कर, नाग तथा क्षार राज (टंकणखार) के साथ गलाने से शुद्ध हो जाता है। और

पत्रीकृतं तु रजतं प्रतप्तं जातवेदसि।
निर्वापितमगस्त्यस्य रसे वारत्रयं शुचि।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– चाँदी के पत्र बनाकर और अग्नि में तपाकर अगस्त्य के पत्तो के रस में तीन बार बुझावे तो चांदी अत्यन्त-शुद्ध होवे।

रजत भस्म विधि

विधाय पिंडिं सूतेन रजतस्याथ मेलयेत्।
तालं गंधसमं शुद्धं तन्मदर्च्य निंबुकद्रवैः।।
गोलकीकृत्य संरुद्धं मूषायां स्वर्णवद्दृढम्।
द्वित्रैः पुटैर्भवेद्भस्म योज्यते तद्रसादिषु।।

(रस सार पद्धति)

अर्थात्–चांदी और पारे को, समान भाग लेकर खरल में डालकर घोटे फिर हरताल और गन्धक को समान भाग लेकर खरल में डाल चारों पदार्थो को नीबू के रस में घोंट गोला बना लेवे। घरिया में रख उपर से दूसरी घरिया रख मुद्रण करे सुवर्ण समान दो तीन पुट देने से चांदी की भस्म होती है। (रसादिको में उसका प्रयोग करना चाहिए) और

भाव्यं ताप्यं स्नुहीक्षीरैस्तारपत्राणि लेपयेत्।
मारयेत्पुटयोगेन निरुत्थं जायते ध्रुवम्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– सोनामाखी को थूहर (संहुड तिधारा) के दूध से भावना देकर चाँदी के पत्रों पर लेप करे। फिर सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंक देवे तो चांदी की निरुत्थ (पक्की) भस्म होगी।

चाँदी के गुण

रूप्यं शीतं कषायाम्लं स्वादुपाकरसं सरस्।
वयसः स्थापनं स्निग्धं लेखनं वातपित्तजित्।।

प्रमेहादिकरोगांश्च नाशयत्यचिराद् ध्रुवम्।
गुटिकास्यं धृता वक्त्रे तृप्ता शोथविनाशिनी।।

(रस सार पद्धति)

अर्थात– चांदी ठन्डी, कसैली, खट्टी, परिपाक में मीठी, दस्तावर आयु को स्थिर रखने वाली, चिकनी और वात-पित्त को जीतने वाली है। प्रमेह आदि रोगों का शीघ्र ही नाश करती है। इसकी गोली मुख में रखने से मुख शोष को दूर करती है।

ताम्र गुण भेद निरूपण

ताम्रं च द्विविधं प्रोक्तं रक्तं कृष्णं सुरेश्वरि।
घनघातसहं स्निग्धं रक्तपत्रं मृदूत्तमम्।।

(रसार्णव)

है सुरेश्वरि ताम्र दो प्रकार का होता है लाल तथा काला। घन घात सह (हथोंड़ा की चोट को सहन करने वाला) स्निग्ध, मृदु तथा लालवर्ण का ताम्र पत्र उत्तम होता है। और

ताम्रं तू द्रिविधं चैकं नैपालं म्लेच्छसंज्ञकम्।

(रससारपद्धति)

अर्थात– नैपालियन और म्लेच्छक भेद से ताम्र दो प्रकार का होता है।

शुद्ध ताम्र लक्षण

शुकचंचु हिगुलाभं कोमलं भिद्यते लघु।
खनिदोषविनिर्मुक्तं शुक्लं कालिकवर्जितम्।।

(टोडरानन्द)

अर्थात– तोते की चोंच के समान या हिंगुल के समान लाल होवे कोमल होवे खान के दोषो से रहित होवे और जिसमें कालिमा न होवे उसको शुद्ध ताम्र कहते हैं।

ताम्र गुण दोष निरूपण

ऊर्ध्वश्वासं कफं कासं हृद्रोगं पांडुतां क्षयम्।
जयेत्प्रमेहकुष्ठार्शः शोकशूलाग्निमन्दताः।।

अशुद्धं वातमुत्क्लेदं मूर्च्छादोषं करोति च।
अपक्वं कांतिधातुघ्नं भ्रमशूलोष्मकुष्ठकृत्।।

न विषं विषभित्याहुस्ताम्रं तू विषमुच्यते।
एको दोषो विषे ताम्रे चाष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः।।

भ्रमो मूर्च्छा विदाहश्च स्वेदः क्लेदस्तथा तमः।
अरुचिश्चित्तसंतापस्ताम्रे दोषाः प्रकीर्तिताः।।

(योग चिन्ता मणि)

अर्थात– ऊर्ध्वश्वांस, कफ, खांसी, हृदयरोग, पाण्डुरोग, क्षय, प्रमेह, कोढ, अर्श, सूजन, शूल, और मन्दाग्नि दूर करे और जो अशुद्ध रहजाय तो वात, उत्क्लेद, मूर्छा दोष करे, अपक्व

हो तो धातु का नाश, भ्रम, शूल, गरमी, कोढ करे,। विष ही को विष मत जानो, ताम्र भी विष है। विष में एक दोष है ताम्बे में आठ दोष हैं- भ्रम-मूर्छा, दाह, स्वेद, क्लेद तम अरुचि, पित्तताप ये तांबे में आठ दोष है।

ताम्र शुद्धि

स्नुह्यर्कक्षीरलवणक्षाराम्लपरिलेपितम् ।
ताम्रपत्रं च निर्गुण्डी-रसमध्ये तू ढालयेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात्– सैहुड़ तथा मदार का दूध, सैन्धा नमक, टंकण क्षार तथा अम्ल (ईमली) इन द्रव्यों से ताम्र पत्र को लिप्त कर निर्गुण्डी के रस में ढाल दे। इससे ताम्र शुद्ध हो जाता है। और

ताम्रं क्षाराम्लसंयुक्तं द्रावितं दत्तगैरिकम्।
निक्षिप्तं महिषीतक्रे छगणे सप्तवारकम्।।
पंचदोषविनिर्मुक्तं सप्तवारेण जायते।।

(रस रत्न समुच्चय)

अर्थात– जबाखार, नींबू का रस, और गेरू इन तीनों को पीस कर तांबे के पत्रों पर लेप कर गलावे तो गलने पर भैंस के मठे (छाछ) में बुझा देवे, इस प्रकार सात बार करने से ताम्र पांच दोषो से रहित हो जाता है।

"ताम्र रंजन"

ज्योतिष्मत्यास्तैलमध्ये शतवारं च शोधयेत्।
अतसीतैलमध्ये वा शुल्वं भवति कांचनम्।।

(काक चंड़ीश्वरी तन्त्र)

अर्थात– मालकांगनी के तैल में तांबे को गलाकर सौ बार बुझावे अथवा अलसी के तेल में सौबार बुझावे तो ताम्र स्वर्ण वर्ण का होता है।

ताम्र मारण विधि

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा संस्वेदयेद् बुधः।
वासरत्रयमम्लेन ततः खल्वे विनिक्षियेपेत्।।

पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत्।
तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद्द्विगुणेन च।।

गन्धकेनाम्लपिष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्।
घृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत्।।

बालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणांषुभिः।
दत्त्वा भाण्डं मुखे मुद्रां ततश्चुल्यां विपाचयेत्।।

क्रमवृद्धाग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्।
स्वांगशीतलमुद्धृत्य मृतताम्रं शुभं भवेत्।।
(यो.चि.म.)

अर्थात– तांबे के सूक्ष्म पत्र कर शोध लेवे, फिर छाछ में तीन दिन रख मर्दन करे, फिर चौथे दिन पारा डालकर इमली के रस में एक प्रहर मर्दन करे, फिर तांबे के पत्र निकालकर और दुगनी गन्धक नींबू के रस में घोट कर तांबे के पत्रो पर लेप कर गोली बनावे, फिर दो शकोरो, के बीच गोली रख देवे; कपरोटी कर एक हांडी में बालू-का नोन भर बीच में सरवा रख देवे; फिर हांड़ी को कपड़ मिट्टी कर चूल्हें पर चढ़ावे, अग्नि क्रम से देवे, पहले मन्दाग्नि बीच में मध्यम तथा बाद में तीक्ष्णाग्नि देवे, चार प्रहर भले प्रकार अग्नि देवे जब ठण्डा (शीतल) हो जाय तब निकाल लेवे यह तांबेश्वर रस है।।

लोह भेद गुणनिरूपण

मुंडात्कटाहपात्रादि जायते तीक्ष्णलोहतः।
खड्गादिशस्त्रभेदाः स्यूः कान्तलोहं तू दुर्लभम्।।
(रससारपद्धति)

अर्थात– मुंडनाम के लोहे से कढाह और पात्र आदि प्रभुति बनाई जाती है। और तीक्ष्ण लौह से तलवार आदि शस्त्र बनते हैं। इन दोनों से भिन्न जो कान्त लौह है उसका मिलना कठिन है।

अशुद्ध लोहे के दोष

अशुद्धलोहं न हितं निषेवणा
दायुर्वतां कान्ति विनाशि निश्चितम्।
हृदि प्रपीड़ां तनूते ह्यपाटवं
रुजं करोत्येव विदाह मारयेत्।।
(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– सेवन किया हुआ अशुद्ध लोहा हितकारी नही होता है। आयु, बल, और कान्ति का निश्चय नाश करता है; हृदय में पीड़ा और अनेक प्रकार के रोगों को करता है। इसलिये लोहे को शोध करके भस्म करना उचित है।

लौह के गुण

लोहं तिक्तं सरं शीतं मधुरं तुवरं गुरु।
रूक्ष्यं वयस्यं चक्षुष्यं लेखनं वातलं च यत्।।
पित्तं कफं गरं शूलं शोथार्शः प्लीहपाण्डुताम्।
मेदोमेहं कृमीन्कुष्ठं तत्किट्टं तद्गुणं स्मृतम्।।
(रससारपद्धति)

अर्थात्– लोहा-कडुआ, दस्तावर, ठंडा, मीठा कसैला और भारी होता है तथा रूक्ष आयु को बढ़ाने वाला नेत्रो को हितकारी कोष्ठ को शुद्ध करने वाला और वातल है; कफ पित्त, विष, शूल-सूजन, बवासीर (अर्श) प्लीहा, पांडु, भेद, (चर्बी का बढ़ना) प्रमेह कृमि रोग और कुष्ठ रोग को नाश करता है, जिस लोहे का कीट हों उसमें भी उसी लोहे के से गुण होते है।

लौह शोधन विधि

गुडूची हंसपादी च नक्तमालः फलत्रयम्।
गोपालकी गोरसना तुम्बुरुलोहनिघ्नकः।।
एषा रसे ढालयेत्तत् गिरिदोषनिवृत्तये।।

(रसार्णव)

अर्थात्– गुडूची, हंसयादी, च नक्तमाल (पूतिकरन्ज) फलत्रय (हर्रे-बहेड़ा-आँवला) गोपलवी (नाग बला) गोरसनः (गोजिस्ह्वा) तथा तुम्बक (तुम्बल)-ये सब लोहा को मारने वाले है। इन सबों के रस में लौह को गरम (तपाकर) गिरि दोष को दूर करने के लिये ढालें, और

त्रिफलाष्टगुणे तोये त्रिफलाषोडशं पलम्।
तत्क्वाथे पादशेषे तु लोहस्य पलपंचकम्।।
कृत्वा पत्राणि तप्तानि सप्तवारं निषेचयेत्।
एवं प्रतीयते दोषो गिरिजो लोहसम्भवः।।

(रस सार पद्धति, र.र.स.)

अर्थात्– सोलह पल त्रिफला में, त्रिफला से आठ गुणे जल को गरमकर औटावे जब चतुर्थांस शेष रह जावे, तब उतार कर छान लेवे तदनंतर पांच पल लोहकें पत्रो को तपा-तपा कर पूर्वोक्त त्रिफला के क्वाथ में बुझावे। इस प्रकार सातबार बुझावे तो लौह का गिरिज दोष नष्ट हो जायेगा।

लौह भस्म विधि

स्रहाक्तं लोहरजो मूत्रे स्वसेपि रात्रिधात्रीणाम्।
पृथगेवं सप्तकृत्वा भर्जितमखिलामये योज्यम्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्– प्रथम शुद्ध लोहे को गोमूत्र की भावना देकर सुखा लेवे, फिर घृतमें मिलाकर चूल्हे पर भस्मकर लेवे, इस प्रकार सात पुट देवे तथा हल्दी और आँवला के रस की सात सात भावना देकर चूल्हे पर भून लेवे, तो लोह की भस्म हो जावेगी। उसको समस्त रोगो में वर्तना चाहिए। और

यद्वा तीक्ष्णदलोद्धूतं रजश्च त्रिफलाजलैः।
पिष्टा दत्त्वौदनं किञ्चिच्चक्रिकां प्रविधाय च।।

शोषयित्वातियत्नेन प्रपचेत्पंचभिः पुटैः।
रक्तवर्णं हि तद्भस्म योजनीयं यथायथम्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– तीक्ष्ण (फौलाद) लोहे के पत्रो को चूरा करके त्रिफला के जल से मर्दन (घोटे) करे, फिर थोड़ा सा रंधा हुआ, भात मिलाकर टिकिया बांध लेवे, उस टिकिया को अच्छी तरह सुखाकर भस्म करे तो पांच पुट में लाल वर्ण की भस्म होगी, उसको अनेक योगों के साथ देना चाहिए।

सोमामृत लौह भस्म विधि

सूतकाद्द्विगुणं गंधं दत्वा कुर्याच्च कज्जलम्।
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः।।

याम युग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके।
धर्मे कृत्वा रूबूकस्य पत्रैराच्छादयेद्बुधः।।

यामद्वयाद्भवेदुष्णं धान्यराशौ न्यसेत्ततः।
दत्त्वोपरि शराबं तू त्रिदिनान्ते समुद्धरेत्।।

पिष्टां च गालयेद्वस्त्राल्लोहं वारितरं भवेत्।
एवं लोहानि सर्वाणि स्वर्णादीन्यपि मारयेत्।।

तद्रजो वस्त्रगलितं नीरे तरति हंसवत्।
सोमामृताभिधमिदं लोहभस्म प्रकीर्तितम्।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– पारद से दूना गंधक लेकर कजली कर लेवे, फिर कजली के समान लोहे के चूरे को खरल में गेर कर घीगुबार (घृतकुमारी) के रस में दो–प्रहर तक मर्दन करे। (फिर उसका गोला बनाय अंड के पत्तों से ढक और उसको तांबे के पात्र में रख घाम (धूप) में रख देवे, इस प्रकार दो प्रहर तक रखने से जब वह गोला काला–उष्ण हो जावे तब उसको सकोरे से ढ़क तीन दिवस तक अन्न के ढेर में गाड़ देवे। तदनन्तर उस गोले को निकालकर फिर लौह खरल में मर्दन कर कपड़े से छान लेवे तो वह लोहसार बारितर (जल में तैरनेवाला हो जायेगा, इस प्रकार समस्त धातुओं को विशेषकर सुवर्णादिकों को भी भस्म कर कपड़े से छान लेवे तो वरितर भस्म होगी। इस भस्म को सोमामृत लौहभस्म भी कहते हैं।

लौह भस्म की परीक्षा

अंगुष्टतर्जनीदृष्टं यत्तद्रेखान्तरं विशेत्।
भस्म वारितरं वा स्यात्तल्लोहं मृतमुच्यते।।

अर्थात– अंगूठा और उसके पास वाली अंगुली से लौह भस्म को लेकर मलने से लौह भस्म अंगूठे अंगुली की रेखाओं में धंस जाय अथवा जल में डूबे नहीं, तो लोहे को

भस्म हुआ समझना चाहिए।

वंग तथा नाग भेद गुण निरूपण

त्रपु च द्विविधं ज्ञेयं श्वेतकृष्णविभेदतः।
श्वेतं लघु मृदु स्निग्ध-मुत्तमं वङ्गमुच्यते।।

(रसार्णव)

वंग शुक्ल तथा कृष्ण भेद से दो प्रकार का होता है। श्वेत, लघु मृदु तथा स्निग्ध वंग उत्तम होता है।

नागस्त्वेकविधो देवि! शीघ्रद्रावी मृदुर्गुरू।

(रसार्णव)

नाग एक प्रकार का होता है। हे देवि। वह शीघ्र गलने वाला मृदु तथा भारी होता है।

वंग के गुण-दोषों का निरूपण

वंग तिक्तोष्णकं रूक्षमीषद्वात प्रकोपनम्।
मेहश्लेष्मामयघ्नं च मेदोघ्नं कृमिनाशनम्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– कडुवा, उष्ण, रूक्ष और वात को कुपित करने वाला है। प्रमेह, वात, मेदोरोग और कृमि रोग का नाश करता है। और

सिहो यथा हस्तिगणं निहन्ति तथैव वंगो खिलमेहवर्गम्।
देहस्य सौख्यं प्रवलेन्द्रियत्वं नरस्य पुष्टिं विदधाति नूनम्।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– जिस प्रकार मिह हाथियों के झुंड को मारता है उसी प्रकार वंग भी समस्त प्रमेहों का नाश करता है। और मनुष्य के शरीर को सुख इन्द्रियों की प्रबलता और शरीर की पुष्ट करता है।

अशुद्धममृतं वंगं प्रमेहादिगदप्रदम्।
गुल्महृद्रोगशूलार्थः कासश्वासवमिप्रदम्।।

(रससारपद्धति)

अशुद्ध भस्म किया हुआ वंग प्रमेह आदि रोगो, को करता हैं। वायगोला हृदय रोग, दर्द, बवासीर (अर्श) कास, श्वास और वमन (उल्टी) कारक है।

वंग नाग शुद्धि

यथा–

नागवंगौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत्।
सच्छिद्रोपलपहिते ि़ण्डिकास्थे द्रवे शनैः।।

सप्तधैवं विशुद्धिः स्यादविदग्धे च सप्तधा।
अर्कपर्णादिपयसि स भवेत्तद्रसोत्तमः।।

(रससारपद्धति)

अर्थात– एक हांड़ी में आक का दूध अथवा आक के पत्तो का रस भर देवे और फिर ऊपर से छेद वाला पत्थर (घट्टी या ढकना चक्की के ऊपर के पाट जैसा) रख देवे फिर सीसा तथा बंग को गलाकर (जिसको भी शुद्ध करना होवे) धीरे-धीरे से नीचे हांड़ी में गिरावे। इस प्रकार सात बार करने से - नाग वंग की शुद्धि हो जाती है।

वंग मारण विधि

मृत्पात्रे द्राविते वंगे चिञ्चाश्वत्थत्वचो रसः।
क्षिप्त्वा क्षिप्त्वा चातुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत्।।
ततो द्वियाममात्रेण वंगभस्म प्रजायते।
प्रमेहदाहपाण्डुघ्नं पुष्टिकान्तिबलप्रदम्।।

(यो०चि०म०)

अर्थात– मिट्टी के ठीकरे में वंग (रांगे) को गलावे, इमली तथा पीपल की छाल का चूर्ण चौथाई डालकर लोहे की कलछी से चलावे तो दो प्रहर में रांग की भस्म हो जावेगी। यह प्रमेह, दाह, पाण्डू रोग को दूर करें और पुष्टि, कान्ति बल की देने वाली है। और

पलाशद्रवयुक्तेन वंगपत्राणि लेपयेत्।
तालेन प्रहितं पश्चान्म्रियते नात्र संशयः।।

(रसरत्नसमुच्चय)

ढाक के पत्तो के रस में घुटी हुई हरताल से वंग के पत्रों पर लेप कर देवे फिर गजपुट में रखकर फूक देवे तो वंग की भस्म होगी उसमें सन्देह नहीं है।

सीसक मारण विधि निरूपण

अश्वत्थ चिंचात्वग्भस्म भस्म तुल्या मनःशिला।
जम्बीरैरारनालैश्च पिष्ट्वा रुद्ध्वा पुटेपचेत्।।
स्वांगशीतं पुनः पिष्टा विंशत्यंशशिलात्मकैः।
नागः सिंदूरवर्णाभो म्रियते सर्वकार्यकृत्।।

(यो चि.म.)

अर्थात– पीपल की छाल; इमली की छाल इनकी भस्म कर लेवे और शीशे के बराबर मैनसिल (मनाशिला) लेवे। जभीरी के रस में और कांजी के रस में पीसकर शीशे के पत्र क ऊपर लेप करे और अग्नि देवे जब ठन्डा (शीतल) होवे; निकाल लेवे फिर बीस भाग मैनशिल सम्पुट कर फूके। जब सिन्दूर का सा रंग हो जाय तब निकाल लेवे और यह "रस" सर्व कार्यो को करे।

प्रकरण–11

महारस प्रकरण

अष्ट महारसों के नाम

माक्षिको विमलः शैलश्चपलो रसकस्तथा।
सस्यको दरदश्चैव स्रोतोऽञ्जनमयाष्टकम्।
अष्टौ महारसश्चैवमेवात् प्रथमतः श्रृणु।।

(रसार्णव)

अर्थात– माक्षिक, विमल, शैल, (शिलाजीत) चपल, रसक (खपरिया) सस्यक (तुत्थ) दरद (हिंगुल) तथा आठवां स्रोतोऽञ्जन (सुरमा) ये आठ महारस हैं। और

अभ्रवैक्रान्तमाक्षीक विमलादिजसस्यकम्।
चपलो रसकश्चेति ज्ञाताऽष्टौ संग्रहेद्रसान्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– अभ्रक, वैक्रान्त, सुवर्णमाक्षिक, रोप्यमाक्षिक, शिलाजीत चपल, रसखपरिया

आठ उपरसों का वर्णन

गंधाश्मगैरिकासीसकांक्षीतालशिलाञ्जनम् ।
कंकुष्ठं चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– गन्धक, गेरू, कसीस, फिटकरी; हरताल, मैनसिल, सुरमा और कंकुष्ठ, पारद कर्म के लिये आठ उपरस कहे हैं।

यहाँ पर रसार्णव कर्त्ता ने स्रोतोञ्जन को अष्टमहारसो में गिना है; जबकि रसरत्नसमुच्चयकार ने स्रोतोञ्जन को उपरसों में माना है। तथा अभ्रक को रसार्णव कर्ता ने अष्टमहारसों में शामिल नही किया है। रसरत्नसमुच्चयकार ने अभ्रक को अष्ट महारसो में गिना है।

अभ्रक भेद

यथा–

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चाभ्रं चतुर्विधम्।
पिनाकेऽग्निं प्रविष्टे तु शब्दश्चि चिटिचिटिर्भवेत्।।

दर्दुरोऽग्नि प्रविष्टे तू शब्दः कुक्कुटवद्भवेत्।
अग्निं प्रविष्टं नागन्तु फूत्कारं देवि! मुंचति।।
अग्निं प्रविष्टं वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठति प्रिये।।

(रसार्णव)

अर्थात– अभ्रक चार प्रकार का होता है–पिनाक, दर्दुर, नाग तथा वज्र। पिनाक नामक अभ्रक अग्नि में प्रविष्ट होने पर चिट चिट शब्द करता हैं–दर्दुर नामक अभ्रक अग्नि में प्रवेश करने पर कुक्कुट (मुर्गा) के समान शब्द करता है! हे देवि। नाग नामक अभ्रक अग्नि में डालने पर सर्प सदृश "फूत्कार" शब्द करता है। और हे प्रिये वज्र नामक अभ्रक अग्नि में प्रवेश करने पर वज्र के समान स्थिर रहता है। और

श्वेतं पीतं तथा कृष्णं रक्तं तद्भूमिसंगमात्।
पीतं हेम्नि सितं तारे रक्तं चैव रसायने।।
कृष्णाभ्रकं च रोगेषु द्रुतिपाते तथैव च।

(टोडरा नन्द)

अर्थात– सफेद, पीला, काला तथा लाल इन चार वर्णो का अभ्रक होता है। पीला अभ्रक स्वर्ण बनाने के काम में; सफेद रजत कर्म में, लाल रसायन के बनाने में तथा काला समस्त रोगो में, तथा द्रुति पातन में भी उपयोगी है।

शुद्ध अभ्रक के गुण

गोरी तेजः परमममृतं वातपित्तकफघ्नं
प्रज्ञोद्बोधि प्रशमितजरं वृष्यमायुष्य मत्रयम्।
बल्यं स्निग्धं रुचिमकफं दीपनं शीतवीर्य
तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योमसूतेन्द्रबद्धि।।

(र.र.स. टोडरा नन्द)

अर्थात– अभ्रक भस्म परम अमृतरूप, वात, पित्त और क्षय का नाशक, बुद्धि को बढ़ाने वाला, बल और आयु का कर्त्ता, चिकना, रुचिकर्ता, कफ नाशक दीपन और शीतवीर्य है। वह अभ्रक उन उन अनुपानों के योग से पारद के तुल्य समस्त रोगों का नाश करने वाला तथा पारद को बांधने वाला है।

अशुद्ध अभ्रक के दोष

अशुद्धाभ्रं निहन्त्यायुर्वर्द्धयेन्मारुतं कफम्।
अहतं छेदयेदन्त्रं मन्दाग्निकृमिवृद्धिकृत्।।

(टोडरा नन्द)

अर्थात– अशुद्ध अभ्रक आयु को नाशकर कफ और वात की वृद्धि करता है, बिना मरा हुआ अभ्रक आंतो को छेद देता है, तथा मन्दाग्नि और कृमि रोग को बढ़ाता है।

अभ्रक शोधन विधि

प्रतप्तं सप्तवाराणि निक्षिप्तं कांजिकेऽभ्रकम्।
निर्दोषं जायते नूनं प्रक्षिप्तं वापि गोजले।।
त्रिफलाक्वथिते चापि गवां दुग्धे विशेषतः।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– अभ्रक को तपाकर कांजी में, गोमूत्र में या त्रिफला के क्वाथ में, और विशेषकर गाय के दूध में सात बार बुझाव देवे तो अभ्रक शुद्ध होवे।

धान्याभ्रक क्रिया

चूर्णाभ्रं शलियुक्तं वद्ध्वा कम्बलके श्लथम्।
त्रिरात्रं कांजिके स्थाप्यं तत्क्लिन्नं मर्दयेद्दृढम्।।
कम्बलाद्गलितं श्लक्ष्णं मारणादौ प्रशस्यते।।

(टोडरा नन्द)

अर्थात– अभ्रक का चूराकर उसमें धान मिला देवे फिर उसको कम्बल में ढ़ीला बांध तीन रात तक कांजी में रख फिर जोर से मले। कम्बल मैं से सूक्ष्म चिकना रेत निकले उसको धान्याभ्रक कहते है।

अभ्रक भस्म विधि

सपादटंकणं धान्यगगनं धामितं दृढम्।
निश्चन्द्रं जायते शीघ्रं बालभृंगरसप्लुतम्।।

(टोडरा नन्द)

अर्थात– धान्याभ्रक से चौथाई सुहागा लेकर दोनो को खरल में डालकर नवीन (ताजा) जल भंगरे (भृंगराज) के रस में घोटकर कोयलों की आंच में फूंके तो अभ्रक की निश्चन्द्र भस्म हो जाती है। हुल-हुल बूंटी के रस में अभ्रक को घोटकर सातबार अग्नि में फूंके तो अभ्रक भस्मीभूत होता है। इसीक्रम से सौ बार और हजार बार तक अग्नि में फुका अभ्रक दीर्घायुष्य दाता हो जाता है। हुर-हुर बूटी में अभ्रक फूंकने का मेरा अनुभूत प्रयोग है। वर्षा ऋतु के बाद क्वार माह में हुर-हुर बूंटी बहुतायत से मिल जाती है।

अभ्रक की सत्वपातन विधि

धान्याभ्रकं पुराकृत्वा सुश्लक्ष्णं नवनीतवत्।
त्रिंशत्पलं व्योमरजः क्षुद्रमत्स्यपलद्वयम्।।

तिलचूर्णपलं गुञ्जा त्रिपलं पादटङ्कणम्।
गोधूमवद्धा तत्पिण्डी पञ्चगव्येन भाविता।।

धमनात् कोष्ठिका यन्त्रे भस्त्राभ्यां तीव्रवह्निना।
पतत्यभ्रकसत्त्वं तु सत्त्वानि निखिलानि च।।

(रसार्णव)

अर्थात्– पहले "धान्याभ्रक" नवनीत के समान मुलायम कर उसमें से अभ्रक चूर्ण तीस पल, छोटी मछली दो पल, तिल–चूर्ण दो पल, गुन्जा तीन पल, सुहागा साड़े सात पल गोधूम चूर्ण के साथ "पञ्चगव्य" से भावित कर इन द्रव्यों की पिण्डी बनावे। इसके बाद इस पिण्डी को कोष्ठिका यन्त्र में रखकर दो भाथियों के द्वारा तेज अग्नि में धमन करे (धोंके) इस प्रकार सम्पूर्ण अभ्रक सत्व निकल आता है। और

भावयेदभ्रकं तत्तु दिनैकं कांजिकेन च।
रम्भाया मूलजैर्नीरैः सूरणोत्थैश्चमर्दयेत्।।
तुर्यांशं टंकणं तत्र क्षुद्र मत्स्यैः समं पुनः।
महिषीमलसंमिश्रान्संविधायास्यगोलकान् ।।
खराग्निना धमेद्गाढं सत्त्वं मुंचति कांस्यवत्।।

(रस मानस)

अर्थात्– धान्याभ्रक को एक दिन तक कांजी में भिगोवे, फिर केले की जड़ के रस से तदनंतर जमीकन्द के रस में भिगोय देवे, इसके बाद चौथाई सुहागा तथा चौथाई भाग छोटी मछलियों का चूर्ण और चौथाई भाग भैंस का गोबर मिलाकर ऊँट के लैंडा से कुछ छोटे–छोटे गोले बनाकर तेज आंच में धोंके तो कांसे के समान अभ्रक का सत्व निकल आता है।

सर्वधातु सत्व विधि

गुडं च गुग्गुलं चैव लाक्षापामाण्डटंकणम्।
उष्णं मीनं समादाय समभागानि कारयेत्।।
द्रावयेत्सर्वसत्त्वानि पाषाणादपि मृत्तिका।।

(यो.चि.म.)

अर्थात्– गुड़, गुग्गुल, लाख, पमार, सुहागा, ऊन, मछली, इनको समान ले इन सबको मिलाकर मूस में सत्व निकाले, इससे पत्थर से भी मिट्टी का सत्व निकलता है।

माक्षिक, विमल शोधन विधि

तैलाऽऽरनालतक्रेषु गोमूत्रे कदलीरसे।
कुलत्थकोद्रवक्वाथैः माक्षिकं विमलं तथा।
मुहुः सूरणकन्दस्थं स्वेदयेद्वरवर्णिनि।।
क्षाराम्लवणैरण्डतैलसर्पिसमन्वितम् ।
पुटत्रयं प्रदातन्यं तद्द्वयं शोधितं भवेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात्– सूरण के कन्द में स्थित माक्षिक तथा विमल को तैल, कांजी, तक्र, गोमूत्र, तथा केले के कुल्थी तथा कोदो के क्वाथ में बार–बार स्वेदन करे। क्षार, अम्ल, लवण, एरण्ड तैल, तथा घृत से युक्त माक्षिक तथा विमल को तीन पुट देनी चाहिए, इससे वे दोनो शुद्ध हो जाते हैं।

माक्षिक सत्व विधि

क्षौद्रगन्धर्वतै लाभ्यां गोमूत्रेण घृतेन च।
कदलीकन्दसारेण भावितं माक्षिकं मुहुः।
मूषायां मुञ्चति ध्मातं सत्त्वं शुल्वनिभं मृदु।।

(रसार्णव)

अर्थात– माक्षिक को मधु, रैंड़ी तैल, गो–मूत्र, घृत तथा केला कन्द के रस के साथ बार–बार भावित कर मूसा में फूक देवे तो वह तामा के समान मुलायम सत्व छोड़ता है।

माक्षिक सत्व द्रुति विधि

एरण्डोत्थेन तैलेन गुञ्जा क्षौद्रं च टंकणम्।
मर्दितं तस्य वापेन सत्त्वं माक्षिकजं द्रवेत्।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अण्ड तैल (तैल एरण्ड) चौंटनी तथा सुहागा इन तीनों को स्वर्ण माक्षिक के सत्व के समान भाग लेकर घोट लेवे, उसमें से कुछ तो स्वर्णमाक्षिक के सत्व के साथ ही घोटे और कुछ बाकी रहे उसको रख देवे; फिर उस मिश्रित चूर्ण को थोड़ा–थोड़ा डालता जाये तो सत्व की द्रुति होगी।

शुद्ध माक्षिक-भस्म, सत्व और द्रुत हुए क्रिया भेदों से- गन्धकादि योगो के साथ पारद में माक्षिक का प्रयोग जारण कर्म में करने से पारद देह एवं लोहोपयोगी सिद्ध होता है। यथा--

ताप्यमावर्त्तकं धातु-माक्षिकं मधु धातुकम्।
माक्षिकं तिक्तमधुरं मेहार्शक्षयकुष्ठनुत्।
कफपित्तहरं बल्यं योगवाहि रसायनम्।।
ज्वरसन्निपातदारिद्र्याण्यपि यन्नामकथनमात्रेण।
नश्यति योजनशते कस्तस्माल्लोहवेधकरः।।

(रसार्णव)

अर्थात– ताप्य (स्वर्ण माक्षिक) तथा आवर्तक (रोप्य माक्षिक) दोनों धातु माक्षिक है, और इनको मधुधातुक (स्वर्ण माक्षिक तथा रोप्य माक्षिक) भी कहते है; माक्षिक तिक्त तथा मधुर रस युक्त प्रमेह, अर्श, क्षय रोग तथा कुष्ट रोग को दूर करने वाला और बलकारक योगवाही तथा रसायन है। जिस माक्षिक के नाम कथन मात्र से सौयोजन पर ज्वर, सन्निपात तथा दरिद्रता भी नष्ट हो जाते है। इस माक्षिक से लौह वेध करने वाला उत्तम कौन है। अर्थात माक्षिक सबसे उत्तम लौहवेधकारक है।

शिलाजीत

निदाधे धर्म्मसन्तप्ता धातुसारं धराधराः।
निर्यासं च विमुञ्चन्ति तच्छिलाजतु कीर्त्तितम्।।

(रसार्णव)

अर्थात– गर्मी के दिनों में धूप से संतप्त पर्वत धातुओं का सारभूत निर्यास त्यागते है, उसको शिलाजतु, (शिलाजीत) कहते है।

शिलाजीत की शुद्धि

क्षाराम्लगोजलैर्धौतं शुद्धत्येव शिलाजतु।

(रस रत्न समुच्चस)

अर्थात– जवाखार, कांजी तथा गो मूत्र इन तीनों को एकत्र कर लेवे, उससे शिलाजीत को धोवे तो शुद्ध हो जायेगा। और

क्षाराम्लगोजलैर्ध्मातं शुध्यते च शिलाजतु।
अथवा गोघृतेनापि त्रिफलाद्वयार्द्रकद्रवैः।
लोहपात्रे विनिक्षिप्य शोधयेत्तत्तु यत्नतः।।

(रसार्णव)

क्षार (यवक्षार, सर्जिक्षार, तथा टंकणक्षार) अम्लवर्ग तथा गोमूत्र के साथ पकाने से शिलाजीत शुद्ध हो जाता है। अथवा गोघृत के साथ पकाने से शुद्ध हो जाता है। त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) तथा दोनो प्रकार के अदरख (स्थूल तथा सूक्ष्म या ग्रामीण तथा जंगली) के रस के साथ लोहे की कढ़ाई में शिलाजीत को अच्छी तरह छोड़कर शोधन करे।

शिलाजीत के गुण

नूनं सज्वरपांडुरोगशमनं मेहाग्निमान्द्यापहं
मेदश्छेदकरं च यक्ष्मशमनं शूलामयोन्मूलनम्।।

गुल्मप्लीहविनाशनं जठरहृच्छूलघ्नमामापहं
सर्वत्वग्गदनाशनं किमपरं देहे च लोहे हितम्।।

रसोपरससूतेन्द्ररसलोहेषु ये गुणाः।
वसन्ति ते शिलाधातौ जरामृत्युजिगीषया।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– शिलाजीत ज्वर, पांडुरोग और सूजन का शान्त करनेवाला। प्रमेह, मन्दाग्नि नाशक, वायगोला, तिल्ली, उदररोग, हृदय का शूल और आम का नाशकारक है।

मेद को उखाड़ने वाला, राजरोग, समस्त त्वचा के रोगों का नाश करता है। इससे अधिक और कोई पदार्थ देह और लोह का हितकारक नहीं है। रस, उपरस, पारद और धातुओं में जो गुण पाए जाते है; वे गुण जरा और मृत्यु के नाश के लिये इस शिलाजीत में रहते है!

अर्थात– शिलाजीत उत्तम प्रकार से शोधित और मारा हुआ देहोपयोगी उत्तम, श्रेष्ठ रसायन है। अतः इसका सेवन विधि युक्त करने वाला भी जरा व्याधि मुक्त होता है।

चपल- भेद शुद्धि एवं गुण निरूपण

गौरः श्वेतोऽरुणः कृष्णश्चपलस्तु प्रशस्यते।
हेमाभश्चैव ताराभो विशेषाद्रसबन्धकः।।
शेषौ मध्यौ च लाक्षावत् शीघ्रद्रावौ तु निष्फलौ।
वंङ्गवद्वते बह्नौ चपलस्तेन कीर्तितः।।

(रसार्णव)

अर्थात- गोरेवर्ण, सफेद, अरुणवर्ण तथा कृष्ण वर्ण का चपल उत्तम होता है। हेमाभस्वर्ण के समान वर्ण वाला चपल विशेषकर रस बन्धक होता है। शेष दो प्रकार का चपल मध्यम कहा है; और लाख के समान शीघ्र ही पिघल जाने वाला निष्फल होता है। वंग के समान अग्नि में रखने पर जो चपल पिघलता है; अतः वह चपल है। और

चपलः स्फटिकच्छायः षडस्त्री स्त्रिग्धको गुरुः।
त्रिदोषघ्नोऽतिवृष्यश्च रसबन्धविधायकः।।

(रसरत्नसमुच्चय)

चपल विल्लोरी पत्थर के समान सफेद, चिकना, भारी त्रिदोष का नाशक, बलकारी और रस का बंधक होता है।

मारयेत् पुटपाकेन चपलं गिरिमस्तके।
देहबन्धं करोत्येव विशेषाद्रसबन्धनम्।।
चपलश्चपलोवेधं करोति धनवच्चलः।
चपलो लेखनः स्निग्धो देहलोहकरो मतः।।

(रसार्णव)

अर्थात- चपल को गिरिमस्तक (शोरा) से पुट पाक द्वारा मारण करे। यह देह बन्ध करता है। विशेषकर रस बन्ध करने वाला है। मेघ की तरह चंचल चपल पारद का बंधन करता है। चपल लेखन, स्निग्ध, देह तथा लौह बन्ध कारक होता है।

रसक (खपरिया) भेद तथा शोधन और गुण

मृत्तिकागुडपाषाणभेदतो रसकस्त्रिधा।।
पीतस्तु मृत्तिकाकारो मृत्तिकारसको वरः।
गुडाभो मध्यमो ज्ञेयः पाषाणाभः कनिष्ठकः।।

(रसार्णव)

अर्थात- मृत्तिकाकार, गुड़वर्ण तथा पाषाणवर्ण भेद से रस तीन प्रकार का होता है। पीतवर्ण का मृत्तिकाकार मृत्तिका रसक श्रेष्ठ है। गुड़ के समान प्रभाव वाला मध्यम तथा पत्थर समान प्रभाव वाला कनिष्ठ होता है। और

कटुकालाबुनिर्य्यासेनालोड्य रसकं पचेत्।
शुद्धो दोष विनिर्मुक्तः पीतवर्णस्तु जायते।।

(र.र.समु. रसार्णव)

कड़वी लौकी (तूंबी) के रस में घोल कर पकावे; इस प्रकार पकने से यह दोष रहित होकर पीतवर्ण हो जाता है। और

नरमूत्रे स्थितो मासं रसको रंजयेद्ध्रुवम्।
शुद्धं ताम्रं रसं तारं शुद्धवर्णप्रभं यथा।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– रसक (खपरिया) को एक मास तक मनुष्य के मूत्र में रक्खे तो शुद्ध तांबे, पारद, और चांदी को सुवर्ण के समान रंग देता है।

सस्यक

सस्यो मयूरतुत्थं स्यात वह्निकृत् कालनाशनः।
रसायने तु योग्यः स्याद् वयस्तम्भकरो भवेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात– सस्यक मयूर तुत्थं होता है और अग्निवर्धक तथा काल नाशक होता है। यह रसायन के योग्य तथा आयु को स्थिर करता है।

सस्यक (नाग तांबा) निर्माण विधि

मयूरपिच्छानादाय ज्वालयेदाज्यसर्षपैः।
गुडगुग्गुलमीनोर्णाटंकणसर्जिकामधु ।।
गुञ्जा च पिप्पली लाक्षा घृतं चैकत्र कारयेत्।
धमेत्तदन्धमूषायां नाग ताम्र प्रजायते।।

(यो०चि०म०)

मोरपंख चार सहस्त्र के चन्दा निकाले और मिट्टी के बड़े बरतन में डालकर जलादेवे, फिर दो टंक गुड सरसों गूगल छोटी मछली, ऊन, सुहागा, सब्जी, शहद चिरमिठी, पीपल, लाख ये सब बराबर लेकर एक हाथ नीचा गड्ढा खोदे एक एक ओर में मोरपंख की राख रखे और दवाई डालता जावे और नीचे से धौंकता जाय जब सब डाल चुके और ठण्डा हो जावे तब छोटे-छोटे कण बीन लेवे जो सस्यक (मयूर तुत्थ होता है) बाद में इसे भट्टी में गलवा लेवे तो नाग तांबा होवे।

सस्यक (तुतिया अथवा तुत्थ) और नीला थोथा आदि नामों से भी कहा गया है जो ताम्र और गन्धक के तेजाब से घुलकर नीलवर्ण के क्रस्टल बन जाते है; पृथ्वी से खनिज के रूप में भी तुल्थ निकलता है। जिससे ताम्र प्राप्त किया जाता है।

नीला थोथा से जो ताम्र प्राप्त किया जाता है वह भी शुद्ध माना जाता है

निम्बुद्रवाल्पटंकाभ्यां मूषामध्ये निरुध्य च।
ताम्ररूपं परिध्मातं सत्त्वं मुंचति सस्यकम्।।

(रसरत्न समुच्चय)

अर्थात– नीले थोथे में कुछ सुहागा डाल नींबू के रस से घोटे। मूसा में रख कपरोटी कराय कोयलो की आंच में झोंके तो तांबे के समान सत्व निकलता है। और

सस्यकः शुद्धिमाप्नोति रक्तवर्गेण भावितः।

(रसार्णव)

अर्थात– सस्यक रक्तवर्ग (मजिष्ठा, केशर, लाख, खेर, असन) के द्रव्यों के साथ भावित करने से शुद्ध हो जाता है!

हिंगुल (दरद) - भेद व गुण और शुद्धि

लघुकन्दरसो म्लेच्छो हिंगुलं चूर्णपारदम्।
मणिरागजमस्यैव नाम चर्मारगन्धिकम्।।

(रसार्णव)

अर्थात– लघु कन्द रस, म्लेच्छ, हिंगुल, चूर्ण पारद, चर्मार गन्धिक तथा मणिरागज (हिंगुल) ये सब दरद के नाम है। और

तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगन्धकसम्भवम्।
मेहकुष्ठहरं दिव्यं बलमेधाग्निदीपनम्।।

(रसार्णव)

अर्थातं– पारद गन्धक से उत्पन्न दिव्य हिंगुल तिक्त रस वाला तथा उष्ण होता है। यह मेह कुष्ठ को दूर करने वाला, दिव्य बल, मेघावर्द्धक तथा जाठराग्नि को प्रदीप्त करने वाला है। और

किमत्र चित्रं दरदः सुभावितः,
क्षीरेण मेष्या बहुशोडम्लवर्गैः।
सितं सुवर्णं बहुघर्म्मतापितं,
करोति साक्षाद्वरकुंकुमप्रभम्।।

अर्थात– यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि भेड़ का दूध तथा अम्ल वर्ग के द्रव्यों से अनेक बार अच्छी तरह भावित हुआ दरद (हिंगुल) सफेद स्वर्ण को साक्षात तीव्र धूप में तपाते हुए उत्तम केशर की प्रभा के सदृश बना देता है।

हिंगुल से पारा काढ़ने की विधि

निम्बूरसैर्निम्चपत्ररसैर्वा याममात्रकम्।
पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वर्ध्वे च पातयेत्सूतमुक्तवत्।।
ततः शुद्धं रसं तस्माम्नीत्वा कार्येषु योजयेत्।।

अर्थात– नींबू के रस तथा नीम के पत्तो के रस में हिंगुल को एक प्रहर खरल करे फिर डमरूयन्त्र में चढ़ावे, उससे उड़कर पारा ऊपर जा लगे, उसे शुद्ध जाने और उसको सब काम में लावे।

स्त्रोतोन्जन (सुरमा) लक्षण तथा शोधन विधि

वल्मीकशिखराकारं भङ्गे नीलोत्पलद्युति।
घृष्टन्तु गैरिकच्छायं स्त्रोत्तोजं सुरवन्दिते।।

अर्थात्– हे देव वन्दित पार्वति! वाल्मोक शिखर के आकार सदृश काटने पर नील कमल की द्युत्ति के समान तथा घिसने पर गेरू के समान स्त्रोतोऽन्जन होता है। और

गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च।
भावितं बहुशस्तच्च क्षिप्रं बध्नाति सूतकम्।।

(रसार्णव)

अर्थात्– गाय के गोबर का रस, मूत्र, घृत, मधु तथा वसा में स्त्रोतोञ्जन अनेक बार भावित करने पर शुद्ध हो जाता है। वह पारद को अवश्य ही बांधता है। और

नीलांजनं चूर्णयित्वा जम्बीरद्रवभावितम्।
दिनेकमातपे शुद्धं सर्वकार्येषु योजयेत्।।
एवं गैरिककासीसं टंकणानि वराटिका।
शंखत्रुटी च कंकुष्ठं शुद्धिमायान्ति निश्चितम्।।

(यो.चि.म.)

अर्थात्– सुरमा को पीसकर एक दिन जम्बीरी के रस की भावना देवे, फिर धूप में सुखावे तो शुद्ध होवे, तब सब काम में वर्ते। इसी प्रकार गेरू, कसीस, सुहागा, कोड़ी, शंख, फिटकरी, खंपरियादि शुद्ध होते हैं।

गंधक भेदगुणादि निरूपण

स चापि त्रिविधो देवि शुक्रचञ्चुनिभो वरः।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः प्रिये।।

(र.र.स.)

अर्थात्– हे पार्वति गन्धक तीन प्रकार का है। उनमें तोते की चोंच के समान लाल वर्ण का गन्धक श्रेष्ठ है। पीतवर्ण का ऑवला सार गन्धक मध्यम है और शुक्लवर्ण का गन्धक अधम माना गया है।

गन्धक शुद्धि

सदुग्धभांडस्यपटस्थितोऽयं शुद्धो भवेत्कूर्मपुटेन गंधाः।

(वृ०यो०)

अर्थात्– एक बासन में दूध भर मुख पर कपड़ा बांध देवे और उस कपड़े पर गन्धक को विछा देवे, फिर उसको कच्छपयन्त्र से शुद्ध करे तो गन्धक शुद्ध हो जाता है। और

भङ्गाम्भसा वा सप्ताहं भावितःक्षालितोऽम्भसा।।

तापितो बदराङ्गारे घृताक्ते लोहभाजने।
आवर्त्तितश्च मृद्वग्नौ घृताक्ते – कर्पटोपरि।।
क्षिप्तं भृङ्गस्य निर्यासे क्षालितो गन्धको हितः।।
(रसार्णव)

अर्थात– गन्धक को भृंगराज के रस में एक सप्ताह भावित कर जल में प्रक्षालन करे। इसके बाद घृत युक्त लोहे के पात्र में रखकर बेर की लकड़ी के आग से मन्द तपावे और घृतयुक्त (घी से लिपटा हुआ) कपड़े के ऊपर गिरा दें, तदनंतर शीघ्र ही भृंगराज के रस से ही प्रक्षालन करे, ऐसा करने से गन्धक हितकारक हो जाता है।

गन्धक को मन्द आँच में पिघला कर दूध से भरे बर्तन में गिरा देवे, ऐसे हर बार दूध बदलकर सात बार गन्धक को पिघलाकर दूध में गिरावे तो निसंन्देह गन्धक शुद्ध हो जाता है।

अशुद्ध गन्धक दोष

अशुद्धगंधः कुरुते तु कुष्ठं तापं भ्रमं पित्तरुजं तनोति।
रूपं सुखं वीर्यबलं निहंति तस्मात्सुशुद्धं विनियोजनीयम्।।
(टो.न., र.सा.प.)

अर्थात– अशुद्ध गन्धक, कोढ़ को करता है तथा ताप, भ्रम, और पित्त के रोगों को शरीर में फैलाता है; रूप, वीर्य, सुख और बल का नाश करता है। इसीलिये शुद्ध गन्धक का सेवन ही हितकर है।

गंधक गुण

शुद्धगंधो हरेद्रोगान् कुष्ठमृत्युजरादिकान्।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति च।।
(र. रत्नाकर, र.र.स.)

अर्थात– शुद्ध गन्धक, कोढ़, मृत्यु और जरा (बुढ़ापा) आदि रोगों का नाश करता है! अत्यन्त, उष्ण, अग्नि और वीर्य वृद्धि को करता है।

गंन्धक तैल विधि

गंधकस्य च पादांशं दत्त्वा च टङ्कणं पुनः।
मर्द्दयेन्मातुलुङ्गाम्लै रुवुतैलेन भावयेत्।।
चूर्णं पाषाणगं कृत्वा शनैगंधिं खरातपे।।
(र.चि.)

गन्धक से चौथाई सुहागा लेकर बिजोरे के रस से घोटे और एरण्ड तैल की भावना देवे फिर उस गन्धक के चूरे को चिकने पत्थर पर बिछाकर तेज घाम (धूप) में रख देवे तो गन्धक का तेल निकल आवेगा।

अन्य तैल विधि

पीत (आँवलासार) गन्धक के चूर्ण में, पीले फूल की सहदेवी के रस की सात भावना देवे, फिर टिकिया बनाकर सुखा लेवे, बाद में पाताल यन्त्र विधि से गन्धक का तैल निकल आता है;

पीले फूल की सहदेवी का पेड़, क्वार-कार्तिक मास में जबकि हल्की सर्दी आती है करीब दो ढ़ाई फिट ऊँचा होता है। निम्बपत्रसदृक्पत्रा पीतपुष्पा गुदति" इसका फूल गोल होता हैं जैसा कि पहले औरते नांक में गोल सैरंटा की लौंग पहनती थी; रस कर्म मे इसे भी उपयोगी माना जाता है।

गेरू की शुद्धि और गुण भेद निरूपण

पाषाणगैरिकं चैकं द्वितीयं स्वर्णगैरिकम्।
पाषाणगैरिकं कठिनं ताम्रवर्णकम्।।
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम्।
स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत।।
हिध्मावमिविषघ्नं च रक्तघ्नं स्वर्णगैरिकम्।
पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणैः।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– पाषाण गैरिक और स्वर्ण गैरिक भेद से गेरू दो प्रकार का है। पाषाणगेरू कड़ा और तांबे के सदृश वर्ण वाला होता है और स्वर्ण गैरिक (सोना गेरू) अत्यन्त लाल वर्ण वाला होता है, चिकना चमकदार होता है। गेरू मीठा, चिकना, ठंडा नेत्रों को हितकारी तथा कसैला और रक्त पित्त का नाशक है, हिक्का, वमन, विष और दुष्ट रक्त का नाश करता है। स्वर्ण गैरिक से दूसरा गेरू, न्यून कम गुण वाला है।

गैरिकं किञ्चिदाज्येन भ्रष्टं शुद्धं प्रजायते।

(वृहद्योग तरंगणी)

अर्थात– गेरू को घृत में सानकर अग्नि में भून लेवे तो गेरू की शुद्धि होगी।

कसीस की शुद्धि और गुण

कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रियः।

कसीस को पित्त वर्ग की तथा स्त्री के रज की भावना देवे तो निश्चय शुद्ध होवे। और

सकृद्भृङ्गाम्बुना क्लिन्नं कासीसं निर्मलं भवेत्।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– जलभांगरे के रस की एक बार ही भावना देने से कसीस शुद्ध हो जाता है;

गुण

कासीसाद्वयमम्लोष्णं तिक्तं केश्यं दृशोर्हितम्।
हन्ति कण्डुविषश्वित्रमूत्रकृच्छककामयान्।।
(बृहद्योगतरंगणी)

अर्थात– दोनों प्रकार की कासीस, खट्टी, गरम, चटपटी, केशों, तथा नेत्रों को हित है खुजली कारक विष, कुष्ट, मूत्रकृच्छ्र और कामला के रोगों का नाश करता है।

सौराष्ट्रिका (फिटकरी) भेद तथा शोधक विधि

सिता कृष्णा च सौराष्ट्री चूर्णखण्डात्मिका च सा।।
गोपित्तेन शतं वारान् सौराष्ट्रीं भावयेत्ततः।
धामित्वा पातयेत् सत्त्वं क्रामणं चातिगुह्यकम्।।
(रसार्णव)

अर्थात– सौराष्ट्री सफेद तथा काले वर्ण की और चूर्ण के समान होती है। सौराष्ट्री (गुजरात की मिट्टी) को गाय के पित्त के साथ सौ बार भावित करे और इसके बाद उसको फूंक कर अत्यन्त गुह्य (गोप्य) क्रामण सत्व को निकाले।

हरताल का शोधन

स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुध्यति।।
(रस रत्नाकर)

अर्थात– हरताल के टुकड़े-टुकड़े कर, पोटली में बांध, पेठे के रस में या तिल के खार के जल में अथवा चूने के पानी में, दौलायन्त्र द्वारा स्वेदन करे तो हरताल शुद्ध होवे। और

तालं विचूर्णयेत्सूक्ष्मं मर्द्य नागार्जुनीद्रवैः।
सहदेव्या बलायाश्च मर्दयोद्दिवसद्वयम्।।
तत्तालं रोटकं कृत्वा च्छयायां च विशोषयेत्।
हंडिकायन्त्रमध्यस्थं प्लक्षभस्मतलोपरि।।
पाच्यं बालुका यंत्रेण भिदितं चण्डवह्निना।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सर्वयोगेषु योजयेत्।।
(यो०चि.म०)

अर्थात– हरताल को नागार्जुनी के रस में तीन दिन और सहदेवी कँघई के रस में दो दिन मर्दन करे फिर हरताल की टिकिया कर छाया में सुखावे फिर बालुका यन्त्र में ढ़ाक की राख भर बीच में टिकिया रख पकावे। अति तीक्ष्ण अग्नि देवे, जब ठण्डी हो जाय तब निकाल सम्पूर्ण काम में लावे।

मैनसिल- भेद गुण व शुद्धि निरूपण

मनःशिला त्रिधा प्रोक्ता श्यामाङ्गी कणवीरका।
खंडाख्या चेति तद्रूपं विविच्य परिकथ्यते-।।

(र.र.स.)

अर्थात– मैनसिल तीन प्रकार का है- श्यामांगी, कणवीरका और खंडाख्या अर्थात काली, लाल, और गौर वर्ण वाली। जो भारी हो उसे श्यामिका कहते हैं और जो गौर वर्ण से रहित चमकदार और ताम्र के समान वर्ण वाली हो वह कणवीरका तथा रेत के समान लाल रंग वाली और वजनदार हों उसे खण्ड मैनसिल कहते हैं। इनमें से उत्तरोत्तर पहले से दूसरी से तीसरी मैनसिल अधिक सत्व वाली होती है।

मनःशिला शोधनम्

पचेत्त्यहमजामूत्रे दोलायन्त्रे मनः शिलाम्।
भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति।।

(यो.चि.म.)

अर्थात– मैनसिल को बकरी के मूत्र दोलायन्त्र में तीन दिन पकावे, फिर बकरी के पित्त की सात भावना देवे तो शुद्ध होवे। और

अगस्त्यपत्रतोयेन भाविता सप्तवारकम्।
श्रृंगवेररसैर्वापि विशुद्धचति मनःशिला।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात्– अगस्ति वृक्ष के पत्तो को कूटकर रस निकाले उससे सातबार मैनसिल को भावना देवे; अथवा अदरख के रस की सात भावना देवे तो मैन सिल शुद्ध हो जायेगी।

मैनसिल गुण

मनःशिला सर्वरसायनाढ्या तिक्ताकटूष्णा कफवातहंत्री।
सत्त्वात्मिका भूतविषाग्निमान्द्यकंडूतिकासक्षयहारिणी च।।

(रसरत्नसमुच्चय)

अर्थात– यह मैनसिल समस्त रसायनो में श्रेष्ठ है। यह तिक्त, कटु, उष्ण कफ वात को नाश करने वाली है। सत्त्वरूप भूत, विष, मन्दाग्नि, खुजली, कांस और क्षय का नाश करने वाली है।

प्रकरण–12

पारदीय संस्कार प्रकरण

मुख्यतः अनेक रस तन्त्रो में, पारद के अठारह संस्कारों का विधिवत वर्णन मिलता है। आयुर्वेद की रसौषध क्रियाओं में अष्ट संस्कारित पारद को ही शुद्ध माना गया है। यथा–

अष्टादशैव संस्कारा ऊनविशतिकाः क्वचित्।
संप्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्या क्वचिन्मताः।।

(आ०प्र०)

इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने।
कार्यास्ते प्रथमं शेषा नोक्ता द्रव्योपयोगिनः।।

(र.र.समु.)

संस्कारो द्वारा विशुद्ध किया हुआ पारद मनुष्य को जीवन्मुक्ति के लाभ को प्राप्त कराने वाला होता है। अति शुद्ध पारद के सेवन से मनुष्य जीवनमुक्त होता है और वह पारद की सेवा किये बिना संस्कारो के लिये सफल नहीं होती इसलिये प्रथम पारद संस्कारों को ही यत्न पूर्वक गुरु परम्परा से जानना उचित है। यथा–

तस्य हि साधनविधौ सुधियां प्रतिकर्म निर्मलाः प्रथमम्।
अष्टादश संस्कारा विज्ञातव्या प्रयत्नेन।।

(रस दर्शन)

पारद के अठारह ही संस्कार है कही कही पर उन्नीस और बीस संस्कारों को भी माना है। यथा–

अष्टादशैव संस्कारा ऊनविंशतिकाः कचित्।
सम्प्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः कचिन्मताः।।

(र.रा.सुं, र.र.स., र.रा.श., नि.रा.)

पारद के अठारह संस्कारों के नाम

स्यात्स्वेदनं तदनुमर्दनमूर्च्छनं च स्यादुत्थितिः पतनरोधनियामनानि।
संदीपनं गगनभक्षणमात्र संचारणं तदनु गर्भगतिर्द्रुति मेव च।।
वाह्य द्रुतिः सूतकजारणा स्याद्रागस्तथा सारणकर्म पश्चात्।

संक्रामणं वेधविधिः शरीरयोगस्तथाष्टादशधात्र कर्म।।

(र.रा.सुं, र.र.स.रा.श.नि.र.)

अर्थात– 1. स्वेदन 2. मर्दन 3. मूर्च्छन 4. उत्थिति 5. पातन 6. रोधन 7. नियामन 8. संदीपन 9. गगन भक्षण (अभ्रक जारण का प्रमाण) 10. चारण 11. गर्भ द्रुति 12. बाह्यद्रुति 13. पारदजारण 14. राग 15. सारण 16. संक्रामण 17. वेध 18. शरीर योग्य (पारद भक्षणं) इस प्रकार ये अठारह वारद के संस्कार कहे है।

पारद में बहुत से दोष मिले हुए होने के कारण यत्न पूर्वक विद्वान लोग पारद का शोधन करें, इसी लिये पारद की शुद्धि के साधक बीस संस्कार भी कहते है। यथा–

1. पटसारण 2. संमर्दन 3. मूर्च्छन 4. मुत्थापन 5. स्वेदौ, 6. पातन 7. बोधन 8. नियमन 9. दीपन 10. मुखकरणम 11. जारण 12. सविड 13. मानम 14. गर्भ द्रितयो 15. रन्जन 16. मथवेधनं 17. बहिद्रुतयः 18. सारण 19. मपि च क्रामण 20. मारण मिति सूतसंस्काराः।। (वृ० यो० शिवा गम)

अर्थात– 1. पटसारण 2. संमर्दन 3. मूर्च्छन 4. उत्थापन 5. स्वेदन 6. पातन 7. बोधन 8. नियमन 9. दीपन 10. मुखीकरण 11. जारण 12. विड 13. मान 14. गर्भद्रुति 15. रंजन 16. वेधन 17. बाह्यद्रुति 18. सारण 19. क्रामण 20. मारण ये बीस संस्कार पारद के है।

रसौषध क्रियाओं में पारद का उपयोग अष्ट संस्कारित पारद को लेकर किया जाता है इसलिये आयुर्वेद में रोगों की चिकित्सा में शीघ्र लाभ हेतु अष्ट संस्कारित पारद को लेकर ही उपयोग लिया जाता है। क्योंकि अष्ट संस्कारित पारद द्वारा गन्धकादिक जारण क्रियाओं में तथा रस का उपयोग गन्धकादिक के साथ-साथ काष्टौषधि के साथ भी प्रयोग किया जाता है।

अष्ट संस्कारों के नाम

स्वेदनमर्दनमूर्च्छनोत्थापनपातनारोधननियमनदीपनानीत्यष्टौ संस्काराः।।

(र.प.)

अर्थात– स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, रोधन, नियमन और दीपन ये पारद की शुद्धि के लिये आठ संस्कार कहे हैं।

स्वेदनलक्षण

क्षाराम्लैरौषधैर्वापि दोलायंत्रे स्थितस्य हि।
पाचनं स्वेदनाख्यं स्यान्मलशैथिल्यकारकम्।।

(र.र.स., र.रा.प., र.सा.य.)

अर्थात– पारद को दौलायन्त्र में रखकर क्षार तथा अम्ल वाली औषधियों से पकावे तो इसके मल का नाश होता है।

मर्दन लक्षण

उदितैरौषधैः सार्धं सर्वाम्लैः कांजिकैरपि।
पेषणं मर्दनाख्यं स्याद्बहिर्मलविनाशनम्।।

(र.र.स., र०रा०य०, र.सा.प.)

अर्थात– कही हुई औषधियों से सम्पूर्ण खट्टे पदार्थो से अथवा कांजी से पारद के घोटने को मदर्न संस्कार कहते है। और वह मर्दन बाहर के मल का नाश करता है।

मूर्च्छन लक्षण

मर्दनोद्दिष्टभैषज्यैर्नष्टपिष्टत्वकारकम् ।
तन्मूर्च्छनं हि वंगादिभुजकंचुकनाशनम्।।

(र.र.स., र.रा.प., र.सा.व.)

अर्थात– मर्दन संस्कार में कही हुई औषधियों से पारद का नष्टपिष्ट हो जाना उसको मूर्च्छन कहते हैं और वह मूर्च्छन वंब तथा नाग आदि कंचुकों को नाश करता है।

उत्थापन लक्षण

स्वेदातपादियोगेन स्वरूपापादनं हि यत्।
तदुत्थापनमित्युक्तं मूर्च्छाव्यापत्तिनाशनम्।।

(र.र.स., र.रा.प., र.सा.प.)

अर्थात– मूर्च्छित पारद का स्वेदन, आतप (घाम) आदि उपायों से जो अपने रूप में लाना अर्थात पारद को पुनः पूर्वावस्था में लाना ही उत्थापन संस्कार का लक्षण कहते हैं। उत्थापन मूर्च्छावस्था की व्यापत्ति को नाश करता है।

पातन लक्षण

उक्तौषधैर्मर्दितपारदस्य यंत्रस्थितस्योर्ध्वमधश्च तिर्यक्।
निर्यातनं पातनसंज्ञमुक्तं वंगादि संपर्कजकंचुकघ्नम्।।

(र.र.स.,र.रा.व.,र.सा.प.)

अर्थात– अपने-अपने स्थल पर कही हुई औषधियों से मर्दन किये हुए पारद को यन्त्र में रखकर जो ऊपर नीचे या तिरछा निकालता है, उसे पातन कहते है, इस पातन संस्कार के करने से वंग नागादि के मल से पैदा हुए केचुक का नाश होता है।

रोधन लक्षण

जलसैन्धवयुक्तस्य रसस्य दिवसत्रयम्।
स्थितिरास्थापिनी कुम्भे योऽसौ रोधनमुच्यते।।

(र.र.स.र.रा.प.)

अर्थात– जल में सैन्धव लवण को छोड़कर एक घड़े में भर देवे फिर पारद को तीन दिवस तक उस घड़े में स्थापित करे तो इसे रोधन (बोधन) संस्कार कहते है।

नियमन का लक्षण

रोधनाल्लब्धवीर्यस्य चपलत्वनिवृत्तये।
क्रियते पारदे स्वेदः प्रोक्तं नियमनं हि तत्।।

(र.र.स.,र.रा.प.)

अर्थात– रोधन संस्कार से पारद को एक प्रकार की चपलता रूप वीर्य की प्राप्ति होती हे। उस चपलता की निवृत्ति के लिये जो पारद में स्वेदन किया जाता है, उसको नियमन कहते है।

दीपन लक्षण

धातुपाषाणमूलाद्यैः संयुक्तो घटमध्यजः।
ग्रासार्थं त्रिदिनं स्वेदो दीपनं तन्मतं बुधैः।।

(र.र.स., र.रा.प.)

अर्थात– जब पारद को ग्रास देना हो तब धातु, पाषाण (खनिज पदार्थ) और कन्दमूलादि पदार्थो से युक्तकर एक घड़े में भर ऊपर से औषधियों का रस भर देवे फिर तीन दिन तक स्वेदन करे तो दीपन संस्कार कहलाता है।

पारद संस्कार करते समय बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है क्योंकि रस (पारद) की पांच गति होने से यथा–

जलगो जलरूपेण त्वरितो हंसगो भवेत्।
मलगो मलरूपेण सधूमो धूमगो भवेत्।।
अन्या जीवगतिर्दैवी जीवोण्डादिव निष्क्रमेत्।
स तांश्च जीवयेज्जीवांस्तेत जीवो रसः स्मृतः।।
चतस्रो गतयो दृश्या अदृश्या पंचमी गतिः।
मंत्रध्यानादिना तस्य रुध्यते पंचमी गतिः।।

(र.र.स.)

अर्थात– यदि पारद का जल में संस्कार करे तो जलरूप होकर नष्ट हो जाता है अर्थात जल के साथ सूक्ष्म रूप विलेय होकर बह जाता है और जो हंसगः (सूर्य के प्रकाश में) संस्कार किया जाता तो सूर्य की तेजी से भाप बनकर उड़ जाता है। यदि किसी पदार्थ के साथ शुद्ध किया जावे तो उस पदार्थ की मैल के द्वारा निकल जाता है अथवा किसी यन्त्र विधि के द्वारा शोधा जावे तो धूम के रूप में परिणत होकर निकल जाता है जिस प्रकार अंड़े में से जीव निकलता है। उसके निकलने की गति नही ज्ञान होती इसी प्रकार पारद की पांचवी दैवी जीवगति है। इनमें चारों दशाओं को तौ वैद्य देख सकता है। जो पांचवी अदृश्य गति है वह पांचवी गति मंत्राध्यानादि से रोकी जाती है।

इति भिन्नगतित्वाच्च सूतराजस्य दुर्लभः।
संस्कारस्तस्य भिषजो निपुणेन तु रक्षयेत्।।

(र.र.स.)

अर्थात– इस तरह नाना प्रकार की दशाओं के होने से पारद का संस्कार दुर्लभ है, अतः वैद्य निपुणता से उनका संस्कार करें।

पारद संस्कारों को करने वाला तथा पारद को उपयोगी बनाकर रसौषधों का निर्माण करने वाला ही उत्तम रसवैद्य है।

शुभेहानि प्रकर्तव्य आरंभो रसशोधने।
एकांते सद्मनि पुरोभ्यर्च्यार्यान्ढुंढिभैरवान्।।

(वृ०यो०नि०र०)

अर्थात– श्रेष्ठदिन में अपने सम्मुख देवी गणेश और भैरव को पूजकर एकान्त स्थान में रस शोधन को आरम्भ करे।

उत्तम साधकों का लक्षण

यथा–

जितेन्द्रियाः क्लेशसहा नित्योद्यमसमन्विताः।
शूराश्च कृतविद्याश्च प्रशस्ता साधकाः प्रिये।।

(रसार्णव)

अर्थात– हे पार्वती! जितेन्द्रिय कष्ट को सहन करने वाले तथा प्रतिदिन उद्योग में संलग्न, शूर तथा प्रत्यक्ष कार्य में प्रवीण मनुष्य रस सिद्धि में उत्तम साधक है।

पारद संस्कार विधि निरूपण

पारद का संस्कार करते समय कम से कम एक तोला पारद का प्रमाण माना गया है। अधिक से अधिक सौ पल तक पारद लिया जा सकता है। यथा–

शतं पंचाशतं वापि पंचविशद्दशैव च।
पञ्चैकं वा पलं चैव पलार्द्धं कर्षमेव च।।

(रसेन्द्रसा. स.र.रा.सु)

कुछ विद्वानों ने पारद के शोधन प्रमाण को लेकर कम से कम एक पल की मात्रा होनी आवश्यक है तथा अधिक से अधिक सौ पल प्रमाण को माना है। यथा–

पलादूनस्य सूतस्य शतपल्यधिकस्य च।
न संस्कारः प्रकर्तव्यः संस्कारः स्यात्ततोऽपरः।।

(यो.र.वृ.यो.नि.र.)

स्वेदन संस्कार

अथातः स्वेदनं वक्ष्ये यथा तीव्रो भवेद्रसः।
आयसे मृण्मये पात्रे स्वेदस्तत्र विधीयते।।
दिव्यौषधिकषायाम्लैः शिग्रुमूलैः सराजिकैः।
लवणत्रिकटुक्षारैर्विषोपविषमूत्रकैः ।।
कलांशमानः कर्त्तव्यो मृद्वग्निस्वदने विधिः।
एकविंशदिने चैव जायते सोतितीव्रकः।।

(र.प.)

अर्थात– अब जिस प्रकार पारद तेज हो जाय उस स्वेदन संस्कार को कहता हूँ। दिव्यौषधियों का कषाय (काढ़ा) अम्ल वर्ग सैजने की जड़ इन सबका पारद से पृथक पृथक सोलहवां भाग लेकर मंदाग्नि से इक्कीस दिन स्वेदन करे तो पारद अत्यन्त तीव्र हो जाता है। अन्यत्त्च–

त्र्यूषणं लवणासुर्यौ चित्रकार्द्रकमूलकम्।
क्षिप्त्वा सूतो मुहुः स्वेद्यः काञ्झिकेन दिनत्रियम्।।

(र.र.समु.)

अर्थात– शुष्ठी चूर्ण, मरिच चूर्ण, पिप्पली सैंधा नमक, राई, चित्रकचूर्ण आर्द्रक और मूली ये सब पदार्थ मिलाकर जितना पारद हो उससे आधी मात्रा में लेकर पत्थर की खरल में इनके साथ पारद को खूब मर्दन (घोटे) करें और गोला बना लेवे। फिर इस गोले को मोटे कपड़े में बाँधकर मिट्टी की हण्डिका में कांजी भरकर उस कांजी में इस गोले को लटका कर (अर्थात दोला यन्त्र विधि से) चूल्हे पर मध्यम अग्नि से तीन दिन तक स्वेदन करें! ध्यान रहे कांजी का पानी जब हण्डिका में कम होवे तो और कांजी पानी भर देवे; कपड़े में बंधा औषधि चूर्ण युक्त पारद का गोला कांजी पानी में डूबा रहनाा आवश्यक है तथा नीचे हंण्डिका के तल से कुछ ऊपर उठा रहना चाहिए। इस तरह तीन दिन तक स्वेदन देवे। अन्यच्च–

राजिका चित्रकं हिंगु लवणं व्योष संयुतम्।
सूतपादमिदं सर्वं स्वर्ज्जिकाक्षारसंयुतम्।।
शिग्रुपत्ररसेनैव पिष्ट्वा कुंडलिकाकृतिम्।
कुर्य्याद् भूर्जदले सम्यगथवा कदलीदले।।
संपक्वे सदृढे वापि वस्त्रखंड़े चतुर्गुणे।
रसं मध्ये विनिक्षिप्य वध्नीयात्तस्य पोटलीम्।।
क्षाराम्लमूत्रवर्गेण स्वेदयेच्च दिनत्रयम्।
तथा स्वेदः प्रकर्तव्यो मज्जिता पोटली यथा।।
मृण्मयस्यैव भाण्डस्य तलस्पर्शो भवेन्न च।
दोलायंत्रेण संस्वेदः कर्त्तव्यो मृदुवह्निना।।

(ध.स.)

अर्थात– राई,चीते की छाल, हींग, सोंठ, मिर्च पीपल और सज्जीखार ये सब पारद से चौथाई भाग हैं। इनकी सहजने के पत्तो के रस में घोटकर भोजपत्र अथवा केले के पत्ते पर कुंडल के समान गोल टिकिया बनावे फिर गाढ़े चिकने चौतर कपड़े में उस टिकिया की पोटली बांधे तदन्तर क्षार अम्ल वर्ग और मूत्र वर्ग से तीन दिवस पर्यन्त स्वेदन करे। स्वेदन करते समय पारद पोटली रस के भीतर डूबी रहे तथा पात्र के पैंदे से भी चिपकी न रहने देवे; दोला यन्त्र विधि से मन्दाग्नि में पकावें।

स्वेदन की अवधि का विवेचन

स्वेदनादिक्रिया कार्या गुणाधिक्याय पंडितैः।
एकादिसप्तपर्य्यंतं स्वल्परोगेऽथवा सकृत्।।

(र.सा.प.)

अर्थात– पंडितो को चाहिये कि पारद की गुण की अधिकता के लिये एक बार से लेकर सातवार तक स्वेदन करे, यदि रोग स्वल्प होवे तो एक ही बार स्वेदन करें।

मर्दन संस्कार

एवं कृते स्वेदने तु मर्दनं कारयेत्ततः।
तथा प्रक्षालनं कार्य यथा न क्षीयते रसः।।

अर्थात– इस प्रकार स्वेदन संस्कार को करके फिर मर्दन संस्कार को करें और स्वेदन के पीछे जो कांजी से क्षालन करते है उसको बड़ी सावधानी से करना चाहिए क्योंकि पारद का क्षय इसमें अधिक होता है। अतः पारद का क्षय बचाने के लिये क्षालन क्रिया कांजी पानी से की जाती है उसमें शीघ्रता न करें। सावधानी पूर्वक देखता हुआ कही क्षालन के साथ पारद का क्षय तो नही हो रहा है; जितना कांजी अधिक खट्टी होगी पारद का क्षय उतना ही कम होगा, इसलिये क्षालन क्रिया में कांजी को ही विशेषतः प्रयोग में लाना उचित रहता है।

गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधि गुडान्वितम्।
लवणासुरसंयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत्।।
षोडशांशन्तु तद्द्रव्यं सूतमानान्नियोजयेत्।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत्।।

(र.र.सम्.)

रसोई घर का धुआं, लाल ईटों का चूर्ण, दधि, गुड़, सैंधा लवण, राई ये प्रत्येक द्रव्यों पारद से सोलहवी मात्रा (षोडशांशभाग) अनुसार एकत्रित कर पाषाण खल्व में सबकों डालकर स्वेदन संस्कार से संस्कृत पारद को मिलाकर जल के साथ तीन दिन तक खूब घोटे–

जीर्णाभ्रकं तथा बीजं जीर्णसूतं तथैव च।
नैर्मल्यार्थं हि सूतस्य खल्वे घृत्वा विमर्दयेत्।।

ग्रह्णाति निर्मलो रागान् ग्रासे ग्रासे विमर्दितः।
मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत् सूतगुणकृद्भवेत्।।

(र.र.समु.)

अर्थात– उपर्युक्त विधि से तीन दिन तक मर्दन करने के पश्चात पारद को निर्मल होने के लिये जीर्ण, अभ्रक, भस्म बीज, स्वर्ण भस्म और रजत भस्म तथा जीर्ण पारद ये तीनों पृथक पृथक पारद की अपेक्षा षोडशांश मात्रा में लेकर क्रमशः पारद के साथ खल्व में डालकर घोटना चाहिए। इस तरह ज्यों-ज्यों पारद उपर्युक्त अभ्रक़ादिकों का ग्रास करता है त्यों-त्यों उसमें उत्तरोत्तर गुण वृद्धि तथा सुन्दर रंग उत्पन्न होंगे, इस प्रकार मर्दन संस्कार से पारद के अन्दर अनेक शरीर के लिये हितकारक गुण उत्पन्न होते है। अन्यच्च

इष्टिकाचूर्णचूर्णाभ्यामादौ मर्द्यो रसस्ततः।
दध्ना गुडेन सिंधूत्थराजिकागृहधूमकैः।।

(वै.क.,वा.वृ.श.क,र.र.स.,र.रा.प.,)

अर्थात– प्रथम ईंट का चूरा और चूने से पारद को मर्दन करें उसके बाद सैंधव, राई, गुड़, घर का धूंआ, और दही के साथ मर्दन करें, अन्यच्च–

गृहधूमेष्टिकाजाजीदग्धोर्णागुड़सैन्धवैः ।
सकाञ्जिकैः षोडशांशैर्मर्दनं त्रिदिनं शुभम्।।

(रसेन्द्र सार संग्रह)

अर्थात– घर का धूंआँ, ईट का चूरा, राई, ऊन की भस्म, गुड़, सैन्धव ये प्रत्येक पारद से सोलहवां भाग लेकर कांजी के साथ पारद को तीन दिन भली भाँति मर्दन करें, और

स्नुह्यर्कोन्मत्तकन्याभिस्त्रिफल चयाश्वित्रकेण च ।
लवणेन समं सूतं मर्दयेन्मूर्छनौषधैः।।

(र.प.)

अर्थात– थूहर का दूध, आक का दूध, घीकुमारी (ग्वालपाठा) त्रिफला, चित्रक और नमक इन औषधियों के साथ पारद को मर्दन करना चाहिए। और

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्वृहतीविमिश्रितैः।
फलत्रिकेणापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सर्वमलैर्विमुच्यते ।।

(वै.क.द्र.वाच.वृ,र.रा.सुं,नि.र.श.क.)

अर्थात– घी कुमारी, चित्रक, लालसरसों, कटेरी की जड़ और त्रिफला इनके किये हुए क्वाथ से तीन दिन पारद को मर्दन करे तो सम्पूर्ण मलो से मुक्त हो जाता है।

तप्त खल्व में मर्दन करना

युक्तं सर्वस्य सूतस्य तप्तखल्वे विमर्दनम्।।

(र.मं. कामरत्न, र.रा.प.)

अर्थात– समस्त प्रकार के पारद का तप्त खल्व में मर्दन करना चाहिए अन्यथा फल की सिद्धि नहीं होती है।

जैसे भी सम्भव हो सके पारद पर निम्बुकादि अम्लिय औषध गुणों के रस छोड़ता हुआ तप्त खरल में यत्नपूर्वक मर्दन करने से पारद शीघ्र ही कार्योपयोगी होता है, तथा अग्नि स्थाई गुण से युक्त भी होता है। जो विद्वान पारद का मर्दन संस्कार आक थूहर, धतूर, कटेली, निम्बुकादि के रसो में पारद का मर्दन ऊष्ण खल में करता हुआ एक सप्ताह तक आलस्य रहित होकर कार्य करे तो निश्चय ही पारद मलों को त्याग कर निर्मल स्वरूप वाला तेजस्वी अग्नि को सहन करने वाला हो जाता है। अर्थात अग्नि में शीघ्रता से नहीं उड़ता अनूभूत रूप से मैंने पारद को इस मर्दन संस्कार को करके देखा है। अतः संशय करना व्यर्थ है।

शरद ऋतु के मौसम में पोखर तालाबादि में भरे जलाशय के ऊपर छोटी-छोटी बुंदकीदार एक बूंटी पैदा हो जाती हैं जो पानी के ऊपर छितरा जाती हैं। उसके रस में पारद का मर्दन करने से पारद शीघ्र ही छिन्नपक्ष होकर नष्टपिष्ट हो जाता है। फिर खुश्क होकर (निरन्तर खरल करने से) पुनः जीवित होकर इकट्टा हो जाता है ऐसा सात बार दोहराने पर पारद सभी मल दोषों को त्याग कर निर्मल हो जाता है; इसमें संशय करना व्यर्थ है मेरा स्वयं का अनूभूत है।

मूर्च्छन संस्कार

स्वर्जिका यावशूकश्च तथा च पटुपंचकम्।
अम्लौषधानि सर्वाणि सूतेन सह मर्दयेत्।।
खल्वे दिनत्रयं तावद्यावन्नष्टत्वमाप्नुयात्।
स्वरूपस्य विनाशेन मूर्च्छनं तदिहोच्यते।।
निर्मलत्वमवाप्नोति ग्रंथिभेदश्च जायते।।

(ध.स.)

अर्थात– सज्जीखार, जबाखार, पॉचोनोंन और सम्पूर्ण अम्ल औषधियों को पारद के साथ खरल में डालकर तीन दिनों तक खूब घोटे जोकि घोटते घोटते पारद नष्ट पिष्ट हो जाय बस इसी को मूर्च्छन संस्कार कहते हैं। यहाँ पर मूर्च्छन का यह लक्षण है कि पारद अपने स्वरूप में स्थित न रहे। और किसी प्रकार की गांठ भी न रहकर निर्मल हो जाय। और

गृहकन्या मलं हन्यात् त्रिफला वहिन नाशिनी।
चित्रमूलं विषं हन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः।।

(र.र.समु.)

पारद को घृतकुमारी (ग्वाल पाठा) के रस (मज्जा) के साथ खल्व में सात दिन तक घोटने से मल दोष दूर होता है; त्रिफला तथा कांजी पानी के साथ पारे को सात दिन घोटने पर उसका वह्नि दोष दूर होता है, तथा चित्रक मूल के चूर्ण के साथ या स्वरस के साथ

सात दिन तक घोटने से विष दोष दूर होता है।

इस प्रकार पारद को उपर्युक्त द्रव्यो के साथ मिलाकर भाती-भांति पृथक पृथक घोटने से वह मूर्च्छित हो जाता है। तथा उसके सर्व दोष विशेष करके मलदोष वह्निदोष विषदोष नष्ट हो जाते हैं।

मलशिखिविषाभिधाना रसस्य नैसर्गिकास्त्रयो दोषाः।
मूर्च्छां मलेन कुरुते शिखिना दाहं विशषेण मृत्युं च।।
गृहकन्या हरति मलं त्रिफलाग्निं चित्रकश्च विषम्।
तस्मादेभिर्मिश्रैर्वारान्सप्त मूर्च्छयेत्सूतम्।।

अर्थात- मल, शिखि (अग्नि) और विष ये तीनो पारद के स्वभाविक दोष है, मल दोष मूर्च्छा को वाह्निदोष दाह को तथा विष दोष मृत्यु को करता है और उनके नाश हो जाने पर अर्थात नाश करने वाली घीग्वार (घीकुमारी) त्रिफला तथा चित्रक का मूल ये औषधि हैं इस कारण इन तीनो औषधियों को मिलाकर सात बार पारद का मूर्च्छन करे। ये तीनों मुख्य दोष नाशक आयुर्वेद में पारद के शोधन हेतु कही गयी है।

मूर्च्छन का रूप

कज्जलाभो यदा सूतो विहाय घनचापलम्।
दृश्यतेऽसौ तदा ज्ञेयो मूर्च्छितः सूतराड् बुधैः।।

(धं.ध.स.)

पारद घन और चपलता को छोड़कर कज्जल के समान सूक्ष्म होता है तब पंडित जन इस पारद को मूर्च्छित कहते है।

त्र्यूषणं त्रिफला वन्ध्याकन्द क्षुद्राद्वयान्वितैः।
चित्रकोर्णानिशाक्षारकन्यार्ककनकद्रवेः ।।
सूतं कृतेन क्वाथेन वारान्सप्त विमर्दयेत्।
इत्यं स मूर्च्छितः सूतो जह्यात्सप्तापि कंचुकान्।।

(नि.र., शं.क.यो.र. आयु. वि., र.रा.व., वाच.वृ., क, वृ. यो.)

अर्थात- त्रिकुटा, त्रिफला, बांझककोड़ा, दोनों कटेरी, चित्रक, ऊन, हल्दी, क्षार (यवक्षार), घीग्वार, आक के पत्तों का रस तथा धत्तूरे के पत्तों का रस इनमें से रसों के व अन्य औषधियों के काढ़े के साथ पारद को सात बार मर्दन करें इस प्रकार मूर्च्छित किया पारद सातों कंचुको से मुक्त होता है।

वायसीव्योषकन्यार्कपयोवह्नियुतं रसम्।
मर्दनान्मूर्छयेत्सूतमथवा मर्दनौषधैः।।

(र.प.)

अर्थात- वायसी (कठूमर या कौआडोडी), सोंठ, मिरच, पीपल, घीगुवार, आक का

दूध और चित्रक के साथ अथवा मर्दन की औषधियों के साथ पारद का भलीभांति मर्दन कर मूर्च्छन करे!

उत्थापन संस्कार

मूर्च्छित पारद को पुनः अपने स्वरूप में लाने की क्रिया को उत्थापन संस्कार कहा है, यथा-

मृतस्य पुनरुद्भूतिस्तत्प्रोक्तोत्थापनक्रिया।

(टोडरानन्द)

आरनालेन चोष्णेन क्षालयेत्प्रतिमर्दनम्।
रसं तत्र प्रयातं तु शोषयित्वाऽथ पातयेत्।।
गृहीत्वा प्रक्षिपेत्सूतं स्यादेवं पारदः शुचिः।।

(यो.र.)

अर्थात– मूर्च्छन संस्कार में प्रत्येक मर्दन के बाद गरम कांजी पानी के साथ पारद को धोवे, फिर चूरे में मिले अवशेष पारद को घाम में (धूप में) सुखाकर पातन करें और उसको पूर्व धोकर निकाले हुए पारद में मिला देवे तो पारद शुद्ध होता है। और

मर्दयेत्कन्यकाद्रावैश्चूर्णितै रात्रिपादिकैः।
पातयेत्पातनायंत्रे इत्युत्थापनमीरितम्।।

(रसेन्द्र सार संग्रह)

अर्थात– पारद से चौथाई हिस्सा हल्दी का चूरा तथा पारद को घीग्वार के रस में मर्दन करे, तदनंतर पातन यन्त्र से पातन करे बस इसी को उत्थापन क्रिया कहते है!

मूर्च्छन संस्कार से मूर्च्छित पारद को कांजी के साथ तप्त खल्व अथवा धूप से तापित कर मर्दन करे बाद में चोलड़ कपड़ा से छान कर जल से धो डालना चाहिए अथवा नष्ट पिष्ट पारद को खल्व में डालकर जम्बीरी निम्बू की मज्जा या रस के साथ धूपमें खरल करे तीन प्रहर तक घोटकर कपड़ा से छान कर जल से धो डालना चाहिए। अथवा मूर्च्छित पारद को दोला यन्त्र की विधि से कांजी के अन्दर एक प्रहर तक स्वेदन करके अम्ल रस से प्रक्षालित कर लेना चाहिए। यथा–

अस्माद्विरेकात्संशुद्धो रसः पात्यस्ततः परम्।
उद्धृतः काञ्जिकक्वाथात्पूतिदोषनिवृत्तये।।

पातन संस्कार

हरिद्राकोलशंपाककुमारीत्रिफलाग्निभिः ।
तंदुलीयकवर्षाभूहिंगुसैंधवमाक्षिकैः ।।
पिष्टं रसं सलवणैः सर्पाक्ष्यादिभिरेव वा।
पातयेदथवा देवि ब्रह्मघ्नीयक्षलोचनैः।।
इत्यं ह्यधोर्ध्वपातेन पतितोऽसौ यदा भवेत्।

तदा रसायने योग्यो भवेद्द्रव्यविशेषतः।।

(र.र.स. र.रा.प.)

अर्थात– हल्दी, अंकोल, अमलतास, घीग्वार, त्रिफला, चित्रक, चौलाई (मुजांत) वर्षाभू (सांठी) हींग और सैंधा नोंन इनसे अथवा लवण सहित सर्पाक्षी आदि के रस से अथवा ब्रह्मघ्नी (घीग्वार) यक्षलोचन के साथ पारद को घोटकर जब पातन करे तो पारद विशेषकर रसायन योग्य हो जाता है।

पातन संस्कार ताम्र योग से करने पर पारद में हुये वंग-नागादि दोषों का नाश शीघ्र हो जाता है। क्योंकि पारद अपने में छुपे हुए दोषो को त्याग कर उर्ध्वपातन क्रिया द्वारा अलग हो जाता है तथा पारद के दोष ताम्र के साथ निर्लिप्त रह जाते हैं। यथा–

ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वभाजने।
वंगनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः।।
शुल्वेन पातयेत्पिष्टिं त्रिधोर्ध्व सप्तधा त्वधः।।

(र.र.स., र.रा.सु. रसेन्द्रक)

अर्थात– शुद्ध ताम्र चूर्ण लेकर अथवा शुद्ध अतिसूक्ष्म पत्र लेवे, पारद तीन भाग ताम्र चूर्ण एक भाग लेवे। फिर उन्हें नींबू के रस में भली भांति घोटकर पिष्टी बनावे फिर उस पिष्टि को डमरू यन्त्र विधि से ऊर्ध्वपातन करे तो पारद नाग और वंग दोषो से मुक्त हो जाता है। पातन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए जिसमें पातन किया जाय वह ताम्र का और ऊपर का पात्र मिट्टी का होवे इस प्रकार तीन बार से लेकर सात बार तक पातन करे तो पारद शुद्ध होवे अथवा ताम्र चूर्ण और पारद से युक्त पिण्डी को मिट्टी की हण्डिका के भीतर तल में लेपकर दूसरी समान हण्डिका के मुख के साथ जोड़कर डमरू स्वरूप यन्त्र बना लेवे दोनो हण्डिकाओं की संन्धियो को भलीभांति चिकनी मिट्टी (अथवा मुलतानी मिट्टी) खडिया मिट्टी आदि से लिप्त हुई कपड़े की पट्टी से सन्धि लेप करे फिर इसे चूल्हे पर चढ़ाकर तीन से चार प्रहर तक मन्दाग्नि देवे।

मध्य में तीव्राग्नि देवें तथा ऊपर की हण्डिका को जल्दी-जल्दी भीगे पानी के कपड़े से ठण्डी रखना चाहिए नही तो पारद उड़ने का भय रहता है। इस प्रकार पारद नागवंगादि दोषो को त्याग कर ऊपर की हण्डिका के ठण्डे योग में जाकर चिपक जाता है बाद में शीतल होने पर यन्त्र विधि से बनाई हण्डिका को अलग कर ऊपर की हाण्डी में लगे पारद को पोछकर एकत्रित कर लेवें फिर गाढ़े कपड़े से छानकर ग्रहण करें। और

मयूरग्रीवताप्याभ्यां नष्टपिष्टीकृतस्य च।
यंत्रे विद्याधरे कुर्याद्रसेन्द्रस्योर्ध्वपातनम्।।

(वै.क., र रा. शं, आयु, वे.वि., वाच, वृ.मि.र.)

अर्थात– पारद तीन भाग तूतिया (नीला थोथा) और स्वर्णमाक्षिक (सोनामक्खी) दोंनो मिलाकर एक भाग लेवे फिर खरल में डालकर घीग्वार के रस से इतना घोंटे कि पारद औषधियों से पृथक न होकर एक रूप हो जाय, इस प्रकार भलीभांति नष्ट पिष्ट किये पारद

को विद्याधर यन्त्र विधि से उड़ाकर एकत्रित कर लेवे। यह पारद दोषमुक्त शुद्ध होता है।

अधः पातन

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभांडके।।
ऊर्ध्वभांडोदरं लिप्त्वा चाधोभांडे जलं क्षियेत्।
संधिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यंत्रं भुवि पूरयेत्।।
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः।
अधःपातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्मणि।।

(र.रा.सुं., र.रा.शं., र.रा.प.र.सा.प., नि.र.)

अर्थात– त्रिफला, सैंजना, चित्रक, सैंधव राई इनसे पारद की नष्टपिष्टी करके ऊपर के बासन में लेपकर देवे और नीचे के बासन में जलभर देवें फिर दोनों की संधि को कपरोटी से लहेस करके यन्त्र को धरती में गाढ़ देवे अर्थात जल भरा बासन धरती में रहना चाहिए और पारद औषधि चूर्ण से लेप किया गया बासन ऊपर रहता है; उस पर ऊपर से उपले आदि की आंच देवे तो पारद नीचे के जल भरे बासन में गिर जाता है; सिद्धो ने इसी को अधः पातन कहा है। और

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः ।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभाजनम्।।
ततो दीप्तैरधः पातमुपपलैस्तत्र कारयेत्।
यंत्रे भूघरसंज्ञे तू ततः सूतो विशुध्यति।।

(आ.वे.बि., वै.क.द्र, र.र.स., ध.ध.सं.)

अर्थात– त्रिफला, सैंजना, चित्रक, लवण राई इनसे पारद की नष्ट पिष्टी करके ऊपर के बासन में लेपकर फिर भूघर यन्त्र में जले हुए उपलो से अधः पातन करे तो पारद शुद्ध होता है।

तिर्य्यकपातन

धान्याभ्रं च रसं तुल्ये मर्दयेदारनालकैः।
नष्टपिष्टस्तु तत्पात्यस्तिर्यग्यन्त्रे दृढाग्निना।।

(र. रत्नाकर, र.प.)

अर्थात– पारद के बराबर धान्याभ्रक को लेकर कांजी के साथ पिष्टी बनावे (खूब मर्दन करे) जब पारद नष्ट-पिष्ट हो जावे, तब तिर्यक् यन्त्र द्वारा पारद का पातन कर लेवे।

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम्।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा तन्मुखं रोधयेत्सूधीः।।
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत्।

तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः।।

(टो.ना.द. रसार्णव. ध.स.)

अर्थात– एक बड़ा घड़ा लेकर उसमें पारद भर देवे उसी प्रकार दूसरे घड़े में जल भर देवे, फिर विधिपूर्वक तिरछे रखकर दोनो के मुख को मिलाकर कपरोटी से बन्द कर देवे फिर पारे वाले घड़े के नीचे अग्नि जलावे जब तक कि पारद जल वाले घड़े में न आ जावे इसकों नागार्जुनादिसिद्ध तिर्यक्पातन संस्कार कहते हैं। इसमें जल और पारद वाले घड़े मध्य के एक नलिका द्वारा सम्बन्ध स्थापित कर दृढ़ मुद्रा करनी होती है। जिसके माध्यम से पारद तापित घड़े से जल वाले घड़े में उड़कर आता है।

रोधन संस्कार

मर्दन, मूर्छन, और पातन से पारद के मृतावस्था के निकट आने से पुनः पारद शक्ति की उत्कर्षता करने के निमित्त रोधन आवश्यक होता है। अतः गुरु मार्ग द्वारा पारद का रोधन करे। यथा–

मर्दनैर्मूर्च्छनैः पातैर्मरणांतो भवेद्रसः।
शक्त्युत्कर्षाय बोध्योऽसौ गुरुदर्शितवर्त्मना।।

(र.प., नि.र., र.स.व.)

मर्दनादिं संस्कारों के पश्चात पारद में एक प्रकार की नपुंसकता आ जाती है अतएव पारद के बल को बढ़ाने के लिये सैंधव चूर्ण में दौलायन्त्र विधि से पारद का स्वेदन करें। यथा–

कदर्थनेनैव नपुंसकत्वं प्रादुर्भवेदस्य रसस्य पश्चात्।
बलप्रकर्षाय च दोलिकायां स्वेद्यो जले सैंधवचूर्णगर्भे।।

(र.सा.प., नि,र.)

और

लवणेनाम्लपिष्टेन हंडिकांतर्गतं रसम्।
आच्छाद्याम्लजलं किंचित्क्षित्वा स्त्रावेण रोधयेत्।।
उर्ध्वं लघुपुटं देयं लब्धश्वासो भवेद्रसः।।

(रसेन्द्रचि., र.रा.शं, वृ०यो०, र.रा.प., नि.र.)

अर्थात– एक हाण्डी में पारद को रखकर और उसके ऊपर निंबूआदि से पिसे हुए नोन को रखे उसके बाद कुछ जल डालकर हाण्डी का मुख बंद कर कपरोटी कर देवे, फिर उसे ऊपर से लघुपुट की अग्नि (मन्द आंच) जलावे तो पारद बलिष्ट होता है। रोधन एवं बोधन दोनो ही संस्कारों के नाम से पारद को शक्तिशाली बनाया जाता है। इसमें मुख्यतः क्षार अम्लवर्ग और नमक का प्रयोग पारद के साथ स्वेदन करने से दोलायन्त्र आदि विधि द्वारा अथवा इन औषधियों के साथ पारद को घड़े में भलीभांति बन्दकर इक्कीस दिन तक तीव्र धूप में तापित करें अथवा धान्य भूसी आदि तिनको से घड़ा को तापित करें।

जल का प्रयोग अनुमानित मात्रा में वैद्य यत्न पूर्वक करें तो संस्कार उत्तम होता है तथा पारद बलशाली होकर कार्योपयोगी होकर सिद्धि देता है।

अथवा कूपिकामध्ये सूतं सैंधवसंयुतम्।
भूगर्भे च ततः स्थाप्य एकविंशदिनावधि।।

(ध.सं.)

अर्थात– अथवा कांच की शीशी में सैंधा नमक और पारद को भरकर धरती में इक्कीस दिन तक गाड़देवे तो पारद वीर्यवान होता है।

नियमन संस्कार

पारद में नियमन संस्कार पारद की चपलता को शान्त करने के विधि योगो को करना होता है। निरोधन संस्कार से पारद वीर्यवान होता है परन्तु उसकी चपलता दूर नहीं होती इस कारण चपलता को दूर करने के लिये रोधन के पश्चात नागफणी लहसन, नोंन, भांगरा (भृगराज) और बांझककोड़ा और इमली के क्वाथ में तीन दिन स्वेदन करें। यथा–

इति लब्धवीर्यः सम्यक् चपलोऽसौ नियम्यते तदनु।
फणिलशुनाम्बुजमार्कवकर्कोटीचिंचिकास्वेदात् ।।

(रस हृदय, ध.सं., र.रा.प.)

और

सर्पाक्षीचिञ्चिकावन्ध्याभृंगाव्दकनकाम्बुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात्स्थिरतां व्रजेत्।।

(र.रा.सुं., वृ०यो., आ.वे.मि., र.रा.प., र.सा.प., नि.र.)

अर्थात– सर्पाक्षी (सरहटी) इमली, बांझ ककोड़ा, भांगरा, नागरमोथा; धत्तूर और नोन इन सबको कांजी में पीसे फिर उसमें एक दिवस पारद का स्वेदन करे तो इस नियम से पारद स्थिर होता है।

दीपन संस्कार

दीपन संस्कार से पारद का यह लक्षण है कि उपर्युक्त संस्कारो के बाद दीपन क्रिया द्वारा पारद तीव्र वेगकारी, व्यापक, बुभुक्षित और विशेषकर निर्मल होता है। यथा–

तीव्रत्वं वेगकारित्वं व्यापकत्वं बुभुक्षितम्।
निर्मलत्वं विशेषेण कृते दीपनकर्मणि।।

(र.प्र.सु.)

दीपन संस्कार में पारद में औषधि विशेषगुण विधान से शुद्ध करने से वह भूखा (बुभुक्षित) रूप को धारण करता है, तब स्वर्णादिक धातुओं को शीघ्र ग्रास कर (अपने में आत्मसात कर) जरा व्याधि के नाशार्थ उत्तम रसौषधि की कल्पना से ही इस दीपन

संस्कार की क्रिया का विधान है। क्योंकि जब तक पारद संस्कारो द्वारा बुभुक्षिततत्व को प्राप्त नही होता है, तब तक उसको संस्कारित कहना जहाँ तक में समझता हूँ उपयुक्त नही होगा; वो इसलिये कि बुभुक्षित (भूखा) पारद ही विशेष गुण प्रभाव शाली होकर सक्रिय रूप से उत्तम फलों को प्राप्त करता है।

त्रिक्षारं पंचलवणं भूखगं शिग्रुमूलकम्।
स्वर्णपुष्पी च काशीशं मरिचं राजिका मधु।।

क्षीरकंदं जया कन्या विजया गिरिकर्णिका।
काकजंघा शंखपुष्पी पातालगरुडी कणा।।

वंध्याकर्कोटकी वह्निर्व्यस्तं वाथ समस्तकम्।
पेषयेदम्लवर्गेण तेनैव मर्दयेद्दिनम्।।

दिनान्ते बंधयेद्वस्त्रे दोलायन्त्रे त्र्यहं पचेत्।
पूर्वद्रावैर्घटे पूर्णे पूर्णग्रासार्थि जायते।।

(र.प.)

अर्थात - त्रिक्षार- (सुहागा, जबाखार, सज्जीखार) पांचो नोन, फिटकरी, कसीस, सैंजने की जड़, स्वर्णपुष्पी, केतकी, मिर्च, शहद, क्षीरकंद- (विदारी) अग्निमंथ, (अरणी) घीग्वार, जयन्ती, गिरकर्णिका (विष्णुकान्ता), काकजंघा (मसी, कौआठोडी) शंखहूली, पाताल गरुड़ी (छिरछिटा), पीपल, बांझ ककोड़ा, चित्रक इनको यथा लाभ लेकर पारद के साथ एक दिन कांजी में पीसे फिर वस्त्र में पोटली बांधकर पूर्वोक्त औषधियों के रसों से भरे हुए घड़े में दोला यन्त्र द्वारा तीन दिवस तक पकावे तो पारद बुभुक्षित होता है।

अथवा चित्रकद्रावैः काञ्जिके त्रिदिनं पचेत्।
ततः सपावकद्रावैः स्विन्नः स्यादतिदीप्तवान्।।
अथवा चित्रकद्रावैः काञ्जिकेन दिनं पचेत्।
दीपनं जायते तस्य रसराजस्य चोत्तमम्।।

(वै.क.द्रु., र.चिं., वृ०यो., आ.वे.वि., र.रा.प., सा.प., र.रा.शं, जि.र.)

अर्थात- अथवा चित्रक के रस तथा कांजी में पारद को तीन दिन स्वेदन करे तो पारा दीप्त होता है इसी प्रक्रिया को वैद्यकल्पद्रुम, रसराजशंकर, रसपद्धति और निघंटुरत्नाकर ने भी कहा है।

शुद्धरसस्य मुखकरणम्

अर्कस्नीहुडधत्तूरलांगलीकरवीरकाः ।
गुञ्जाहिफेना चेत्येताः सप्तोपविषजातयः।।
एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षः प्रजायते।
मुखं च जायते तस्य धातूंश्व ग्रसते द्रुतम्।।

(यो.चि.म.)

आक, थूहर, धत्तूरा, कलिहारी रूखड़ी (लांगली), कनेर, चिरमिटी, (चौंटनी, गुञ्जा) अफीम, ये सात विष की उपजाति है, हन करके पारद को मर्दन करे तो छिन्न पक्ष हो जाये, और पारे के मुख होय (वुभुक्षित) सम्पूर्ण धातुओं को शीघ्र ग्रस जाय।

अथवा

कटुकः सर्जिका क्षारो राजी लवणपञ्चकम्।
रसोना नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णयेत्।।
समांशै पारदौदेतैर्जम्बीरेण द्रवेण वा।
निम्बुतोये काञ्जिकैर्वा सोष्णखल्वे विमर्दयेत्।।
अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे सुरुचिरं मुखम्।।

(यो.चि.म.)

सोंठ, मिरच, पीपल, सज्जी, जवाखार, राई, पांचो नमक, लहसन, नौसादर, सहँजना इनका चूर्ण कर तीन दिन मर्दन करने से पारद के मुख होता है इसमें संन्देह नही।

इस प्रकार विधि विधान सहित अष्ट संस्कारो को पूर्ण करने से पारद कार्योपयोगी होकर हितकारक होता है। जो विधि विधान सहित पारद संस्कारो को नहीं करता ऐसा सिद्धकर्ता लाभ की अपेक्षा हानि उठाता है तथा विधिविधान से रहित संस्कार करने से पारद अशुद्ध रहकर देह का नाश कर देता है अतः पारद की शुद्धि में पूर्णतया गुरु उपदेशों के द्वारा विधिवत संस्कारों को पूर्ण करना आवश्यक है। ये अष्टविध संस्कार पारद शोधन के लिये प्राच्य रस तन्त्रों में भी अनेक रूपो में वर्णित पर्याप्त रूप से देखे गये है। यथा–

सूतस्यैते तु संस्काराः कथिता देहकर्मणि।
तथा च दश संस्कारा देहलोहकराः स्मृता।।

शरीर को निरोग रखने के लिये ये आठ संस्कार पारद के है; और शेष दस संस्कार रसायन के लिये कहे गए है; जिनका सम्बन्ध स्वर्णादिक निर्माण क्रियाओं से लेकर शरीर को जराव्याधि मुक्तकर अजर अमर की कल्पना से किये जाते है।

नवम ग्रास मान संस्कार

इस संस्कार में अष्ट संस्कारो से वुभुक्षित गुण युक्त पारद में अभ्रकादि का ग्रास मान कहा है; यथा–

पंचभिरेभिर्ग्रासैर्धनसत्त्वं जारयित्वाऽऽदौ।
नर्भद्रावे निपुणो जरयति बीजं कलांशेन।।
तन्मते चतुःषष्टिचत्वारिंशंत्रिंशद्विंशतिषोडशांशाः पञ्च ग्रासाः।।

(र.चि., नि.र., र.रा..श., वृ०यो०, र.रा.प.)

अर्थात– प्रथम पांच ग्रासो से अभ्रक सत्व को जारण करके फिर गर्भ द्रुति में (चतुर) निपुण षोडशांश से स्वर्ण को जारण करे इस मत से चौसठवां, चालीसवां और तीसवां बीसवां तथा सोलहवां इस प्रकार पांच ग्रास समझने चाहिए।

अभ्रक जारित पारद लक्षण

चतुष्षष्टचंशकाद् ग्रासाद् दंडधारी भवेद्रसः।
जलौकावद् द्वितीये तू तृतीये काकविट्समः।
ग्रासेन च चतुर्थेन दधिमंडसमो भवेत्।।

चौसठवें हिस्से के जारण करने पर पारद दंडधारी होता है और द्वितीय ग्रास में जोंक के समान तीसरे ग्रास में कौवे की बीट के जैसा और चौथे ग्रास में दधिमंड के समान होता है।

इस प्रकार पारद के ग्रास मान शास्त्रोक्त वर्णित मिलते हैं। जिनमें पारद बद्ध क्रियाओं का स्वरूप मिलता है तथा बीज रूप साधनो के द्वारा पारद में जारण करके पारद को वेध क्रियाओं की दृष्टि से लक्ष्यबेधी रूप से सिद्ध करना होता है। यथा–

बंगाभं वाहयेत्तारे गुणानि द्वादशानि च।
एतद्बीजं समे जीर्णे शतवेधी भवेद्रसः।।

(र.चि.रा.शं, वृ.यो.,)

एक भाग चाँदी में बारहभाग वंग और अभ्रक सत्व को गलाकर मिलावे, फिर सम भाग से इस बीज को पारद में जारित करे तो यह पारद शतबेधी होता है।

सैंधवं गंधकं तुल्यं ताम्रवल्लीद्रवैः प्लुतम्।
अनेन विडयोगेन गगनं ग्रसते रसः।।

(र.प.)

गन्धक और सैन्धव लवण को समान भाग लेकर मंजीठ के रस से भावना देवे तो इस विड के योग से पारद अभ्रक को ग्रस लेता है।

चारण संस्कार

इस चारण संस्कार में निर्मुख और सम्मुख आदि अनेक महायोग है अभ्रक जीर्ण होने से पारद बलवान होता है इस कारण अभ्रक चारण के लिये संधान तथा वासना के योग्य औषधियों से निर्मुख और सम्मुख आदि अनेक महायोगों का वर्णन प्राच्य रस ग्रन्थो में किया गया है। यथा–

यवाख्या कदली शिग्रु चिंचाफलं पुनर्नवा।
शतमूली रसैरभ्रं भावितं मुनिसंख्यया।।
तद्भागं रसराजोऽसौ सुखं भुंक्ते वरे मुखे।
संजाते देहसिद्धचर्थं धातुसिद्धचर्थमेव हि।।

(रस पारिजात)

अर्थात– जवाखार, केला, सैंजना, इमली, सोंठ, शतावर इनके रस से सात बार अभ्रक को भावना देवे तो उस अभ्रक चूर्ण को मुख होने पर पारद अच्छी तरह खाता है और उससे देह तथा धातु की सिद्धि अच्छी प्रकार होती है।

गगनी निर्मुख चारण क्रिया

तिलपर्णीरसं नीत्वा गगनं तेन भावयेत्।
मर्दनाज्जायते पिष्टी नात्र कार्या विचारणा।।

(ध. सं.)

तिलपर्णी के रस को निकालकर उससे अभ्रक को भावना देवे, तो उस भावना दिए हुए अभ्रक तथा पारद के मर्दन करने से पिष्टी तैयार होती हैं इसमें जरा भी विचार करना उचित नही है।

समुख में अभ्रचारण

त्रिटिशो दत्त्वा मृदितं सोष्णो खल्वोभ्रहेमलोहादि।
चरति रसेन्द्रः क्षितिखगवेतसजम्बीरबीजपूराद्यैः।।

(र. चि., नि. र., र. रा. शं., र. सा. प.)

अर्थात– जिस पारद के मुख हो गया है उसको तप्त खल्व में गेरकर अभ्रक स्वर्ण और लोहा इनमें से जिसका जारण करना हो उसको थोड़ा थोड़ा गेर कर मर्दन करे और मर्दन के समय फिटकरी, सुहागा, जम्बीरी का रस भी थोड़ा-थोड़ा डालते जावे तो पारद उन धातुओं को अवश्य ही खा लेगा (चर लेगा) ऐसा करने से पारद उन धातुओ को आत्म सात कर गाढ़ा होने लगता है। मैंने अपने कितने ही प्रयोगों में ताम्रादि धात्व योगों से आत्मसात हुए पारद की गुटिकाओं का निर्माण करके देखा है।

गर्भद्रुति संस्कार

गर्भद्रुति में धातुओं का चारण कर पारद आत्मसात रूप से उन्हें अपने स्वरूप ही कर लेता है; अर्थात बिना अग्नि के भी धातुओं का स्वरूप पारद जैसा ही होकर द्रवित रूप हो जाता है। ऐसा गर्भद्रुति संस्कार को प्राप्त हुआ पारद मैंने स्वयम् सिद्ध कर देखा है। अतः इसमें संशय करना व्यर्थ है। गर्भद्रुति लक्षण का स्वरूप। यथा–

वह्निव्यतिरेकेपि रसग्रासीकृतानां लोहानां द्रवत्वं गर्भद्रुतिः गर्भद्रुतिमंतरेण जारणैव न स्यात्।। *(र.चि., र.रा., शं., वृ.यो.)*

अर्थात– ग्रास दिए हुए समस्त धातुओं का अग्नि संयोग के बिना ही जो द्रव हो जाता है; उसको गर्भद्रुति कहते हैं। जो कि उसको गर्भद्रुति के बिना जारण नहीं होता है। अथवा–

ग्रस्तस्य द्रावणं गर्भद्रुतिरुदाहता।

(र.र.स.)

अर्थात ग्रास दिये हुए का जो गर्भ में ही गलाना हो उसको गर्भद्रुति कहते हैं। अभ्रसत्त्व को गर्भद्रावी होने के निमित्त ताम्र और माक्षिक को मिलावे। यथा–

कमलधनमाक्षिकाणां चूर्णं समभागयोजनमिति।
तच्छुद्धाभ्रं शीघ्रं चरति रसेन्द्रो द्रवति गर्भे च।।

(र.चिं., र.प.)

अर्थात- समभाग एकत्रित किये हुए ताम्र अभ्रक और सोनामाखी ये पारद में शीघ्र ही मिल जाते है। और वह पारद शुद्ध अभ्रक को शीघ्र खा जाता है। और वह अभ्रक पारद के गर्भ में द्रव भी शीघ्र हो जाता है।

बीजानां संस्कारः कर्त्तव्यस्ताप्यसत्त्वसंयोगात्।
तेन द्रवति गर्भे रसराजस्याम्लवर्गयोगेन।।

(र.चि. नि.र., र.रा.शं. वृ.यो.)

अर्थात- ताप्यसत्व (सोना मक्खी का सत्व) के संयोग से समस्त बीजों का संस्कार उत्तम है। क्योंकि ऐसा करने से बीज अम्ल वर्ग के योग से पारद के गर्भ में ही द्रव हो जाते है।

शुद्धं माक्षिकचूर्णं निर्व्यूढं यच्छत गुणं हेम्रि।
तद्धेम चरति सूतो द्रवति च गर्भे रसस्य तुल्यांशम्।।

(ध. सं.)

अर्थात- जिस स्वर्ण में सौगुने शुद्ध सोनामाखी का चूर्ण मिलाया जाता है उस स्वर्ण को पारद समान भाग से चरता है। और वह गर्भ में ही द्रव हो जाता है।

इस प्रकार प्राच्य रस ग्रन्थों में अनेक गर्भ द्रुतियों का वर्णन मिलता है। जिनका मुख्य ध्येय गर्भद्रुति क्रिया विशेष द्वारा पारद की जारणा करना है। इस प्रकार पारद में युक्ति पूर्वक गर्भ द्रुति कर जारणा करने वाला चतुर (वैद्य) अभीष्ट फल की प्राप्ति के स्वरूप अपना कार्य निश्चय ही सिद्ध कर लेता है;

मैंने स्वयम भी विशेष प्रयोगात्मक स्वरूपों द्वारा पारद में ताम्र गर्भद्रुति क्रिया को सिद्ध कर फिर पारद में गर्भ द्रुति भाव को पैदा हुए ताम्र का अग्नि में जारण कर विशिष्ट रसौषध के रूप रस की प्राप्ति कर आयुर्वेद के क्षेत्र में ऐसा अभूतपूर्व कार्य सिद्ध कर लिया है जो उत्तम स्वास्थ के प्रति अतिशय मंगलकारी सिद्ध हुआ है। इस प्रकार इन गर्भ द्रुतियों द्वारा पारद के संयोग से जारित और भी अनेक विशिष्ट रसों को प्राप्त करना सम्भव है। जो आयुर्वेद के क्षेत्र में एक नई दिशा के रूप में निकट भविष्य में उघर कर सामने आ सकते हैं।

बाह्यद्रुति संस्कार

अभ्रक जारण के लिये कठिन पदार्थ और अभ्रक सत्त्वादि की बाहिर की ही द्रुति करे बस इसी को बाह्यद्रुति कहते है। यथा-

बहिरेव द्रुतीकृत्य धनसत्त्वादिकं खलु।
जारणाय रसेन्द्रस्य सा बाह्यद्रुतिरुच्यते।।

(र. र. स.)

बाह्यद्रुति संस्कार भेद से जो - इसका शास्त्रो में वर्णन हुआ है वह अति दुर्लभ कार्य के रूप में देखा गया है; क्योंकि इस क्रिया भेद में धात्वादि कठिन द्रव्यों को क्रिया विशेष द्वारा द्रुति कराना अर्थात उन्हें पारद की ही भांति धात्व जल रूप कराकर आसानी के साथ पारद में उसका प्रवेश कराना है। इस प्रकार द्रव्यों की बाह्यद्रुति क्रिया हो जाने से उनके सम्पर्क से पारद का बन्धन निश्चय रूप से हो जाता है। क्योंकि आरोटरूप में अपने समभाग से पारद को बांध देती है फिर इस बद्धपारद के भक्षण का फल कल्पपर्यन्त जीवित रहना माना गया है। यथा-

एतास्तु केवलमारोटमेव मिलितानि बर्ध्नंति फलमस्य कल्पप्रमितमायुः।
किं पूर्वोक्तग्रासकमजारितातः पूर्वोक्तफलप्रदा भवन्ति।।

(र.चि., र.रा.शं, द्रु.यो.)

द्रुतयोऽपि न सिध्यन्ति शास्त्रे दृष्टा अपि ध्रुवम्।
बिना शंभोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन।।

(र.रा.शं.)

अर्थात- शास्त्र में देखी हुई भी द्रुतियां श्री महादेव की कृपा के बिना कदापि सिद्ध नही होती अतः महादेव की कृपा का फल प्राप्त होना आवश्यक माना गया है। फिर भी कुछ शास्त्रोक्त द्रुति क्रियाओं का वर्णन करना मैं उचित समझता हूँ।

समांशं सुरगोपस्य सुरदाल्याश्च तद्रजः।
आवापान् कुरूते देवि! कनकंजलसन्निधम्।।

(रसार्णव)

इन्द्रगोप (वीरबहूटी) तथा सुरदाली (घघरबेल, सनैय) समभाग इन सबो का चूर्ण प्रक्षेप करने (प्रक्षेप कर तपाने) से स्वर्ण जल के समान द्रव हो जाता है।

अभ्रक द्रुति

स्वरसेन वज्रवल्ल्याः पिष्टं सौवर्चलान्वितं गगनम्।
पक्वं शराबसम्पुटे बहुवारं भवति रसरूपम्।।

(र.रा.सु.)

अर्थात- अभ्रक में सांचरनोंन डालकर वज्रवल्ली (हडसधारी, हड़जोड़) के रस में भावना देवे फिर शराब सम्पुट में रखकर गजपुट में फूंके इस प्रकार कई बार पुट देवे तो अभ्रक की द्रुति हो जायेगी।

मण्डूकास्थिवसाटङ्कहयलालेन्द्रगोपकैः ।
प्रतिवापेन कनकं सुचिरं तिष्ठति द्रुतम्।।

(रसार्णव)

मण्डूक (मेढ़क) की अस्थि तथा वसा टंकण हयलाला (घोड़े की लार) तथा वीर बहुटी इन सबो का प्रतिवाप (प्रक्षेप) करने से कनक (स्वर्ण) द्रवीभूत होकर बहुत देर तक

ठहरता है।

अर्कापामार्गमुसली निचुलं चित्रकं तथा।
कदली प्रोतकी दाली क्षारमेषां तू साधयेत्।।
गालयेन्माहिषे मूत्रे षड्वारान् सुरवन्दिते।
आवापाद्द्रावयदेतदभ्रसत्त्वादिजं रजः।।
दन्तीदन्तो विशेषेण द्रावयेत् सलिलं यथा।।

(रसार्णव)

मदार, अपामार्ग, मूसली, बड़हर, चित्रक, केला, पोतकी (पोई शाक) तथा दाली (देवदाली-घघरबेल) इन सबो का क्षार बनावे और भैंस के मूत्र में छः बार मिलावे। हे सुर वन्दिते, इसके बाद यह आवाप- (प्रक्षेप) करने से अभ्रक सत्व आदि चूर्ण को द्रव बना देता है विशेषकर इसका आवाप (प्रक्षेप) हाथी के दांत को जल की तरह द्रव बना देता है।

रसेनोत्तरवारुण्या प्लुतं वैक्रान्तजं रजः।
प्रतिवापेन लोहानि द्रावयेत् सलिलोपमम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- इन्द्रवारुणी के रस से भावित वैक्रान्त का चूर्ण प्रतिवाप (प्रक्षेप) करने से सभी लोहों को द्रव बना देता है।

अभ्रक द्रुति अंधमूसा में

कर्कोटीफलचूर्णं तू मित्रपंचकसंयुतम्।
तत्तुल्यं चैव धान्याभ्रमम्लैर्मर्धदिनावधि।।
अंधमूषागतं ध्मातं तदद्रुतिर्भवति ध्रुवम्।।

(र. रा. सुं.)

अर्थात- बांझ ककोड़े के फल का चूर्ण और शहद, घी, गूगल, सुहागा इनके तुल्य धान्याभ्रक को मिलाकर तीन दिन तक पीसे फिर उसको अंधमूसा में रखकर कोयलो में धोंके तो अभ्रक की पारद के समान तरल द्रुति होती है।

लौह द्रावण

लौहतीक्ष्णचूर्णं तु सप्ताहं पक्त्वा धात्रीफलद्रवैः।
लोलितं भावयेद् घर्मे क्षीरकंदद्रवैः पुनः।।
सप्ताहं भावितं सम्यक् स्रावसंपुटके ततः।
धमितं द्रवतां याति चिरं तिष्ठति सूतवत्।।

अर्थात- शुद्ध लोहे के चूर्ण को ऑवले के रस में सात दिन पकाकर घाम (धूप) में सुखा लेवे फिर क्षीरकंद के रस में सात दिन भिगोकर घाम (धूप) में सुखावे बाद में मूसा

में रख अग्नि के मध्य धोंके तो बहुत दिन तक पारद के समान द्रव रूप होता है।

ताम्रद्रुति

लवणक्षारमूत्राणि क्षाराश्चौषधसंभवाः।
एषां क्षारसमस्तेषामौषधीकंदसंभवाः।।
यच्चान्यद्रावकं कल्पफलत्रयकटुत्रयम्।
कुलत्थक्वाथतोयं च सर्वं मृद्वग्निना पचेत्।।
गालयेद्वस्त्रयोगेन पुनः पाकं च कारयेत्।
तेनैव भावयेच्चैवं शुद्धं शुल्वस्य चूर्णकम्।।
एकविंशतिवारं च भावयित्वा विशोषयेत्।
लादिमध्ये तु भूगर्भे धान्यराशौ च भास्करे।।
सप्ताहं धारयेत्तं तु दोलायां चैव स्वेदयेत्।
एकविंशंदिने जाते शुल्वस्येव द्रुतिर्भवेत्।।
द्रुतिर्भवति शुल्वस्य रसरूपा च निर्मला।।

(र. रा. सुं.)

अर्थात- सब प्रकार के नोन सम्पूर्ण मूत्रो के खार, औषधियों के खार और इन सबके समान अनेक प्रकार के कन्दो के क्षार और द्रव कारकर पदार्थ त्रिफला, त्रिकुटा इन सबको कुलथी के काढ़े में मंदाग्नि से पचावे पीछे वस्त्र में छानकर पाक करे जब वह गाढ़ा हो जाय तब शुद्ध तांबे के चूर्ण में भावना देवे ऐसे इक्कीस बार पुट देकर सुखा लेवे पीछे लीद में धरती में, धानों के ढेर में और धूप में, सात सात दिन रखकर पूर्वोक्त दोलायन्त्र में स्वेदन करे ऐसे इक्कीस दिन करने से ताम्र की पारद के समान निर्मल द्रुति होती है।

संस्कारित पारद और ताम्र द्रुति से रविजीर्ण पारद होता है समान मात्रा में रविजीर्ण पारद का भक्षण स्थिरदेह कर दीर्घायु को प्राप्त करने का गुण रखता है। रसार्णव में रचिजीर्ण पारद के भक्षण का निर्देश मिलता है। यथा–

ब्रह्मत्वं भारस्करेण तु

(रसार्णव)

अर्थात- ताम्रजीर्ण पारद भस्म भक्षण करने से मनुष्य ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है।

विमर्श- ताम्र जीर्ण पारद को मैंने स्वयं अग्नि में धारण कर जारित किया है। जिसमें पारद के संयोग से तीव्राग्नि में धमन करने पर ताम्र विशुद्ध रस रूप में सुर्ख रंग को प्राप्त होकर खीला बन जाता है। जो कि श्लेष्मिकादि दोषदूष्य जनित विकारों को जीतने में समर्थ होकर चिरायु दाता है।

जारण संस्कार

बिना जारण क्रिया के पारद देह एवं लौह दोनों ही रूपों में किसी भी रूप से

उपयोगी सिद्ध नही होता, जो वैद्य बिना जारण क्रिया से पारद को भस्म क़रते है वे समस्त जगत को मारने का उपाय करते है तथा उस वैद्य की रस और रसायन बनाने में सिद्धि नहीं होती। लौह एवं देहोपयोगी पारद की सिद्धि जारण में जारणाओं द्वारा भस्मीभूत रूपों से सम्भव होती है, अतः इन क्रियाओं में जारण संस्कार का बड़ा महत्व है। जो चतुर (वैद्य) जारण क्रियाओं के स्वरूप को जान लेता है उसे निश्चय ही पारद सिद्धि प्राप्त होती है; अतः बीज जारण को आवश्यकता की दृष्टि से ग्रन्थकारो ने लिखा है। यथा–

रसे रसायने चापि यावद्बीजं न जारयेत्।
तावद्वृथा द्रव्यहानिं करोति ब्रह्महा भिषक्।।

(टो. न.)

जब तक रस और रसायन के लिये बीज का जारण नहीं करे तब तक वैद्य अपने धन को व्यर्थ ही व्यय करता है और ब्रह्महत्यारा कहलाता है। अभ्रक जारण की आवश्यकता को महत्व देते हुए ग्रन्थकार लिखते है–

घनरहितबीजजारणसंप्राप्तिदलादिसिद्धिकृतकृत्यः।
कृपणः प्राप्य समुद्रं वराटिकालाभसन्तुष्टः।।

(र०चि०, नि.र., र.रा; शं, वृ०यो०, र.रा.सु, र.सा.प.)

अर्थात– जो वैद्य अभ्रक जारण के बिना ही केवल बीज जारण करने से जो सिद्धि मिलती है; उससे जो वैद्य ऐसे कृतार्थ हो जाते है, जैसे कि दरिद्री लोग समुद्र के पास जाकर केवल कौड़ी के मिलने से ही सन्तुष्ट हो जाते है सो मूर्ख है।

पारद में विशेषतः आयुर्वेद के क्षेत्र में गन्धक जारण की आवश्यकता पर अधिक बल दिया गया है; इसका मुख्य कारण यह भी है अन्य द्रव्यों की अपेक्षा पारद गंधक के साथ शीघ्र ही आत्मसात हो जाता है। इसी धारणा से पूर्वाचार्यो ने पारद को शिवजी का वीर्य और गन्धक को पार्वती का रज (आर्त्तव) कहा है। तथा पारद गन्धक की अनेक जारणाओं के स्वरूप की कल्पना से, रससिद्धि को कार्योपयोगी बनाने को समभाग, दो गुणा, सात गुणा, सौ गुणा, और हजार गुणा गन्धक पारद में जारण करने को कहा है।

गंधक जारण फल

गंधकात्परतो नास्ति रसेषूपरसेषु च।
एकोपि हेमसंयुक्तः स्नेहरागकरः क्षणात्।।

(र.प.)

अर्थात्– रस और उपरसों में गन्धक के समान और कोई पदार्थ नहीं है क्योंकि सुवर्ण से मिला हुआ अकेला गन्धक ही पारद में चिकनाई तथा रंगत को शीघ्र पैदा करता है।

गुणान्तर गंधक जारण फल

तूल्ये तु गंधके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः।
द्विगुणो गंधके जीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा।
त्रिगुणे गंधके जीर्णे सर्वषांढ्यविनाशनः।।
चतुर्गुणे तत्र जीर्णे बलीपलितनाशनः।
गंधे पंचगुणे जीर्णे क्षय-क्षयकरो रसः।।
षडगुणे गंधके जीर्णे सर्वरोगहरो भवेत्।
अवश्यमित्युवाचेदं देवीं श्रीभैरवः स्वयम्।।

(बृ०यो०, र.रा.सुं., र.सा.प.मि.र., र.रा.शं.)

अर्थात- पारद समान गंधक जारण करने से पारद शुद्ध हो जाता है और वह शुद्धपारद से सौ गुना श्रेष्ठ होता है; दुगुना गन्धक जारण किया हुआ पारद सम्पूर्ण कुष्ठ रोगों को नाश करता है, और तीन गुना गंधक जारण करने से समस्त नपुंसकता का ध्वंस करता है। तथा चौगुना गंधक जारण करने से पारा त्वचा में झुर्री तथा सफेद केशो को दूर करता है अर्थात वलि-पलित नाशक होता है। और पाँच गुणे गन्धक के जारण से पारद क्षय रोग नाशक होता है। तथा छः गुने गन्धक के जारण से पारद सर्व रोग नाशक होता है इसमें कोई सन्देह नही है क्योंकि यह बात श्री महादेव जी ने पार्वती को अपने मुख से कही है। यह गुण पारद का है। ऐसा रससारपद्यति में लिखा है। तथा अनुपान तरंगिणी में भी यही उल्लेंख किया गया है। इस प्रकार पारद के साथ गन्धक जारण क्रिया का फल अनेक प्रकार से शास्त्रों में वर्णित किया गया है।

शतगुण जारण फल

अंतर्धूमविपाचितशतगुणगंधेन रंजितः सूतः।
स भवेत् सहस्रबेधी तारे ताम्रे भुजङ्गे च।।

(र.चि., र.रा.शं, र.रा.सुं, वृ.यो. र.रा.प., र.सा.प.)

अर्थात- सौ गुने गन्धक से अंतर्धूम पकाया हुआ पारा रंजित (रंगा हुआ) हुआ होता है और वह चाँदी तांबा और रांगे में सहस्र वेधी होता है जहाँ तक मेरी समझ में आता है शत गुणे गन्धक जारण से पारद वेधोपयोगी सिद्ध न होकर रोगों के नाशार्थ विशिष्ट रसायन औषधियों के रूप में अवश्य सिद्ध हो जाता है।

जीर्णे शतगुणे गंधे शतवेधी भवेद्रसः।
सहस्त्रगुणिते जीर्णे सहस्त्रांशेन वेधयेत्।।

(र.सा.प., नि.र., र.रा.शं. र.रा.सुं)

जिस पारद में सौगुणा गन्धक जारण किया जाय वह शतवेधी होता है। और जिसमें हजार गुना गंन्धक जारण किया जाय वह सहस्त्र वेधी होता है यहाँ मेरे मत से वेध क्रियाओं में ताम्र का स्वर्ण बनाने वाला सिद्ध पारद जो गन्धक की हजार गुना जारण से सुर्ख रजिंत होकर एक तोला ही अग्नि स्थायी रूप धारण करता है। अर्थात एक तोला पारद का जारण हजार तोला गन्धक से करने पर बाद में एक तोला ही रक्त रजिंत पारद शेष बचें तो वह

हजार गुना ताम्र को अपने प्रभाव से स्वर्ण बना सके ऐसा कुछ निश्चित नही है अनुमान से विचार कर कह दिया है।

जबकि रसपद्धतिकार ने कुछ इस प्रकार लिखा है। यथा–

जीर्णे शतगुणे सम्यक्सहस्त्रांशेन विध्यति।
सहस्त्रगुणिते जीर्णे लक्षवेधी न संशयः।।

(र.प.)

अर्थात- शतगुण गन्धक जारण करने से पारद सहस्त्र वेधी होता है। और हजार गुणा गन्धक जारण करने से लक्ष बेधी होता है। इसमें संदेह नही।

पारद और गंधक जारण की इन क्रियाओं में इतना तो प्राच्य शास्त्रों से अवश्य उल्लेंख मिलता है। वेध क्रिया निरूपण का स्वरूप जो रस ग्रन्थों में आया है वह गन्धक जारण द्वारा अग्निस्थायी पारद वेधोपयोगी अवश्य होता है।

दशगुणा गन्धक जारण द्वारा वेध निरूपण

दशगुणं जारयेद्गंधं पिष्टिकां वेधयेद्ध्रुवम्।
कल्कहैमीं तया तारं क्रमेण वेष्टयेद् बुधः।।
ध्मातं तदंधमूषायां कनकं भवति शोभनम्।
तद्धेम जायते दिव्यं दिव्याभरणभूषिते।।

(यो० सा०)

अर्थात- पारद और गन्धक की पिष्टी वेध कर्म के लिये दस गुणा गन्धक जारण करे। फिर उसी स्वर्ण और पारद के कल्क से चांदी के पत्रो को लपेट अन्धमूसा में धोंके तो उसका निश्चय सोना होता है। और उसी स्वर्ण के उत्तम गहने होते है। इसी क्रम से यथा–

शतगुणं जारयेद्गंधं सहस्त्रांशेन बेधयेत्।
सहस्त्रं जारयेद्गंधं लक्षवेधं करोति सः।।

(यो. सा.)

अर्थात- पारद सौ गुणे गन्धक जारण से सहस्त्रवेधी और सहस्त्रगुणा गन्धक जारण से लक्षबेधी होता है और लक्षगुणा जारण से कोटिवेधी होता है।

इसी क्रम से गन्धक के अधिकाधिक जारण कर्म को करने से पारद विशिष्ट गुण प्रभावशाली स्वरूप तुल्य होता है। हे पार्वति जो अधिक कर्म को करने वाले है वही रस कर्म करता है, तथा खेचरत्व को प्राप्त कर चराचर जगत के साथ खेल करते हुए लोक लोकान्तर भ्रमण करते है तथा काल से भी नही जीते जाते। यथा–

असंख्याता कृता येन जारणा विधिरुत्तमः।
नादवेधी भवेत्तस्य रुद्रतुल्यो न संशयः।।
क्षपिता मुखमध्ये तु खेचरत्त्वं च जायते।

इच्छाचारी भवेत्सोपि क्रीड़ते स चराचरम्।।

(यो.सा.)

इस प्रकार महादेव ने पार्वती को पारद के साथ गन्धक जारण के बहुत से उत्तम फलों का वर्णन किया है।

सम्मति

मेरे मत से गन्धक पारद की जारणा को लेकर जो फल विशेष का वर्णन प्राच्य शास्त्रों में हुआ है, बहुत अधिक नहीं तो थोड़ा फल तो अवश्य प्राप्त होता है। विधि विधान सहित सिद्ध किए गए बहुत से कूपी पक्व रसायन आयुर्वेद के क्षेत्र में आज भी श्रेष्ठ रसौषध के रूप से देखे जाते है तथा उनका सेवन भी शीघ्र फलदायक होता है। इस दृष्टि से विशिष्ट योग क्रियाओं का निरूपण तो शास्त्रों में अनेक स्थलों पर उल्लेखित हुआ है, परन्तु वेध क्रियाओं के स्वरूप को लेकर की जाने वाली रस सिद्धि का उपाय गन्धकादि जारणाओं द्वारा वर्तमान समय में सम्भव नहीं लगता। फिर भी हमें इस प्रकार की क्रियाओं को कपोल कल्पित समझकर भूलना नही चाहिए, बल्कि यथा सम्भव रसकर्म में सक्रिय होकर कार्य करने से निश्चय ही सफलता मिलती है; ऐसा मेरा अपना विश्वास है।

रंजन संस्कार

पारद के साथ विधि पूर्वक धात्वादिक एवं गन्धकादिक तथा भली प्रकार से सिद्ध किए हुए बीजो का जारण करने से पीत आदि वर्ण के पैदा होने को रंजन कहते है। ये रस राग संस्कार वेध क्रिया निरूपण के अर्थ ही देह एवं लौह सिद्धि के रूप में देखे जाते हैं। इन संस्कारो में पारद को लोहादि के साथ जारणा कर पीतादि वर्ण विशेष को सिद्ध करना है। यथा–

रंजनलक्षणम्

सुसिद्धबीजधात्वादि जारणेन रसस्य हि।
पीतादिरागजननं रंजनं परिकीर्तितम्।।

(र०र०स०)

भली प्रकार सिद्ध किये हुए बीज और धातु आदि के जारण से पारद के पीला आदि वर्ण पैदा होने का लक्षण रंजन कहा है। यथा– **रस राग संस्कार तत्रादौ रस रागाख्यश्चतुर्दशसंस्कारस्यायमर्थः– रसस्य रागः स्वर्णरजतताम्रतीक्ष्णकान्तान्यतमप्रजारणा।** *(ध.स.)।*

अर्थात– यहाँ से आगे के कहे हुए पारद कर्म केवल वेध के लिये ही जानना चाहिए; प्रथम रस राग नाम का चौदहवां संस्कार है उसका अर्थ यह है कि स्वर्ण, रजत और ताम्र, फौलाद और कांत लौह में से किसी एक के जारण करने से पीत आदि वर्ण विशेष का सिद्ध करना। मैने स्वय रंजन संस्कार की अनूकूल रूप से क्रिया करते देखा है जिसमें मैंने– पारद में ताम्र का बार-बार जारण किया है। इस क्रिया विधान में पारद में ताम्र की

गर्भ द्रुति कराकर उसे पुनः अग्नि में जारण किया जाता है इस प्रकार चार वार की जारण से पारद पीत वर्ण का दीखने लगता है अतः इस दृष्टि से शास्त्रोक्त यहाँ तक किया गया विवेचनात्मक उल्लेख ठीक ही लगता है।

रस राग क्रिया

माक्षिकेण तु कनकं च मृतं रसकतालयुतं पटुसहितं
तत्पक्वं हंडिकायां यावदिंद्रगोपनिभम्।
अथैतच्चूर्णेन सूतरंजनं तत्फलं चाह तच्चूर्णं
सूतकरे त्रिगुणं चीर्णं हि जीर्णं तु।।
द्रुतहेमनिभः सूतो रंजति लोहानि सर्वाणि।।

(ध०स०)

अर्थात- द्विगुण या त्रिगुण सोनामाखी से भस्म किया हुआ स्वर्ण और उसी के तुल्य खपरिया हरिताल तथा सैंधानोन इन सबको मिलाकर लवण यन्त्र द्वारा हांडी में परिपाक करे तो वह भस्म वीरबहूटी के समान लाल वर्ण की होगी, फिर उसका चूर्ण बनाकर रख लेवे तदनंतर संस्कारित पारद में पूर्वोक्त तिगुने चूर्ण को खिलावे और जारण करे तो वह पारद गलाये हुए स्वर्ण के समान वर्ण होकर सब धातुओं को रंगता है।

माक्षिकं सत्त्वमल्पाल्पं मृतनागसमन्वितम्।
मूषागतं भवेद्यावत् काचं दत्त्वाधरोत्तमम्।
एवं द्वादशवारांस्तु सुध्मातं रंजितं भवेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- मूषा में पहले विडनमक रखकर उस पर नाग भस्म रखें। इसके बाद ऊपर से विडनमक रखकर और थोड़ा-थोड़ा माक्षिक सत्व मिलाकर बारह बार धमन करे। इससे वह रंजित होता है।

तेन पक्वं बीजचूर्णं पारदे पादभागिकम्।
मर्दितं चणकाम्लेन क्षणाद्गर्भद्रुतिर्भवेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- पूर्वोक्त रंजन द्रव्य के साथ पक्वबीज चूर्ण चौथाई भाग पारद में मिलाकर चणकाम्ल के साथ मर्दित करे, इससे शीघ्र ही गर्भ द्रुति हो जाती है।

रंजन क्रिया

गंधकेन हतं नागं जारयेत्कमलोदरे।
एतस्य त्रिगुणे जीर्णे लाक्षाभो जायते रसः।।
एतत्तु नागसंधानं न रसायनकर्मणि।।

(र.चि., वृ.यो.)

अर्थात- गन्धक से भस्म किया हुआ नाग (सीसक धातु) और उस नाग के साथ भस्म किया हुआ तिगुना तांबा जब पारद में प्रथम गंधक के साथ नाग (सीसा) को भस्म करे और उससे तांबे को भस्म करे उस तांबे को पारद में तिगुना जारण करे तो वह पारद लाख के रस के समान लाल रंग वाला होता है। यह योग धातुवाद (सोना, चांदी बनाना) के लिये है न कि रसायन की दृष्टि से कहा गया है। अतः धातु वेध के रूप में ही इसका प्रयोग करना चाहिए।

ताम्रबीज

कुनटी (मैनसिल) के साथ भस्म किये हुए सीसक के साथ अथवा सोना मक्खी या गंधक के साथ भस्म किये हुए ताम्र से अथवा हिंगुल के साथ मारे हुए लोहे से तीन बार व्यूढ किया हुआ सुवर्ण बीज होता है। उसको समभाग जारण करे स्वतन्त्रता से पारद को रंगता है। यथा–

बलिना व्यूढं केवलमार्कमपि-ताम्रं तद्बीजम्

(र.चि., र.रा.शं., वृ०यो०)

रंजन विधि

गंध, खग नवसार तैल से यथा–

तैले नियमितं तप्ते तप्तुं संस्थापितं पुनः।
गंधखगनवसाराणां त्रयाणां शुष्कमर्दनात्।।
ऐक्यमापादयित्वा तं मृण्मये कोकिलोपरि।
ऐक्यं संपादयित्वा तु सुतप्तं चीनपात्रगम्।।
तिर्यक्संस्थापितं वायोः स्त्रवेत्तैलं नियोजयेत्।
रसे संस्थापितं तप्ते स्वल्पं स्वल्पं यथा पचेत्।।
रसाद्दशगुणं तेन रंजितो जायते रसः।।

(गा. श्लोक)

अर्थात- तपे हुए तैल में नियामन संस्कार किये हुए पारद को रक्खे और गन्धक फिटकरी नव सादर इन तीनो को सूखा पीस कर मिट्टी के ठीकरे (खिपड़ा) में रख और कोयलों आदि की आंच पर रख गलाकर सबको एक कर लेवे, फिर उस पारद सहित तैल के पात्र को टेढ़ा करके तैल निकाल लेवे तदनंतर उसमें गंधक फिटकरी और नौसादर के किये हुए चूर्ण को थोड़ा डालकर पकावे, इस प्रकार दसगुणा पकाने से पारद रंजित होता है।

रामठं मुसलीकंदं लांगलं रक्तचित्रकम्।
मूषालेपनमात्रेण रसो भवति कुंकुमम्।।

(टो.नं.,)

अर्थात- हींग, मूसली, कलिहारी, और लाल चीता, इनका मूसा में लेप करके पारद को झोंके तो वह पारा केसर के समान लाल वर्ण का होता है।

केवलं निर्मलं ताम्रं पाप्तितं दरदेन तु।
कुरुते त्रिगुणे जीर्णे लाक्षारसनिभो रसः।।

(र.चि., र.रा.श., वृ०यो०)

तांबे को गलाकर सिंगरक का चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालता जावे इस प्रकार किये तांबे के तीन गुने चूर्ण को पारद में जारणा करे तो वह पारद लाख के रंग जैसा हो जाता है।

पीताभ्रक सत्वपातन

पीताभ्रकं त्वेकदलं लिप्तायां मरिचेन तु।
मूषायां ध्यातमग्न्याभं सोभाञ्जनरसे क्षिपेत्।।
पातयेत् पूर्णविधिना तत् सत्त्वं हेमभासुरम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- पीत अभ्रक के एक दल को मरिच के कल्क से लिप्त मूसा में रखकर धमन करने से अग्निवर्ण के पीताभ्रक चूर्ण को सौवीरान्जन के रस में पूर्वोक्त सत्त्वपातन विधि से पातन करे। वह सत्व सुवर्ण के वर्ण का हो जाता है।

इस प्रकार - बीजों द्वारा रस क्रियाओं में वेध संस्कार की दृष्टि से रसरागक्रियाओं का अनेक रूपों में निरूपण किया गया है। उत्तम बीजो के योग से पारद की रजंन क्रिया के द्वारा लोहो का रंगना (स्वर्ण निर्माण करना) रजतकर्म में रंजन की आवश्यकता नही होती है।

सारण संस्कार

तैल सहित यन्त्र में रखे हुए पारद में जो स्वर्णादि को डालकर जारण करना या धातु में अधिक वेध करने वाले को सारण संस्कार कहा है। यथा-

तस्य रागस्य ताम्रादिषु प्रायणम्।

(ध. सं.)

अर्थात- रंजित पारद का ताम्र आदि धातु में जो पिलाना है। उसको सारण कहते हैं।

सारणादिकर्म निरूपण

यथा-

मूषां तु गोस्तनीं कृत्वा धत्तूरकुसुमाकृतिम्।
तदर्द्धं पूरयेत्तैलं रञ्जितं च रसं क्षिपेत्।।
तुषकर्षाग्निना वाह्ये मूषायास्तु प्रदापयेत्।
विंशांशनागसंयुक्तं समावर्त्तं च खोटकम्।।
दीर्घसंदंशनेनैव प्रक्षिपेत् सारितं भवेत्।
द्विगुणेन ततो हेम्ना जायते प्रतिसारितम्।।

ततस्त्रिगुणहेम्ना तु जायते चानुसारितम्।
जारयेद्विडयोगेन प्राग्वच्चाथ पुनः पुनः।।
अनेन विधिना देवि! भवेद्द्वेधा तु वेधकः।।

(रसार्णव)

अर्थात- धत्तूर पुष्प के आकार वाली गोस्तनी (गाय के स्तन के समान) मूषा को बनाकर उसके आधे भाग में तैल भर देवे और उसके बाद रंजित पारद को उसमें छोड़ देवे। इसके बाद मूषा के बाहर में धान की भूसी तथा गोहरी की आग देवे, बीसवां भाग नाग से युक्त समावर्त खोटक को लम्बी सड़सी से पकड़ कर छोड़ देवे, इससे वह सारित होता है। इसके बाद दुगुना स्वर्ण से प्रतिसारितक होता है तथा इसके बाद तीन गुना स्वर्ण से चानुसारित होता है; पहले ही की तरह विड के योग से बार-बार जारण करे, हे देवि इस विधि से दो प्रकार का वेधक होता है।

द्विपलं तिलतैलं स्यात्तत्तुल्याजवसा तथा।
विधिना साधितं तैलं सारणात्तैलमुच्यते।।

(र.प.)

अर्थात- दोपल बकरे की चर्बी और दो ही पल तिल का तैल लेकर इन दोनो को चूल्हे पर चढ़ाय मंदाग्नि से ऐसा पकावे कि दोनों मिलकर एक हो जावें, बस इसी को सारण तैल कहते है।

सूते सतैलपात्रस्थे स्वर्णादिक्षेपणं हि यत्।
वेधादिकारकं लोके सारणा सा प्रकीर्तिता।।

(ध.सं.)

अर्थात- तैल सहित पात्र में रक्खे हुए पारद में जो सोने आदि का डालना है उसको लोक में सारण संस्कार कहा है।

इस प्रकार इन सारण कर्म का प्रयोग - तैल संयुक्त पात्र में स्वर्णादि का जारण कर समभाग दूना त्रिगुणा अर्थात- सारित सम भाग से जारित जीर्ण पारद का लक्षण होता है। तथा द्विगुणा जारित प्रतिसारित तथा त्रिगुणा जारित किया हुआ अनुसारित कहलाता है। इसी क्रम से सारित पारद शतवेधी और द्विगुण जारित पारद सहस्त्रवेधी तथा त्रिगुणा जारित लक्ष्यवेधी होता है। विद्वानों का मानना है इस प्रकार सारित क्रम में स्वर्णादिक द्वारा जीर्ण पारद में वजन न बढ़े तो समझना चाहिए कि सारण संस्कार सिद्ध हो गया है। विद्वानों के इस मत से मेरी स्वयम् की भी सहमति है क्यूंकि ताम्र रस क्रिया में मैं पारद में ताम्र की गर्भद्रुति कराता हूँ तो कभी-कभी मुझे चौंकाने वाले परिणाम भी सामने आते हैं जैसे कि ताम्र गर्भ द्रुति को प्राप्त हुआ पारद तौलने पर पाँच तोला बैठता है बाद में अग्नि द्वारा जारण करने पर दो तोला ताम्र रस प्राप्त हुआ तथा उर्ध्वपातन विधि द्वारा पारद ग्रहण करके तौलने पर दोनो का भार मिलकर बढ़ जाता है। पारद चार तोला प्राप्त हुआ गर्भद्रुति से सिद्ध रस के रूप में प्राप्त हुआ ताम्र रस दो तोला प्राप्त हो गया दोनो

का भार मिलकर छः तोला हुआ; होना भी उतना ही चाहिए था क्योंकि उसमें चार तोला पारद डाला गया था दो तोला ताम्र का प्रयोग किया गया था; प्राच्य ज्ञान से जुड़े इस वस्तु ज्ञान से मैंने अपने प्रयोगो द्वारा सामने आये परिणामों की इस संक्षिप्त जानकारी से इसलिये यहाँ परिचय देना उचित समझा है ताकि विषय वस्तु की सार्थकता के प्रति निश्चयात्मक विस्तार पैदा किया जा सके।

क्रामण-संस्कार

जिस विधि योग से पारद ताम्रादि धातुओं में पूर्ण रीति से प्रवेश कर जावें तो वह क्रामण संस्कार कहा जाता है।

क्रामणं रसराजस्य वेधकाले प्रदापयेत्।
क्रामणं यो न जानाति श्रमस्तस्य निरर्थकः।।

(रसार्णव)

पारद का क्रामण वेध के समय देना चाहिए जो क्रामण नहीं जानना है उसका परिश्रम व्यर्थ है।

भूलताशोणितशिलाविषटङ्कणपारदम् ।
ताप्यं स्त्रीस्तन्यसंपिष्टं क्रामणं क्षेपलेपयोः।।

(रसार्णव)

अर्थात- केंचुआ (भूलता) लाल मनः शिला विष (वत्सनाभ) टंकण तथा ताप्य (स्वर्ण माक्षिक) इन सबो को स्त्री के दूध के साथ पीसकर प्रक्षेप तथा लेप करने से पारद का क्रामण होता है। और

विषं सुरेन्द्रगोपश्च रोचना गुग्गुलुस्तथा।
स्त्रीस्तन्यं चैव तैर्युक्तो लोहे तु क्रमते रसः।।

(रसार्णव)

अर्थात- वत्सनाभ वीर बहूटी गोरोचन, गुग्गुल तथा स्त्री का दूध इन सबों से युक्त पारद लोह में क्रामण करता है।

गण्डोलविषभेकास्य-महिषाक्षिमलं तथा।
रुधिरेण समायुक्तं रससंक्रामणं परम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- गण्डोल (गुड़-चीनी) वत्सनाभ मेंढ़क का मुख भैस के आँख का मल ये सब रक्त के साथ युक्त प्रक्षेप तथा लेप करने पर उत्तम पारद संक्रामक है। और

शिलया निहतो नागो वंगं वा तालकेन शुद्धेन।
क्रमशः पीते शुल्के क्रामणमेतद्धि रुद्दिष्टम्।।

(र.चि., र.रा.शं., वृ.यो.)

अर्थात- मैनसिल भस्म किया हुआ नाग (सीसा) और शुद्ध हरताल में भस्म किया हुआ वंग ये दोनों स्वर्ण तथा चाँदी के बनाने में क्रामण कहे गए हैं।

इस प्रकार पारद का सोलहवाँ संस्कार क्रामण भेद से कहा गया है। जबतक पारद का धातु में क्रामण नहीं होता तब तक वह वेधोपयोगी सिद्ध नही होता है भले ही अन्य सभी प्रकार के संस्कारों से युक्त होकर भी वेधोपयोगी गुणों को धारण करने पर भी क्रामण संस्कार के बिना रससिद्धि असफल हो जाती है। बीज आदि का जो प्राच्य रसग्रन्थों में उल्लेंख किया गया है वे सभी पारद की क्रामण क्रिया को बढ़ाने वाले है। स्वर्ण माक्षिक का सत्त्वादि सीषक धातु भी पारद के क्रामण कहे गए है। अंधमूषा यन्त्र विधियों द्वारा पारद में क्रामण क्रिया कल्कादि स्नेहों द्वारा करना उत्तम रहता है।

वेध-संस्कार

षोडश संस्कारो द्वारा जब रस सिद्ध हो जाता है तब वह वेध कर्म के लिये उपयुक्त माना जाता है। पारद में छुपी यह वेधक शक्ति उसके सिद्ध रूप में होती है जिसकी व्याख्या निम्न श्लोक से हो जाती है।

शतसहस्त्रलक्षाणां कोटिधूम्रादिवेधनम्।
शब्दवेधं च धातूनां कुरुते साधितो रसः।।

(र.पारि.)

अर्थात- सिद्ध किया हुआ रस सौगुने हजार गुने लाख गुने तथा करोड़गुने वेध को और धूमवेध शब्द वेध को भी करता है।

यह वेध कर्म मुख्यतः पांच प्रकार का कहा है, यथा-

व्यवायिभेषजोपेतो द्रव्ये क्षिप्तो रसः खलु।
वेध इत्युच्यते तज्ज्ञैः स चानेकविधः स्मृतः।।
लेपः क्षेपश्च कुंतश्च धूमाख्यः शब्दसंज्ञकः।।

(र.र.स.)

अर्थात- किसी द्रव्य में व्यवायी औषधियों के साथ जो पारद को मिलाना है, उसको विद्वान पुरुष वेध कर्म कहते है; यह वेध कर्म लेप-क्षेप कुन्त धूम और शब्द नामों से पांच प्रकार का कहा है।

रसार्णव नामक रसतन्त्र में पार्वती द्वारा पूछे जाने पर देह वेध सम्बन्धी प्रश्न- यथा-

लोहवेध स्त्व या देव यदर्थमुपवर्णितः।
तं देहवेधमाचक्ष्व येन स्यात् खेचरी गतिः।।

अर्थात- पारद को देह में प्रयोग करने के सम्बन्ध में पार्वती ने प्रश्न किया है हे देव! आपने लोह वेध बताया किन्तु वह जिसके लिये कहा गया है, उस देह वेध को कहें जिससे खेचरी गति सिद्ध होती है।

इस प्रकार पारद का सिद्ध रूप जरा व्याधि मुक्त अजर-अमर देह एवं खेचरी गति को भी देने वाला कहा गया है। अतः इस दृष्टि से पारद का वेध स्वरूप दो रूपो में प्रकट होता है। 1- धातुवेध 2- देहवेध। षोडश संस्कारित पारद प्राप्त होने पर वेध रूप की कल्पना से जो कार्य किया जाता है उसी का निरूपण किया गया है जैसा कि प्राच्य शास्त्रो में उल्लेंख मिलता है।

लोह-वेध निरूपण

लेपवेध लक्षण

लेपनं कुरुते लोहं स्वर्णं वा रजतं तथा।
लेपवेधः स विज्ञेयः पुटमंत्र च सौरकम्।।

(र.र.समु.)

लेप करके पुट देने से धातुओं का सोना चाँदी बन जाता है। उसको लेपवेध कहा है, तथा पुट शब्द से यहाँ शूकर पुटका ग्रहण है।

क्षेपवेध लक्षण

प्रक्षेपणं द्रुते लोहे वेधः स्यात्क्षेपसंज्ञितम्।

(र.र.स.)

अर्थात- किसी लोहे को गलाकर फिर उसमें क्रामण संस्कार किये हुए पारद का प्रक्षेप करे उसको रसायन के जानते वाले विद्वज्जन क्षेपवेध कहते हैं।

कुंतवेध लक्षण

नागं वंगं द्रावयित्वा ताम्रं चैव तथा परम्।
पारदोऽन्यतमे पात्रे द्राविते संनियोजयेत्।।
कथ्यते कुंतवेधः स वेधकर्मविशारदैः।।

(ध.स.)

अर्थात- सीसा, वंग तांबा तथा अन्य किसी धातु को गला देवे उनमें से किसी एक के पात्र मे पारद को डाल देवे उसको कुन्तवेध कहा है।

धूमवेध लक्षण

वह्नौ धूमायतेन्तःप्रक्षिप्तो रसंधूमतः।
स्वर्णाद्यपादनं लोहे धूमवेधः स ईरितः।।

(र.र.स.)

अर्थात्- किसी सहायक औषधि में अग्नि रख देवे जब धूंआ निकलने लगे तब उसमें पारद डाल देवे उसके धुंए से जो धातुओं का स्वर्ण बनाना है उसे धूमवेध कहा है।

शब्द वेध

मुखस्थितरसेनाल्पलोहस्य धमनात्खलु।
स्वर्णरूप्यत्वजननं शब्दवेधः स उच्यते।।

(र.र.स.)

अर्थात- जिस धातु का स्वर्ण बनाना हो उसे गलावे और जब वह गल जावे तब मुख में पारद को रखकर फूकनी से धोंके तो सोना और चाँदी होगी उसे शब्दभेद कहा गया है।

वेध कर्म

धूर्ततैलमहेःफेनं कंगुणीतैलमेव च।
भृङ्गतैलं विषं चैव तैलं जातीफलोद्भवम्।।
हयमारशिखातैलमब्धिशोषकतैलकम्।
एतान्यन्यानि तैलानि व्यवायकरणानि च।।
संस्कारैः संस्कृतः सूतः समस्तैलस्यवापिना।
यामैकं मर्दितं सम्यक् पारदो वेधकृद्भवेत्।।

(ध.स.)

अर्थात- वेध कर्म के लिये धतूरे का तैल, खस का तैल, कंगुनी का तैल, जल भांगरे के बीज का तैल सींगिये का तैल जायफल का तेल कन्हेर का कन्हेर की जड़ का तेल समुद्र शोषका ये तैल तथा अन्य क्रामण तैलो को ग्रहण करें फिर संस्कारों से संस्कृत पारद को पूर्वोक्त क्रामण तैल में एक प्रहर तक मर्दन करे तो पारद वेधकृत होता है।

रसवेध विधि

यथा–

तिलसर्षपचूर्णस्य द्वे पले च प्रदापयेत्।
द्वे पले च हरिद्राया एकत्रैव तु मर्दयेत्।।
मर्द्दयेन्मृणमये पात्रे पलपञ्चकपन्नगम्।
वापयेत् सिद्धसूतेन शलाकां चैव चालयेत्।।
पुनश्च वापयेत्तावत् यावत् कठिनतां व्रजेत्।
तन्नागं जायते दिव्यं जाम्बूनदसमप्रभम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- तिल, तथा सरसों का चूर्ण दोपल, हल्दी दोपल इन सबो को एकत्र मर्दन करे और मिट्टी के पात्र में पन्नग (नाग) पांच पल मर्दन करे उसमें सिद्ध पारद वपन (पाक द्वारा मिलाना) करे और शलाका से चलावे, पुनः तब तक कल्क वपन करता रहे जब तक

कठिन न हो जाय, इस प्रकार वह नाग स्वर्ण प्रभा के सदृश दिव्य सुन्दर हो जाता है।

उदघाटं कृथयिष्यामि रसविद्धं च पन्नगम्।
घोसाकृष्टं तु यत् शुल्वं षोडशांशेन योजयेत्।।
एकीकृत्य समावर्त्त्य छागमूत्रे निषेचयेत।
सर्वदोषविनिर्मुक्तं जायते हेम शोभनम्।।

(रसार्णव)

रस विद्ध पन्नग का उद्घाट कहता हूँ, - कांस्य से निकला हुआ ताम्र सोलहवाँ भाग पूर्वोक्त नाग से मिला दे और दोनों को एक में मिलाकर बकरी के मूत्र में निषिक्त (मिलाकर) दे इस प्रकार सभी दोषो से रहित सुन्दर स्वर्ण हो जाता है। और

हेमशुल्वं तथा तीक्ष्णं समभागानि कारयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मातं खोटो भवति तत्क्षणाद्।।
खोटस्य भागमेकं तु रसहेमसमन्वितम्।
पाचयेदनुजाम्लेन यावत् कुङ्कुममन्निभम्।।
शताशेन तु तेनैव वेधयेद्धेम पाण्डुरम्।
जायते कनकं दिव्यं द्विवर्णोत्कर्षणं भवेत्।।
यावच्छुद्धं भवेत्तावत् पुटेल्लवणभस्मना।
रक्ततैले निषेक्तव्यं जायते हेम शोभनम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- स्वर्ण ताम्र तथा तीक्ष्ण लौह समभाग ग्रहण करे और आन्धमूसा में रखकर धमन करने से उसी समय खोट हो जाता है। खोट का एक भाग पारद तथा स्वर्ण के साथ मिलाकर कनिष्क अम्ल के साथ पकाये जब तक वह कुंकुम के सदृश न हो जाय उसी के सौवे भाग से पाण्डुर वर्ण के स्वर्ण का बेध करे। दो वर्ण का उत्कर्ष करने वाला दिव्य स्वर्ण हो जाता है जब तक वह शुद्ध न हो तब तक नमक के जल के साथ पुट देवे इसके बाद रक्त तैल में निषेक करे (भिगोये) इससे सुन्दर स्वर्ण हो जाता है।

उत्तम वेध प्रयोग विचारणीय लाभप्रद

कनकस्य रसेनैव रसमूर्च्छा प्रजायते।
चूलिकालवणेनैव सर्वलोहानि जारयेत्।।
कंटकारीरसेनैव सर्वकर्माणि कारयेत्।
गंधकेन युतः सूतः सर्वरोगं निवारयेत्।।

(योग सागर)

अर्थात- धत्तूर के रस से पारद मूर्च्छित होता है। खारी नोन के साथ समस्त धातुओं को खा जाता है, कटेरी की जड़ के रस के साथ समस्त कर्मो को करता है और गन्धक के योग से समस्त रोगों को नाश करता है।

अंकोल बीज कल्प

तत्तैलमर्दितं सूतं घटद्वंद्वमवाप्नुयात्।
तन्निष्कमात्रं विन्यस्तं ताम्रं च कनकं भवेत्।।

(औषधिकल्पलता)

अर्थात- अंकोल के बीजो से पारद को मर्दन करें, उसमें से चार मांसे लेकर एक तोले गले हुए तांबे में डाले तो सुवर्ण हो जावे।

ढाक तैल योग से वेधक

तस्य बीजस्य यत्तैलं गंधकेन सुमर्दितम्।
पारदं तेन कल्केन द्वाविंशत्कांचनं भवेत्।।

(औषधिकल्पलता)

अर्थात- ढ़ाक के तैल से पारद गन्धक को पीसकर अग्नि दे जलयन्त्र में तांबे के पत्रो पर लेप करे फिर बाईस बार गजपुट देवे तो सुवर्ण होवे।

पारद और अभ्रक से रांगा आदि की चांदी

बूंटी लज्जालू (लाजवन्ती) के रस में पारा 2, पीत अभ्रक 1, और कंकुली सैंधा 1, तीनों धातु खलै पहर पांच 5 मांसा 1 सेर रांगा की पारा को सीसा में डारै तो रूपा होता है। (किवदंती)

सुवर्णकार पहेली

गरूड भुजंग समकर सूता।
पार्वती रस मेला पूता।।
रगड़त रगड़त होवे खार।
कांचन होत ना लागे वार।।
जंगाल सिक्का पारा गंधक रगड़ना खूब।

(जम्बू से प्राप्त पुस्तक)

इस प्रकार की पहेलियाँ और स्वर्ण निर्माण क्रिया सम्बन्धी उल्लेख जम्बू आदि से प्राप्त पुस्तकों एवं अलकीमियाँ आदि लेखों से प्राप्त होते हैं।

वेधक जोड़का का स्वर्ण

रसगंधकतुल्यं च दरदं माक्षिकं तथा।
एतत्सर्वोष्णतोयेन याममानं विमर्दयेत्।।
तैनैव तारपत्राणि लेपयित्वा विचक्षणैः।
एवं विधिविधानेन दारिद्रस्य विनाशतम्।।
अनेन लिप्त्वा शौल्वं तु पत्रं विश्राम्य धामयेत्।

षोडशवर्णिकं पत्रं भवत्येव न संशयः।।

(योग सागर)

अर्थात्- पारा, गंधक नीला थोथा (तूतिया) सिगरफ, सोना मक्खी इन सबो को उष्ण जल से एक पहर तक घोटे, उसी पिष्टी से चांदी के पत्रों को लीप देवे इस प्रकार मन्द मन्द अग्नि से पकावे तो चौदह वर्ण वाला सुवर्ण दरिद्र का नाशक सिद्ध होता है। और उसी लेप से तांबे के पत्रों पर लेप करे फिर कुछ समय तक ठहर कर धोंके (गलावे) तो सोलह वर्ण वाला सुवर्ण होता है इसमें सन्देह नहीं।

वेधक

पीतगंधकसूतेन रक्तचंद्रकपंचकम्।
बज्रीक्षीरेण संयुक्तं वंगस्तंभनमुत्तमम्।।

(योग सागर)

अर्थात- आमलासार गंधक पारद और वंग को रक्त पंचक तथा थूहर के दूध से घोटे तो यह उत्तम वेधक होता है।

वेधक नाग

बर्बूरस्य रसे नागं शोधयेच्छतवारतः।
तत् कृत्वा तु चषकमिष्टिकोपरि निक्षिपेत्।।
तन्मध्ये गंधकं स्थाप्यं पाकं कुर्यात्त्रियामकम्।
गंधकस्य तु तैलेन वेधकं चषकं ततः।।
यामत्रयं कृते पाके भवेद्दिव्यं रसायनम्।
अयुतावधि शुल्वं च वेधयेन्नात्र संशयः।।

(काक चण्डीश्वरी तन्त्र)

अर्थात- सीसे को गलाकर बबूर के रस में सौ वार बुझाव देवे (शुद्ध करे) जब शोधन हो जावे तो उसका कटोरा बनाकर ईट पर रख दे और उसमें गन्धक रख देवे और तीन पहर तक पाक करें तो गन्धक के तैल के योग से वह कटोरा वेधक होता है और वह वंग दस हजार भाग से तांबे को बेधकर सुवर्ण करता है इसमें सन्देह नहीं।

सम्मति- जहाँ तक मेरी समझ की बात है इसमें पारद अन्तर्भूत है। अर्थात पारद युक्त सीसक अथवा वंग का कटोरा शोधन करना चाहिए; फिर उसका कटोरा निर्माण कर तन्त्र के कथनानुसार आगे का क्रिया विधान करना उत्तम है। और-

कंकुष्ठं गुडहंसपादिरसकं तारं च गोदन्तिका-
लाक्षाकुंकुमरोचना मधुनिशा विल्वं च लज्जालुकम्।
एतत्सर्वमिदं च भागसमकं लवणोदके मर्दितं
तेनोल्लेपितनागपत्रपुटितं षट्पाचने कांचनम्।।
हारं कंकणमुद्रिकां विरचयेन्नागार्जुनैर्भाषितम्।।

(योग सागर)

अर्थात- कंकुष्ट, गुड, हंसपादी, वंग, चांदी गोदन्ती हरताल, लाख, कसूम, गोरोचन, शहद, हल्दी, बेल, छुईमुई, समान भाग लेकर सब वस्तुओं को खारे पानी से घोट कर सीसे के पत्रो पर लेप कर छः बार पकावे तो सुवर्ण होगा उस बने हुए सुवर्ण से भूषण (गहने) बनावे।

गंधकं रससंयुक्तं सुगंधिरसमर्दितम्।
ताम्रपत्रप्रलेपेन दत्ताग्निः कांचनं भवेत्।।

(औ० क०)

अर्थात– पारद और गन्धक को कचूर के रस से मर्दन करे फिर तांबे के पत्रो पर लेप कर अग्नि देवे तो सुवर्ण होवे।

वेधक पारद गंधक तृणज्योति से

तस्य मूलं तू संगृह्य रसगंधकतत्समम्।
मातलुंगरसेनैव एकीकृत्य तु मर्दयेत्।
लेपयेच्छुल्वपत्राणि त्रिपुटं हेम शोभनम्।

(औषधिकल्प लता)

अर्थात- तृण ज्योति की जड़ को लेवे फिर उसके समान भाग गन्धक पारद को लेकर विजोरा नींबू के रस में मर्दन करे फिर उससे तांबे के सूक्ष्म पत्रो पर लेप देकर पुट देवे ऐसे तीन बार पुट देवे तो उत्तम स्वर्ण होवे। तृण ज्योति बूटी क्वार कार्तिक मास (अक्टूबर) में उत्तरांचल के अल्मोड़ा में पाई जाती है।

रसगन्धाश्मरसकं तुल्यं दरदमाक्षिकम्।
सर्वमुष्णाम्भसा घृष्टं तारपत्राणि लेपयेत्।।
द्विवारं तु धमेद्देवि! स्याच्चतुर्दशवर्णकम्।
क्रमेणानेन देवेशि! शुल्वं षोडशवर्णकम्।।

(रसार्णव)

पारा, गन्धक, शिलाजीत, तूतिया, हिगुल तथा माक्षिक इन सबो को उष्णोदक के साथ घिसकर उसी कल्क से चांदी के पत्रो को लिप्त करे और दो वार धमन करे। हे देवी! इसी क्रम से धमन ताम्र का करें तो ताम्र षोडश वर्णक वाला स्वर्ण और रजत चतुर्दश वर्णक स्वर्ण होता है।

विषपानीयमादाय प्रक्षिपेच्च रसोत्तमे।
कुनटी गन्धपाषाण-विषटङ्कण लाङ्गली।।
नष्टपिष्टीकृतं खल्ले तारपत्राणि लेपयेत्।
अन्धमूषागतं ध्मातं निर्जीवं कनकं भवेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- विषोदक लेकर उत्तम पारद में छोड़ देवे और उनमें केवटी मोथा, गन्धक विष सुहागा तथा लांगली इन सबो को खरल में डालकर नष्टपिष्ट होने तक मर्दन करे और उस कल्क से रजत पत्रो को लेप करे, इसको मूषा में रखकर धमन करने से निर्जीव कनक

प्रकरण - 13

वेध प्रकरण

देहवेध निरूपण

आयुर्वेद का मूल भाव उन तथ्यो से है जिनके विधि प्रयोगो से प्राणी दीर्घायु को प्राप्त हो सके। अतः इस दृष्टि से शरीर के रक्षार्थ अनेक औषधकल्पनाओं से अष्टांग आयुर्वेद चिकित्सा का विकास आदि काल में ही हो गया था, जिसका समय समय पर मुमुक्षुओं द्वारा किए गए अन्वेषणात्मक प्रयोगों द्वारा शास्त्र रूपो में वर्णित होकर और भी विकास हुआ। जिसमें मुख्य रूप से रसचिकित्सा को ही सर्वोत्तम मानते हुए पारद द्वारा देह वेध क्रियाओं के स्वरूपो की कल्पना में षोडश संस्कारो द्वारा पारद को सिद्ध कर उसके भक्षण से अजर-अमर (पिण्ड-स्थैर्य) होकर मोक्ष प्राप्ति का सहज साधन प्राप्त करना था।

वेध क्रियाओं में पारद का प्रयोग देह एवं लौह की दृष्टि से दो रूपो में हुआ। मुमुक्षुओं की धारणा थी जो पारद लौह को स्वर्ण बना सकता है ऐसा सिद्ध पारद निश्चय ही मेरे शरीर को भी जरा-व्याधि मुक्त कर अजर अमर देह की दृष्टि से मोक्ष का लाभ प्राप्त करा सकता है। अतः इस दृष्टि से लौह वेध ही देह वेध की कसौटी के रूप में परीक्षा का कार्य किया जाने लगा था। यथा–

लौहबन्धस्त्वया देवि यद्दत्तं परमीशतः।
तं देहबंधमाचक्ष्व येन स्यात्खेचरी गतिः।।
यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सता।
समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः।
पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद्देहे प्रयोजयेत्।।

(रसेश्वर दर्शन)

अर्थात- पार्वती जी कहती है कि हे महेश्वर आपने लौह वेध का वर्णन किया अब उस देह वेध का वर्णन करो कि जिससे खेचरी गति होती है। श्री महादेवजी कहने लगे कि हे पार्वती सज्जन पुरुष सोना-चांदी बनाने के लिये पारा बनाता है उसी प्रकार देह सिद्धि के लिये भी बनावे क्योंकि उत्तम रीति से सिद्ध किया हुआ पारद देह (रसायन) और लौह (सोना-चांदी बनाना) में समान विश्वास का करने वाला होता है। अर्थात जो धातुओं का (लौह का) सोना बना सकता है वह देह को भी स्वर्ण की भांति उत्कृष्ट व (स्थिर देह) बना सकता है। अतः शास्त्रानुसार सिद्ध किए हुए पारद की प्रथम लौह पर

परीक्षा करे फिर अपने शरीर में प्रयोग करे। श्लोक बद्ध इस धारणा में जो पारद के स्वरूप की कल्पना देह एवं लौह वेध के रूप में की गई है उसका स्पष्ट तात्पर्य बस इतना जान पड़ता है जो सिद्ध पारद देहोपयोगी होकर सिद्ध रस रूप वाला हो जाता है वह अपने गुण प्रभाव से निकृष्ट धातुओ को उत्कृष्ट करने की शक्ति से परखने पर खरा उतरता है उसका भक्षण निश्चय ही देहोपयोगी जराव्याधि नाशक के रूप में लाभकारी हो सकता है। अर्थात देह को भी कांचन बना देगा।

पारद सेवन करने से पूर्व कर्म

प्रथमं शोधयेद्देहं पश्चात् कल्कं समाचरेत्।
अन्यथा न भवेत् सिद्धिः रसे चैव रसायने।।

(रसार्णव)

अर्थात- सबसे पहले शरीर को पञ्च कर्म (स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन और आस्थापन) के द्वारा शोधन करे, इसके बाद कल्क का प्रयोग करे, अन्यथा रस और रसायन में सिद्धि नहीं होती है,।

पूर्व कृत्य कर्म

प्रातः प्रातः पिबेदादौ त्रिदिनं घृतसैन्धवम्।
केतक्या स्तवजं क्वाथं तदनु त्रिदिनं पिबेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- सर्व प्रथम प्रातः काल तीन दिन तक घृत तथा सैंधा नमक पान करे, उसके बाद केतकी (केवड़ा) के स्तवक सहित पुष्प का क्वाथ तीन दिन तक पीवे,।

स्वेदन कर्म

विधिना स्वेदनं कृत्वा सयवक्षारशर्करम्।
त्र्यहं पिबेद्वराक्वाथं सदेवासुरवन्दिते।।

(रसार्णव)

हे देव तथा असुरों से पूजित पार्वती! विधि पूर्वक यवक्षार तथा शक्कर के साथ स्वदेन करे त्रिफला का क्वाथ तीन दिन पीवे।

विरेचन कर्म

क्वाथं कटुकरोहिण्याः सम्यक् जाते विरेचने।
त्रिदिनं यावकान्नं च भुञ्जीत घृतसंयुतम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- अच्छी तरह विरेचन हो जाने पर कुटकी का क्वाथ तीन दिन तक पीवे और घृत युक्त जव का भात (या जव की लपसी) पीवे।

क्रिमिपातन

पलाशबीजजन्तुघ्नगुडमोदकभक्षणात् ।
कीटस्य पातनं कुर्य्यादथ काकेष्ठवारिणा।।
वचामरिचसिन्धूत्थ-रजनीकणनागरात् ।
धात्रीगुडविडङ्गाच्च परागं दिवसत्रयम्।।
एवं संशोध्य शाल्यन्नं क्षीरमुद्गाम्बुयावकैः।
ततो जातबलो भूत्वा चरेद्रासायनं विधिम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- पलाश का बीज तथा वायविडंग इन सबों के चूर्ण को गुड़ के साथ मोदक बनाकर भक्षण कराये और उससे कृमि पातन कराये इसके बाद काकेष्ठ (बिम्बफल) के क्वाथ के साथ वच मरिच सैंधा नमक हल्दी, पीपल, सोंठ आँवला गुडूची तथा विडंग इन सबों का चूर्ण तीन दिन तक पान करावे। इस प्रकार संशोधन कर दूध मूंग की दाल तथा यव की कांजी के साथ जड़हन धान का भात खिलावे, इसके बाद बलवान होकर रसायन विधि का आचरण करना उत्तम रहता है।

अतः सेवन विधि के अनुसार पारद का सेवन करना लाभकारी (देहोपयोगी) होता है अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानि (देहनाश) भी हो जाता है। यथा-

यत्नेन सेवितः सूतः शास्त्रमार्गेण सिद्धिदः।
अन्यथा भक्षितश्चैव विषवज्जायते नृणाम्।।

(ध०स०)

शास्त्र की विधि से यत्न पूर्वक सेवित किया हुआ पारद सिद्धि कारक है, और शास्त्र रीति के अतिरिक्त सेवन किया हुआ पारद मनुष्यों के लिए विष तुल्य होता है।

पारद सेवन के अयोग्य पुरुष

न योज्यो मर्मणि च्छिन्ने न च क्षाराग्निदग्धयोः।।

(र.र.स.)

अर्थात- जिस पुरुष का मर्म स्थान कट गया हो तथा क्षार और अग्नि से जल गया हो उस पुरुष को पारद का सेवन करना मना है।

रस सेवन योग्य अवस्थाकाल

कुमारे तरुणे वृद्धे सदा योज्यं रसायनम्।
वृद्धत्वेऽपि बले योज्यमशीत्यूर्ध्वं न कर्हिचित्।।

(र०सा०प०)

अर्थात- कुमार तरुण और वृद्ध मनुष्य रसायन के योग्य है; अस्सी वर्ष के पश्चात बल के लिये कभी सेवन न करें। और-

पूर्वे वयसि मध्ये वा तत्प्रयोज्यं जितात्मनः।
दीर्घमायुः स्मृतिर्मेधामारोग्यं तरुणं वयः।।
प्रभावर्णस्वरौदार्यं देहेन्द्रियबलोदयम्।
वाक्‌सिद्धिं निर्वृतिं कान्तिमवाप्नोति रसायनात्।।

(र.सा.प.)

अर्थात- किस अवस्था में रसायन सेवन करना चाहिए इस बात पर वाग्भट्ट का दिया प्रमाण यह है- पूर्वावस्था में; अथवा युवावस्था में जितेन्द्रिय मनुष्य को पारद सेवन कराना चाहिए, क्योंकि पारद सेवन करने वाले मनुष्य की दीर्घायु, स्मृति, मेघा, आरोग्यता, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण, स्वर उदारता और देह, इन्द्रिय तथा बल का उदय, वाणी की सिद्धि इनको प्राप्त होती है।

शास्त्रों में पारद सेवन की अनेक विधियों का यथा स्थान प्रयोग विधि निरूपण किया गया है। जिनमें मुख्यत: पंचकर्मादि विधियो से शरीर का शोधन करके क्षेत्रीकरण की आवश्यकता को बल दिया गया है। यथा–

अक्षेत्रीकरणे भुक्तोऽप्यमृतोऽपि विषं भवेत्।
फलसिद्धिः कुतस्तस्य सुबीजस्योषरे यथा।।
कर्तव्यं क्षेत्रकरणं सर्वस्मिंश्च रसायने।
नाक्षेत्रकरणाद्देवि किंचित्कुर्याद्रसायनम्।।

(रस शं., र.सा.प., र.चिं.,)

अर्थात- क्षेत्रीकरण के बिना भक्षण किया हुआ पारद (अमृत रूप) भी विष के तुल्य होताहै। जिस प्रकार ऊसर धरती में बोये हुए बीज का कुछ फल नही होता है। इस लिये सब रसायनो के सेवन करने के लिये क्षेत्रीकरण करने की आवश्यकता है। यह अवश्य करना चाहिए। यथा–

अमृतं च विषं प्रोक्तं शिवेन च रसायनम्।
अमृतं विधिसंयुक्तं विधिहीनं तु तद्विषम्।।

(र.चि., र.रा.श)

अर्थात- शिवजी ने विष वत्सनाभ और अमृत (पारद) इन दोनो पदार्थो को रसायन कहा है। क्योकि विष को विधि पूर्वक सेवन करे तो वह अमृत है और विधि रहित सेवन किया हुआ अमृत भी विष तुल्य है।

पंचकर्म पुरा कृत्वा पश्चात्सकलदेहिनाम्।
योजनीयो रसो दिव्यः शीघ्रं सिद्धिमवाप्नुयात्।।

(र.शं.र.सा.प.)

अर्थात- पहले पांचो कर्मो को करके फिर समस्त मनुष्यो को उत्तम रस दे तो शीघ्र ही सिद्धि होती है।

पंचकर्म के अयोग्य प्राणी

बालवृद्धावतिस्निग्धः क्षतक्षीणो रुजान्वितः।
श्रांतस्तृषार्त्तः स्थूलश्च गुर्विणी च नवज्वरी।।
नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी।
शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता।।

(यो.चि.म.)

अर्थात- बालक, बूढ़ा, अतिकोमल क्षीण बल, डरपोक, हारा हुआ प्यासा करके दुःखी, (तोरु लगना) मोटा, गर्भवती स्त्री नये ज्वर वाला, हाल की जनी हुई जच्चा (स्त्री) मंदाग्नी वाला अत्यंत मद्य पीने वाला, जिसकी संधियों में दर्द होवे, रूखा भोजन करने वाला इनको चतुर वैद्य विरेचनादि न देवे-

पंचविध कर्मों से शरीर का पूर्ववत् क्षेत्रीकरण करने वाला उत्तम रसाधिकारी होने से शुभफल प्राप्त करता है। यथा-

क्षेत्रीकृतनिजदेहः कुर्वीत रसायनं मतिमान्।
विधिना पथ्यविधानादमरतुल्यदेहःस्यात्।।

(र.सा.प., र.रा.शं.)

अर्थात- अपने शरीर का क्षेत्रीकरण करके फिर बुद्धिमान मनुष्य रसायन का सेवन करे, और उस पर विधिपूर्वक पथ्य सेवन करे तो देवताओं के समान सुन्दर शरीर वाला होता है।

क्षेत्रीकरण

वककन्यारसक्षौद्र-द्विनिशात्रिफलागुड़ैः।
कल्कीकृतं रसं व्योम-कान्तमध्वाज्यसयुंतम्।।
भुक्त्वा गच्छेदमरतां क्षेत्रीकरणमुत्तमम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- अगस्त्य, घृतकुमारी का रस, मधु निशा हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला (हर्र, बहेड़ा, आँवला) तथा गुड़ इन द्रव्यों के साथ कल्क किया गया अभ्रक क्रान्त-लौह मधु तथा घृत से युक्त पारद भक्षण कर अमर हो जाता है। यह उत्तम क्षेत्रीकरण है।

क्षेत्रीकरणानन्तर जारित पारद सेवन

यथा- घनहेमादिलोहजीर्णस्य भक्षणं कृतक्षेत्रीकरणानामेव शरीरिणां भक्षणेऽधिकार इत्यभिहितम्।। *(र.चि.वृ.यो.)*

अर्थात- जिन मनुष्यों के शरीर का क्षेत्रीकरण हो गया हैं वे ही मनुष्य अभ्रक, सुवर्णादि जारित पारद की भक्षण करने के अधिकारी है। और

घनसत्त्वपादजीर्णोऽर्द्धक्रान्तजीर्णश्च तीक्ष्ण-
समजीर्णः क्षेत्रीकरणाय रसः प्रयुज्यते भूय आरोग्याय।
योऽग्निसहत्त्वं प्राप्तः स जातो हेमतारकर्ता च
बद्धो रसश्च भुक्तो विधिना सिद्धिप्रदो भवति।।

(र.चिं., र.रा.शं., सा.प.,नि.र.)

प्रथम क्षेत्रीकरण के लिये आरोह रस को भक्षण करे फिर चौथाई भाग अभ्रक जीर्ण उर्ध्वभाग वैक्रान्तजीर्ण और समभाग तीक्ष्ण (फौलाद) जीर्ण पारद को भक्षण करे और जो अग्नि को सहन करने वाला हो और जो धातु वेधक (स्वर्ण चाँदी बनाता हो) और जो बद्ध हो वही पारद विधि पूर्वक भक्षण किया हुआ सिद्धि का दाता होता है।

हेमादिजीर्ण भेद से रस भस्म भक्षण फल

हेमजीर्णो भस्म सूतो रुद्रत्वं भक्षितो ददेत्।
विष्णुत्वं तारजीर्णस्तु ब्रह्मत्वं भास्करेण तु।।
समान्येन तु तीक्ष्णेन शक्रत्वं प्रप्नुयान्नरः।।

(र.सा.प.)

अर्थात- स्वर्णजारित पारद की भस्म को भक्षण करने से मनुष्य शिवत्व को प्राप्त होता है और रजत जीर्ण पारद की भस्म विष्णुत्व को प्राप्त कराती है तथा रवि जीर्ण (ताम्र जीर्ण) पारद की भस्म ब्रह्मत्व (ब्रह्मस्वरूप) को प्राप्त कराने वाली है और समभाग फौलाद से जीर्ण (जारित) इन्द्र पद को प्राप्त करा देती है।

धात्वादि पारद जीर्ण (रस भक्षण) से आयु प्रमाण

वज्रायस्काकान्तमाक्षिकवैक्रान्ताभ्रककाञ्चनैः।
एतैर्जीर्णैर्यथालाभं रसः शस्तो रसायने।।
षडेवोपरसांश्चैव भक्षणार्थं च वाहयेत्।
भक्षणात्तीक्ष्णजीर्णस्य पलमेकं तु भक्षयेत्।।
दशवर्षसहस्राणि वज्रकायः स जीवति।।

(रसार्णव)

अर्थात- जीर्ण पारद वज्र आदि भक्षण से आयु का प्रमाण देते हुए महादेव पार्वती को कहते हैं– वज्र अयस्कान्त, माक्षिक, वैक्रान्त, अभ्रक तथा स्वर्ण इन सबो के साथ जीर्ण पारद भस्म यथा लाभ रसायन कार्य में प्रशस्त है। भक्षण के लिये छः उपरसों को ही प्राप्त करना चाहिए, तीक्ष्ण जीर्ण पारद का एक पल भक्षण करे, इसके भक्षण से मनुष्य वज्र सदृश दृढ़ शारीर प्राप्त कर दश हजार वर्ष जीवित रहता है।

एवञ्च द्वादशपलं तीक्ष्णजीर्णं तु भक्षयेत्।
एवं जीवेन्महाकल्पं प्रलयान्ते शिवं व्रजेत्।।

(रसार्णव)

इस प्रकार तीक्ष्ण जीर्ण पारद को बारह पल तक भक्षण करे तो महाकल्प तक जीवित रहता है और प्रलय के अन्त में शिव हो जाता है।

भस्मनः शुल्वजीर्णस्य पलैके लक्षमायुषः।
द्विपले कोटिरायुष्यं त्रिपले ब्रह्मणायुषम्।।
चतुःपले वैष्णवायुः रुद्रायुः पञ्चमे पले।
षष्ठे पले च संप्राप्ते महाकल्पं स जीवति।।

(रसार्णव)

ताम्र जीर्ण पारद भक्षण का आयु प्रमाण–ताम्र जीर्ण पारद भस्म एक पल भक्षण करने से एक लाख वर्ष की आयु प्राप्त करता है। दोपल भक्षण करने से करोड़ वर्ष आयु तीन पल भक्षण करने से ब्रह्मा की आयु चार पल भक्षण करने से विष्णु की आयु पांच पल भक्षण करने से शंकर की आयु तथा छः पल भक्षण करने से महाकल्प तक वह जीवित रहता है।

स्वर्णजीर्ण रस भक्षण फल

भस्मना हेमजीर्णस्य लक्षायुः पलभक्षणात्।
विष्णुरुद्रशिवत्वं च द्वित्रिचतुर्भिराप्नुयात्।।

(र.चि., र.रा.श., नि.र., र.सा.प.,)

अर्थात एक पल स्वर्ण जारित पारद के सेवन से मनुष्य एक लक्षवर्ष जीता है दो पल सेवन करने से विष्णुपन को तीन पल सेवन करने से रूद्रपन को और चार पल सेवन करने से शिवत्व को प्राप्त करता है।

मूर्च्छित और मृत पारद का आयु लक्षण

शुद्धः समृद्धाग्निसहो मूर्च्छितो व्याधिनाशनः।
निष्कंपवेगस्तीव्राग्निमायुरारोग्यदो मृतः।।

(र.र.स.)

अर्थात– शुद्ध और अग्नि को सहन करने वाला पारद मूर्च्छित होकर व्याधि का नाश करने वाला है। तेज रहित मृत पारद आयु और आरोग्यता को देता है।

मूर्च्छित अवस्थाओं का प्रयोग

यथा–

मूलिकामारितं सूतं सर्वरोगेषु योजयेत्।
जारितो मारितः सूतो जरादारिद्र्यरोगनुत्।।
मूर्छितो व्याधिनाशाय बद्धः सर्वत्र योजयेत्।।

(र. रत्नाकर)

अर्थात– जड़ी–बूटियों से मारे हुए पारद को समस्त रोगों में देना उत्तम है तथा जारित

फिर मारित पारद बुढ़ापे दरिद्रता और रोगो को दूर करने वाला है। मूर्च्छित व्याधियों के नाश के लिये है और बद्ध पारद का सब जगह प्रयोग किया जाता है। और–

मारितो देहसिद्धच्यर्थं मूर्छितो व्याधिनाशने।
रसभस्म क्वचिद्रोगे देहार्थे मूर्च्छितं क्वचित्।।
बद्धो द्वाभ्यां प्रयुंजीत शास्त्रदृष्टेन कर्मणा।।

(रस मंजरी, र.सा.प.)

अर्थात– देह सिद्धि के लिये मारित पारद है और मूर्च्छित पारद रोगों का नाश करता है। अथवा कहीं रोग नाश के लिये रस भस्म तथा देह सिद्धि के लिये मूर्च्छित पारद का भी प्रयोग करते है। शास्त्र का ज्ञाता रस वैद्य रोग नाश और देह सिद्धि इन दोनो के लिये बद्ध का भी प्रयोग करे तो भी उत्तम है। और–

मूर्च्छार्तो गदहृत्तथैव खगतिं दत्ते निबद्धोर्थद-
स्तद्भस्मामयवार्धकादिहरणं दृक्पुष्टिकांतिप्रदम्।।
वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्ददं
शार्दूलातुलसत्त्वकृत्क्रमभुजां योगानुसारी स्फुटम्।।

(र.रा.सुं, नि.रं., यो.र., र.रा.सुं.)

अर्थात– मूर्च्छित पारद रोग का नाशक है। बद्ध हुआ पारद आकाश गति का अर्थ का दाता है और उसी पारद की भस्म रोग बुढ़ापे को नाश करने वाली है। तथा नेत्रों में पुष्टि और कांति को देती है। तथा यह पारद भस्म बृष्य, मृत्यु नाशक बलकर्ता और स्त्रीजनो को आनन्द का दाता है। शेर के समान पुरूषार्थ देने वाला और योगवाही है। और–

मूर्च्छितो हरते व्याधिं वद्धः खेचरतां व्रजेत्।
सर्वसिद्धिकरो नीलो निश्चलो मुक्तिदायकः।।

(यो.चि.म.)

अर्थात– मूर्च्छित पारद व्याधि को नाश करता है और बंधने पर आकाश में उड़ने की शक्ति देता है। तथा मृत सर्वसिद्धि का दाता तथा चंचलता-रहित मुक्ति देने वाला कहा है।

पारद सेवन विधि निरूपण

अथातुरो रसाचार्यः साक्षाद्देवं महेश्वरम्।
साधितं च रसं शृङ्गदन्तवेण्वादिधारितम्।।
अर्चयित्वा यथाशक्ति देवगोब्राह्मणानपि।
पर्णखंडे धृतं सूतं जग्ध्वा स्यादनुपानतः।।

(र.र.स., र.सा.प.)

अर्थात– अब रोगी साक्षात श्री महादेव जी की तरह रसाचार्य की तरह तथा सिद्ध किये सींग दन्त (दांत के बने हुए और) वेणु (बांस के बने हुए) इनमें अथवा कांच पात्रों

में रखे हुए पारद की पूजा करके और यथा शक्ति देवता गौ और ब्राह्मणों को पूजकर पत्र पर रखे हुए पारद को अनुपान से खाकर पथ्य करे तो सब रोगो से रहित होता है।

रस सेवन मात्रा

रसेन्द्रं सेवयेन्नित्यं चतुर्गुंजाप्रमाणतः।
आज्येन मरिचैः साकं सेवयेच्च रसेश्वरम्।।

अर्थात- चार रत्ती प्रमाण में लेकर घी और मिरच के साथ पारद का सेवन करें। और-

गुंजैकमात्रं तु नरस्य युज्यते गंधाणकं प्रोक्तमजादिपुंगवे।
गंधाणसार्द्धं करिपुङ्गवेषु देयं सदा व्याध्यनुपानयोगात्

(टो.नं.)

अर्थात- मनुष्य को सिद्ध रस की एक गुंजा, घोड़ा आदि को चौसठ रत्ती, हाथी को बयानवै रत्ती अर्थात रोग के अनुपान के अनुसार सर्वदा सेवन कराना चाहिए। और

गुंजैकमात्रं देवेशि ज्ञात्वा चाग्निबलं निजम्।
घृतेन मधुना सार्द्धं ताम्बूलं कामिनीं त्यजेत्।।
दिनमेकान्तरं कृत्वा निर्विषं योजयेद्रसम्।।

(टो.न., र.चिं.,)

अर्थात- श्री महादेव जी कहते है कि हे पार्वती! मनुष्य अपने अग्नि बलाबल को देखकर घी या शहद के साथ स्वर्ण जीर्ण पारद का सेवन करे, पान तथा स्त्री का परित्याग करे और एक दिन के अन्तर में निर्विघ्न पारद का सेवन करना चाहिए।

हेमजीर्णादि मात्रामान

गुंजाभागरसं देवि हेमजीर्णं तु भक्षयेत्।
द्विगुंजं तारजीर्णं स्याद्रविजीर्णस्य च त्रयम्।।
तीक्ष्णाभ्रकान्तजीर्णं तू गुंजैकैकं तु भक्षयेत्।
वज्रवैक्रान्तजीर्णं तु भक्षयेत्सर्षपोषमम्।।

(नि.र.टो.नं, र.सा. 9; र.चि., र.श.शं)

अर्थात्- हे पार्वती! स्वर्णजीर्ण पारद को एक रत्ती मात्रा में भक्षण करे; रजत जीर्ण पारद दो रत्ती और ताम्र जीर्ण तीन रत्ती तथा तीक्ष्ण (फौलाद) जीर्ण का एक मासा, प्रायः इस प्रकार पारे की मात्रा कही है तथा हीरा और वैक्रान्त जीर्ण पारद की एक सरसों के समान मात्रा है।

अभ्रक जीर्ण पारद भक्षण का फल

अभ्रजीर्णपलैकेन व्याधिभिर्नाभिभूयते।

द्वितीये शुक्रवृद्धिः स्यात् तृतीये बलवान् भवेत्।।
चतुर्थे पलितं हन्ति वलीं जयति पञ्चमे।
षष्ठे श्रुतिधरो वाग्मी सप्तमे नेत्ररोगजित्।।
अष्टमे तार्क्ष्यदृष्टिः स्यात् ब्रह्मायुर्ब्रह्मविक्रमः।
नवपलोपयोगेन सुरमेलापको भवेत्।।
दशपलप्रयोगेण द्वितीयः शङ्करो भवेत्।
रसवीर्य्यस्य रक्षार्थं वलिं दद्याद्दिने दिने।।
जपेन्मृत्युञ्जयं मन्त्रं रससिद्धिः प्रजायते।।

(रसार्णव)

अर्थात्- अभ्रक जीर्ण पारद एक पल भक्षण करने से मनुष्य रोग से आक्रान्त नहीं होता है, दो पल का भक्षण करने पर शुक्र की वृद्धि होती है तीन पल भक्षण करने पर बलवान होता है चार पल भक्षण करने पर पलित रोग नष्ट होता है, पाँच पल भक्षण करने पर बुढ़ापे की त्रुटियाँ (वली) रोग को नष्ट करता है छः पल का भक्षण करने से श्रवण मात्र से याद होने वाला तथा वक्ता होता है। सात पल भक्षण करने पर नेत्र रोग को जीत लेता है आठ पल भक्षण करने पर गीधतुल्य दृष्टि हो जाती है और ब्रह्मा की आयु तथा ब्रह्मा का बल प्राप्त करता है नव पल भक्षण करने पर देवताओं के समान हो जाता है तथा दस पल का भक्षण शंकर समान बना देता है। पारद के बल की रक्षा के लिये प्रतिदिन बलि प्रदान करे और मृत्युजंय मन्त्र का जाप करे तो रस सिद्धि हो जाती है।

पारद भक्षण के विविध उपाय

त्रिफलाजातिकंकोलकर्पूररसमिश्रितम् ।
खदिरं समतोयेन मर्द्दितं भक्षयेद्रसम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- त्रिफला, जायफल, तथा कंकोल एवं कर्पूर से मिश्रित खैर के समभाग जल के साथ मर्दित पारद का भक्षण करावे, और-

पयसा कटुकं घृष्ट्वा पथ्यं क्रामणमुत्तमम्।
स्तन्येन हेमघृष्टेन न खाद्योऽयं सुरेश्वरि।।

(रसार्णव)

अर्थात- कुटकी को दूध के साथ मिलाकर भक्षण कराना क्रामण में उत्तम पथ्य है। हे सुरेश्वरी! दूध के साथ घिसा हुआ स्वर्ण पारद नहीं खाना चाहिए। और

अलम्बुसायस्कान्तस्य तालकस्य च भक्षणात्।
देहे क्रामति सूतेन्द्रो नात्र कार्य्या विचारणा।।

अर्थात- अलम्बुसा (रक्त लज्जालू) के साथ अयस्कान्त लौह तथा हरताल को भक्षण करने से पारद शरीर में क्रामण करता है। यहाँ पर विचार नहीं करना चाहिए! और-

अवश्यं क्रमते सूतः स्त्रीयोगे क्रामणं परम्।
ब्रह्मचर्य्येण वा योगी सदा सेवेत सूतकम्।।
समाधिकारणं तच्च क्रामणं परमं मतम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- यह पारद अवश्य क्रामण करता है। स्त्री के संयोग में यह उत्तम क्रामण है अथवा योगी (योग साधना सम्पन्न) पुरुष ब्रह्मचर्य के साथ पारद का सेवन करे, वह समाधि का कारण हैं, और उत्तम क्रामण है।

पारद भक्षण का समय

प्रभाते भक्षयेत्सूतं पथ्यं यामद्वयाधिके।
न लंघयेत्त्रियामं तु मध्याह्ने नैव भोजयेत्।।

(र.चि., र.रा.शं., र.रा.सुं., नि.र., र.सा.प., टो.क.)

अर्थात- रस भक्षण की इच्छा करने वाला मनुष्य, प्रातः काल में पारद का भक्षण करे पारद भक्षण के पश्चात् दूसरे प्रहर में पथ्य का सेवन करे अथवा तीसरे में अवश्य ही पथ्य सेवन करे, और तीसरे पहर में लंघन न करे तथा मध्यान्ह में भोजन न करे।

पारद सेवन का अनुपान

सर्वरोगमपि हन्ति तत्क्षणान्नागवल्लिरसराजभक्षणात्।

(योग चिन्तामणि)

अर्थात- पारा नागर पान के साथ सेवन करने से सम्पूर्ण रोगों का नाश करता है! और यथा–

अनुपानेन युंजीत पर्णखण्डेन वा सह।
इत्थं संसेविते सूते रोगमांद्याद्विमुच्यते।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो प्राप्नोति परमां गतिम्।
दारिद्र्यनाशनार्थाय वेधकर्म समाचरेत्।।

(ध.सं)

अर्थात- अनुपान के साथ पारद को पान में रखकर सेवन करे इस प्रकार सेवन करने से रोग दूर हो जाते हैं और सब पापो से छुटकारा प्राप्त कर परमगति को प्राप्त करता है। और दरिद्रता को दूर करने के लिये वेध कर्म करें।

रस मात्रा का घटाव बढ़ाव

मात्रावृद्धिः कार्या तुल्यायामुपकृतौ क्रमाद्विदुषा,
मात्राह्रासःकार्यो वैगुण्ये त्यागसमये च।।

(र.चि.)

अर्थात्- पारद भक्षण करते समय ध्यान रखना चाहिए अगर कुछ विशेष फायदा नही होता लगने पर तब एक गुंजा मात्रा की वृद्धि करनी चाहिए, अगर किसी प्रकार का उपद्रव हो या औषधि के छोड़ने का समय हो तब मात्रा को घटाता जावे।

पारद सेवन काल में निषिद्ध भोजन

कुलत्थमतसीतैलं तिलान् मासान् मसूरकान्।
कपोतकं काञ्जिकान्नं तक्रभक्तं च वर्ज्जयेत्।।
कट्वम्लतीक्ष्णलवणं पिच्छिलं पित्तलं च यत्।
तिलतैलं दधि क्षीरं द्राक्षां कोलपरूषकम्।।
वदरं चिरविल्वञ्च सहकारं सुवर्च्चलम्।
नारंगकान्यनारञ्च शोभाञ्जनमपि त्यजेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात्- कुलची अलसी का तैल, तिल, उड़द, मसूर, कबूतर काञ्जीभात तथा मट्ठा भात न भक्षण करे। कड़वा, खट्टा, तीखा, नमकीन पिच्छिल तथा पित्तकारक पदार्थ, तिल, तैल, दही, घी, दूध, मुनक्का, अंकोल फल फालसा, बेर, चिरविल्व (रति करञ्ज) आम, सुवर्चल (सौवर्चल नमक) नारंगी, कांचनार तथा सहिजन त्याग देवे। और–

कूष्माडं कारवेल्लं च कर्कटी काकमाचिकाम्।
कुसुम्भकं कलिंगं च कर्कोटीं कदलीं त्यजेत्।।

(र. मानस)

अर्थात्- काकाराष्टक- पेठा, करेला, ककड़ी, काकमांची (मकोय) कसूम, तरबूज, बांझ ककोड़ा और केले का फल भी परित्याग करे।

पारद सेवी के त्याज्य कर्म

अतिपानं चात्यशनमतिनिद्रा प्रजागरः।
स्त्रीणामतिप्रसंगं च अध्वानं च विवर्ज्जयेत्।।
अतिकोपं चातिहर्षं चातिदुःखमतिस्पृहाम्।
शुष्कवादं जलक्रीडामतिचिंतां च वर्जयेत्।।

(र.चिं., र.रा.शं., र.रा.सुं.र.सा.प., नि.र.)

अर्थात्- पारद को भक्षण करने वाला मनुष्य सुरापान (शराब पीना) अत्यन्त सोना अथवा जागना अति स्त्री प्रसंग, मार्ग का चलना, बुरे विचार तथा अधिक क्रोध करना अधिक खुशी अथवा अधिक काम विषयों की इच्छा और निष्फल झगड़ा करना, जल में क्रीड़ा तैरना आदि और अत्यन्त चिन्ताकारक कारणों का भी परित्याग कर देवे! और–

क्षुधार्त्तो नैव तिष्ठेत अजीर्णं नैव कारयेत्।
न वादजल्पनं कुर्य्यात् दिवास्वापं न कारयेत्।।
नैवेद्यं नैव भुञ्जीत कर्पूरं वर्ज्जयेत् सदा।

कुंकुमालेपनं वर्ज्यं वर्ज्जयेदटनं क्षितौ।।
नाग्निं स्पृशेत पादेन न गाः वा ब्राह्मणान्न च।
न हन्यात्तु कुमारीश्च वातुलानपि वर्ज्जयेत्।।
दिवा जपेन्मन्त्रं च स्नातव्यं च दिने दिने।

(रसार्णव)

अर्थात- भूखा न रहे अजीर्ण होने पर भोजन न करे। वाद-विवाद न करे तथा दिन में शयन न करे। नैवैद्य (देवार्पित प्रसाद) भक्षण न करे। कर्पूर को सर्वथा त्याग दे। कुंकुम (केशर) का लेप न करे तथा पृथ्वी पर अधिक न घूमें। पैर से अग्नि का स्पर्श न करे, गाय तथा ब्रह्मण को भी कभी पैर से स्पर्श न करे। कुमारी को न मारे वात-कारक पदार्थो का त्याग कर देवे दिन रात रसांकुश मंत्र का जाप करे और प्रतिदिन स्नान करे।

माला मन्त्रः- ऊँ ह्री क्रौं श्लं ह्रीं ह्रीं हूं हूं फट् .... रससिद्धि देहि, इति माला मन्त्रः!

पारद सेवन काल में पथ्य-

हितं च मुद्गं दुग्धान्नं शाल्यन्नं च समाहितम्।
शाकं पौनर्ववं देवि! मेघनादं च वास्तुकम्।।
सैन्धवं नागरं मुस्ता पद्ममूलानि भक्षयेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- हे देवि! हितकारक मूंग, दुग्धान्न (खीर) सावधानी पूर्वक जड़हन धान का भात पुनर्नवा का शाक मेघनाद (चौलाई) बथुआ, सेन्धा नमक, सोंठ, नागरमोथा तथा कमलकन्द (भिसोड़ा) का शाक भक्षण करे! और-

कस्तूरीसंयुतं नित्यं ताम्बूलं भक्षयेद्वरम्।
सुरभीणि च पुष्पाणि चंदनागरुलेपनम्।।

(टो.नं.)

अर्थात- पान में कस्तूरी रखकर खावे तथा सुगन्धित पुष्पो को धारण करे, चंदन, अगर का लेपन करे।

पारद विकार शोधन

विकारो यदि जायेत पारदान्मलसंयुतात्।
गंधकं सेवयेद्धीमान्याचितं विधिपूर्वकम्।।
गंधकं मासयुग्मं च नागवल्लीदलैः सह।
खादेत् पारदसंग्रस्तो दोषशान्तिस्तदा भवेत्।।

(यो.चि.म.)

दोषयुक्त पारद खाने से जो विकार होवे तो दो महीने पान में शुद्ध गंधक का सेवन करे तो पारद खाने के सर्व रोग शान्त होवे।

पारद (रस) अजीर्ण होने पर अनेक उपद्रव

रसराजे त्वजीर्णे तु प्रत्ययोऽयं भवेत् प्रिये।
मूर्च्छा शोको भ्रमः कम्पश्छर्दिर्मोहो ज्वरस्तथा।।
हिक्कावेपथुशूलानि निद्रालस्यमरोचकम्।
लिंगस्तम्भो चातीसारः कासश्वासावजृम्भिकाः।।
कर्णास्यचक्षुःकुक्षौ च वृषणोदरमूर्द्धनि।
मेढ्रे दाहोऽग्निमान्द्यं च जातः सर्वाङ्गसंशयः।।
अन्यांश्चैव महाव्याधीन् रसाजीर्णे तु लक्षयेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- पारद अजीर्ण होने पर निम्नलिखित लक्षण होते है। मूर्च्छा, शोक, भ्रम, कम्प, वमन, मोह, ज्वर, हिचकी, कम्पन, शूल, निद्रा आलस्य, अरोचक, लिङ्गंस्तम्भ, अतिसार कास, श्वांस जम्हाई, कान, आँख, पेट, अण्डकोष, उदर, शिर तथा लिंग में दाह अग्निमान्द्य तथा सर्वांग में रोग होता है। इसके अतिरिक्त अन्य महारोग हो जाते है।

रस अजीर्ण में संक्रामण पान

काञ्जिकं सर्जिकाक्षारं कारवल्लीरसप्लुतम्।
गौमूत्रसैन्धवयुतं तस्य संक्रामणं पिबेत्।।
मोक्षकस्य रसं देवि राजकोषातकीरसम्।
सिन्धुकं कृष्णगोमूत्रं कारवल्लीरसप्लुतम्।
सौवर्च्चलसमोपेतं रसाजीर्णे पिबेन्नरः।।
रसाजीर्णे न जीवेत्तु म्रियते नाऽत्र संशयः।
रसायने सुजीर्णे तु तेन सर्वं विधीयते।।

(रसार्णव)

अर्थात- कांजी, सज्जीखार, करेला का रस, गोमूत्र तथा सैंधा लवण के साथ रसाजीर्ण उपद्रवों का क्रामण पान करे। हे देवी! मोक्षक (पारला या मोखा) का रस, राजकोषातकी (पीली तरोई) का रस, सैंधा नमक काली गाय का मूत्र, करैला का रस तथा सौवर्चल नमक मिलाकर मनुष्य रसाजीर्ण में पान करें। रसाजीर्ण होने पर मनुष्य जीवित नही रहता मर जाता है इसमें सन्देह नही है। रसायन के भलीभांति परिपक्व हो जाने पर ही वह सब कुछ कर सकता है। और–

मुनिभृंगराजैश्चतुर्थीसुपिष्टीकृतं रोमतक्रं पिबेत्सप्तरात्रम्।
अतिचांतर्दाहं कृतं सूतकेन पतेत्सूतको मूत्रमार्गेण पश्चात्।।

(नि.र.)

अर्थात- अगस्त्य, भांगरा (भृंगराज औषधि) से चार बार अच्छी तरह पीसे हुए रोमतक्र को सात रात तक पीवे तो पारे के कारण हुए हृदय के दाह की शान्ति होती है।

और पारा सब मूत्र की राह से निकल जाता है। और–

सिंधुकर्कोटकीमूलं कारवेल्लीरसप्लुतम्।
सौवर्चलसमोपेतं रसाजीर्णे पिबेद् बुधः।।

(र.चि., र.रा.शं., र.सा.प.)

अर्थात– सैंधा नमक, बांझ ककोड़ा की जड़ ओर काले नोन को करेले के रस में डालकर पीवे तो रसाजीर्ण से मुक्त होता है।

आर्द्रकस्य रसो देवि! तथा पूगफलानि च।
मर्द्दनं नवनीतेन रसस्य क्रामणं परम्।।

(रसार्णव)

हे देवि– अदरक का रस तथा सुपारी का फल मक्खन के साथ मर्दन किया हुआ उत्तम क्रामण होता है।

देह सिद्ध द्वारा वेध निरूपण

त्वग्वेधः प्रथमं देवि! मांसवेधो द्वितीयकः।
तृतीयो रक्तवेधस्तु चतुर्थश्चास्थिवेधकः।।
पञ्चमो मज्जवेधः स्यात् नाड़ीवेधस्तु षष्ठकः।
सप्तमो धातुवेधश्च, अष्टमः कवचस्य तू।।
त्वचावेधेन देवेशि! पन्नगः कुटिलो भवेत्।
मांसवेधेन सुभगे कुटिलः काञ्चनं भवेत्।।
अस्थिवेधेन देवेशि! तीक्ष्णं कनकतां व्रजेत्।
मज्जवेधी वरारोहे! लोहान्यष्टौ च वेधयेत्।।
कवचस्य तु वेधेन मृन्मये कांञ्चनं भवेत्।
वेधे तु हेमविमले मज्जो हेम प्रजायते।।
तारे मांसे सुरेशानि जीर्णसूतञ्चवेधयेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात– पहला त्वग्वेध, दूसरा मांसवेध, तीसरा रक्तवेध, चौथा अस्थिवेध, पांचवा मज्जवेध, छठा नाड़ीवेध, सांतवा धातुवेध, आठवा कवचवेधक है, हे देवेशि! त्वचा वेध से नाग वंग होता है। हे सुभगे! मांसवेध से वंग स्वर्ण होता है। हे देवेशि! अस्थि वेध से तीक्ष्ण लौह कनक होता है। हे वरारोहे। मज्जवेध आठो लोंहों का वेध करता है, कवच के वेध से मिट्टी में कांचन हो जाता है। मज्जा से हेम विमल में वेध करने से स्वर्ण हो जाता है। हे सुरेशानि! रजत में मांस तथा जीर्ण पारद वेध करता है।

वेधानुसार पारद का वर्णन

यथा–

तीक्ष्णवेधेन नीलाभः ताम्रेणारुणसंप्रभः।
रजतेनेन्दुसंकाशो हेम्ना काञ्चनसन्निभः।।
घूमावलोकी वक्त्रस्थो मासात् खेचरतां नयेत्।
स्पर्शवेधी तु वक्त्रस्थो मासात् सिद्धिप्रदायकः।।
शतकोटिस्त्रिभिर्मासैः चतुर्भिर्दशकोटिकः।
पञ्चभिः पञ्चकोटिश्च षड्भिःस्यात् कोटिवेधकः।।

(रसार्णव)

अर्थात- पारद तीक्ष्ण लौह वेध से नील वर्ण का, ताम्र वेध से अरुण वर्ण का तथा रजत वेध से चन्द्रवर्ण का तथा स्वर्ण वेध होने पर स्वर्ण वर्ण का होता है। घूमावलोकी पारद एक मास तक मुख में रखने पर खेचरता को प्राप्त करता है। स्पर्श वेधी पारद दो माह में सिद्धिदायक है, तीन माह में पंचकोटिवेधक, चार माह में दशकोटिवेधक पांच माह में शतकोटि वेधक पारद सिद्धि देने वाला होता है।

उत्तम वेध संस्कार से युक्त पारद इसी क्रम से शरीर को अजर–अमर बनाता है; अतः वेधादि संस्कारों से युक्त विशिष्ट गुण प्रभावशाली पारद की परीक्षा शास्त्रोक्त रीति से धातुओं पर वेध क्रम से देखे। बाद में उसी क्रम से शरीर पर विधि विधान सहित क्रामणादि कर्मों को देखते हुए सेवन करे; तो देह सिद्धि का लाभ प्राप्त होता है, अन्यथा अशुद्ध एवं संस्कारहीन पारद निष्क्रिय गुण वाला होता है और उस पारद का सेवन शरीर का नाश करने वाला एवं मृत्यु कारक होता है।

प्रकरण- 14

रस-जारण प्रकरण

इस "रस-जारण" प्रकरण लिखने का मुख्य ध्येय पारद योग से जारित उन कूपी पक्व रसायनों का विधिवत् वर्णन करना है जिनके सेवन से मनुष्य आयु एवं आरोग्यता को प्राप्त होकर वृद्ध भी तरुण के समान हर्षाता है। तथा अनेक प्रकार के असाध्य रोगों की चिकित्सा के हेतु शीघ्र लाभ की दृष्टि से भी रस जारणा द्वारा हुए सिद्ध रसौषधों के वास्तविक स्वरूप से परिचित कराना है। तथा आयुर्वेद के क्षेत्र में रसौषध विशेष की दृष्टि से भी वर्णन कर रस की उपयोगिता को पुनः सिद्ध करना है।

रस जारण का स्वरूप

रस-उपरस महारसादि के संयोग से पारद की जारणा कर पारद को देह एवं लौह की सिद्धि प्राप्त करने का एक मात्र उद्देश्य लेकर अनेक प्राच्य ग्रंथ भरे पड़े है। तथा धात्वादिक गंधकादिक के संयोग से रस जारणा द्वारा अनेक उत्तम फलों की प्राप्ति के रूप में पारद मोक्ष प्राप्ति को साधन के रूप में देखा गया है। कूपी पक्व रसायनों में चन्द्रोदयादि रस क्रियाओं में स्वर्ण और पारद की जारणा गन्धकादि के योग से कर उत्तम रसायन की प्राप्ति का साधन सुलभ होता है। इसी प्रकार अभ्रक ताम्रादि की जारणा द्वारा जरा-व्याधि नाशक के रूप में कल्पित है और किये जा सकते है क्यूं कि रस क्रियाओं का विषय क्षेत्र इतना विस्तृत है जिसमें पारद जारणाओं के स्वरूपों की कल्पना से अनेक विशिष्ट रसौषधों को परिकल्पित करना आज भी नए-नए रूपों में सम्भव है। तथा अभूतपूर्वरूप से उनका निर्माण कार्य भी किया जा सकता है; जो कि देह एवं लौह दोनो ही क्षेत्रो में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। देहोपयोगी रस जारणाओं में मैंने स्वयम एक नही कई रसौषधों की अभूतपूर्व रूप से प्राप्ति कर उन्हें निश्चयात्मक रूप से उत्तम स्वास्थ्य के प्रति रोगों के नाश की दृष्टि से अति उपयोगी सिद्ध हुआ पाया है, अतः इस दृष्टि से रस जारणाओं के स्वरूप की कल्पना से किये जाने वाले रस कार्यो को विशिष्ट शोधों के आधार पर कार्य कर प्राच्य ज्ञान की भूमिका को ही मुख्य रूप से ध्यान में रखकर कार्य करने से उत्तम रसौषधों की प्राप्ति होती है।

रस जारण की क्रियाओं में सफलताऐं तभी देखी जाती है जब "पारद" गन्धकादिक की जारणाओं से चाञ्चल्य दोष को त्यागता हुआ चमक रहित भस्मीभूत हुआ दिखाई देवे। यथा-

श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं चेति चतुर्विधम्।
सूतभस्म प्रयोक्तव्यं यथा व्याध्यनुपानतः।।

(आयुर्वेद विज्ञान)

अर्थात्- सफेद, लाल, पीली तथा काली इस प्रकार चार प्रकार की पारद भस्म को रोगों के अनुपान के साथ देना चाहिए। और-

श्वेतं रक्तं तथा पीतं कृष्णं चेति चतुर्विधम्।
लक्षणं भस्मसूतस्य श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम्।।

(रस रत्नाकर, रसेन्द्र सार संग्रह)

अर्थात्- सफेद, लाल, पीली और काली इस तरह चार प्रकार की पारे की भस्म है। इसमें एक दूसरे से अधिक अधिक गुण वाली है।

इस प्रकार के पारद भस्म के रूप को प्राप्त करने के लिये ही जारण द्वारा रसकर्म कर उन्हें प्राप्त करना ही हितकर होता है। अन्यथा अशुद्ध एवं अपक्व पारद देह का नाश करता है। पारद जारणाओं में गर्भ द्रुति एवं ग्रास मानादि के द्वारा-सिद्ध किये गए पारद की जारणा करना ही उपयोगी सिद्ध होता है। जो ऐसा जानता है वही रस वैद्य जरा-व्याधि नाशक रसौषध की प्राप्ति करने में समर्थ होता है।

शुद्ध पारद का गन्धकादिको के संयोग से जो कूपीपक्व रसौषधों के रूप में प्रयोग किया जाता है; उन्हें कूपी पक्व रसायनों की श्रेणी में रखकर मुख्य रूप से दो रूपों में सिद्ध किया जाता है।

1. अन्तर्धूम जारणा
2. बहिर्धूम जारणा

1. अन्तर्धूम जारणाओं में- कूपी का मुख प्रथम ही बन्द कर कपरोटी चढ़ाकर बालुकादि के संयोग से भूदर यन्त्र में परिपाक किया जाता है।

2. बहिर्धूम जारणाओं में- रस गन्धक युक्त पिष्टी से भरी कूपी का मुख गन्धक जारण होने तक खुला छोड़ दिया जाता है। बाद में कूपी का मुख बन्द किया जाता है। वालुका यन्त्र विधि से बहिर्धूम जारणा की जाती है।

इस प्रकार अनेक जारणा विधियों का निरूपण शास्त्रों में किया गया है; जिनके द्वारा पारद को सिद्ध किया जाता है। इन जारणाओं द्वारा पारद को कार्योपयोगी बनाकर मृत पारद के रूप में उसे प्राप्त करने की दृष्टि से अनेक रूपो द्वारा पारद के अठारह संस्कारों का वर्णन किया गया है; जिनके द्वारा पारद को अग्नि स्थायी गुण से सम्पन्न कर भस्मीभूत रूप को प्राप्त करना होता है जो कि आयु एवं आरोग्यता की दृष्टि से अमृतरूप माना जाता है। यथा-

निष्कम्पवेगस्तीव्राग्नावायुरारोग्यदो मृतः।

(र.र.स.)

अर्थात्- यथा विधि मृत (भस्म किया हुआ) पारद चाञ्चल्यादिवेग से रहित हो जाता है तथा तीव्र अग्नि पर भी नहीं उड़ता है और ऐसे पारद के सेवन से आयु बढ़ती है तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है।

कूपी पक्व - हरगौरी रस

रसभागो भवेदंगो द्विगुणो गंधको मतः।
खल्वे कज्जलसंकाशं काचकुप्यां क्षिपेत्सुधीः
खर्प्परि वालुकापूर्णे स्थापयेत्तत्र कूपिकाम्।
इष्टकां च मुखे दत्त्वा कृत्वा कर्पटमृत्तिकाम्।।
सप्तविंशतियामैश्च त्रिभिः कूपैर्विपाचयेत्।
पश्चादूर्ध्वं समायाति रसं ज्ञात्वा विचक्षणः।।
हंसपादसमं वर्णं निष्पन्नं रसमादिशेत्।
गुंजायुम्मं प्रदातव्यं सितादुग्धानुपानयुक्।।
प्रमेहश्वासकासेषु षंडे क्षीणेऽल्पवीर्यके।
हरगौरीरसो देयः सर्वरोगप्रशान्तये।।
ये क्षीणगतवीर्याश्च कथं सीदन्ति ते नराः।
ईश्वरेण त्विदं प्रोक्तं हरगौरीरसायनम्।।

(योग.चि.मणि.)

अर्थात- एक भाग पारद, दो भाग गन्धक खरल में घोटकर कजली बना लेवे फिर शीशी में डालकर इकट्ठी करे। फिर बालुका यन्त्र में रख ऊपर नीचे बालू भरें बीच में शीशी रक्खे और पकी ईंट से मुख बन्द करे फिर विधि पूर्वक सात कपरोटी कर सत्ताइस प्रहर तीन तीन शीशियों में पकावे। फिर जब ऊपर उड़कर आय तब जानो रस बन गया सिंगरफ का सा रंग निष्पक्ष रस जाने। दो रत्ती पान में लेवे और मिश्री मिलाकर ऊपर से दूध पीवे। यह **हरगौरी रस**- प्रमेह, श्वास, खांसी, नपुंसकता, क्षीणता, वीर्यक्षय इन सब रोगों का नाश करता है। जिन मनुष्यों का वीर्य क्षीण है वे क्यों दुःख पाते है; ईश्वर ने उनके लिये ही हरगौरी रस कहा है।

रस सिन्दूर

सूतकं च समादाय द्विगुणं गन्धकं क्षिपेत्।
ततश्व कज्जलीकृत्य काचशीश्यां तु धारयेत्।।
पृथग्भाण्डं तु संस्थाप्य बालुकार्द्धप्रमाणतः।
मृण्मयां मुद्रितां दत्त्वा नन्दसंख्याप्रमाणतः।।
मध्ये च शीशिकां धृत्वा मुखे मुद्रां च कारयेत्।
द्वात्रिंशद्याममग्निश्च स्वांगशीतेऽवतारयेत्।।
रसेसिंदूरनामेदं भास्करेण विनिर्मितम्।
गुञ्जायुग्मं सदा ग्राह्यं नागवल्लीदलैः सह।।

(यो०चि०म०)

अर्थात- पारद से दूनी गन्धक डालकर कज्जली करे, फिर कांच की शीशी में भर मुख बन्द कर कपड़ा मिट्टी नौ बार चढ़ावे, फिर एक पात्र में आधा भाग बालू भर बीच

में शीशी रख फिर ऊपर बालू भर मुख बन्द करे। सात कपड़ा मिट्टी कर बत्तीस प्रहर की आंच देवे जब ठंडा हो जाय तब निकाल लेवे। यह रससिन्दूर भास्कर जी ने कहा है मात्र दो रत्ती में पान के साथ सेवन करे।

कूपी में गन्धक जारण

काचकूपकमध्यस्थं पारदं गंधकं कुरु।
तत्कूपं सार्षपे तैले अग्निसंतपानं कुरु।।
अनेन विधिना सूतः प्रत्यहं ग्राससंयुतः।
जरत्यष्टगुणं गंधं हेमाकारो भवेद्ध्रुवम्।।

(र.प.)

अर्थात- कांच की बनाई हुई- आतिशी शीशी में समभाग पारद और गन्धक को डालकर ऊपर से सरसों का तैल भर देवे और फिर उस शीशी को अग्नि पर चढ़ाकर तपावे, इस प्रकार प्रतिदिन ग्रास से युक्त पारद के साथ अष्ठ गुण गन्धक जारणा कर (अर्थात पारद अष्टगुण गन्धक को जारण करता है) और पारद का रंग सुवर्ण के समान होता है इसमें कुछ सन्देह नही है।

भूधर यन्त्र से गन्धक जारण (अन्तर्धूम)

अष्टाङ्गुलमितं गर्तं निम्नं च निखनेद्भुवि।
द्वादशांगुलविस्तारं पूरयेद्द्व्यंगुलं पुनः।।
बालुकाभिस्तदुपरि शुद्धेशवलिगर्भिणाम्।
लोहमूषानिरुद्धास्यां निधाय सिकतोपरि।।
पूरयेद्वालुकाभिस्तं गर्तं भूमिसमीकृतम्।
तदूर्ध्वं ज्वालयेदग्निं त्रिदिनं चोद्धरेत्ततः।।
जीर्णे गंधे पुनर्गंधं तत्र सूतसमं क्षिपेत्।
अनेन विधिना भूयो भूदरे वलिजारणम्।।

(र.प.)

अर्थात- पृथ्वी में आठ अंगुल गहरा और बारह अंगुल चौड़ा गहरा गड्ढा खोदकर उसमें दो-दो अंगुल रेत विछा देवे फिर लोहे की घरिया में समभाग पारद और गन्धक को भर और कपरोटीकर उस रेत पर रख देवे ऊपर से बालू रेत भर कर गड्ढे को धरती के बराबर कर देवे उसके ऊपर तीन दिवस तक अग्नि को जलाकर उस घरिया को निकाले गन्धक जीर्ण होने पर फिर पारद के समान गन्धक लेकर पूर्वोक्त विधि से गन्धक जारण करे; इस प्रकार जारण करने से पारद में गुणोत्तर वृद्धि होती है।

खर्पर द्वारा गन्धक जारण (बहिर्धूम)

ससूतमल्पकं भांडं बालुकायन्त्र फेन्यसेत्।
षडगुणं गन्धकं तत्र क्षिपेदल्पाल्पकं शनैः।।

द्रवीभूतं बलिं ज्ञात्वा शीघ्रमुत्तार्य यत्नतः।
स्वांगशीते दृढे गंधे स्फोटयित्वा नयेद्रसम्।।
सर्वरोगहरः सूतो हरः पापहरो यथा।
अतिप्राणप्रिये कांते यत्ते हरिहरार्चने।।

(अनुपान तरंगिणी.)

अर्थात- पारद सहित छोटे से मिट्टी के बासन को बालुका यन्त्र पर रक्खे और उस तपे हुए पारद में छः गुने लिये गन्धक में से थोड़ा डालता जावे गन्धक का क्षय जान कर यन्त्र को उतार लेवे यह पारद समस्त रोगों को नाश करता है। जैसे श्री महादेवजी समस्त पापों का नाश करते है वैसे ही वह पारद सब रोगो का नाश करता है।

अन्तर्धूम गंधक जारण कूपी द्वारा

निरवधिनिपीडितमृदम्बरादिपरिलिप्तामतिकठिनकाचघटीमग्रे
वक्ष्यमाणप्रकारां रसगर्भिणीमधस्तर्जन्यंगुलप्रमाणितच्छिद्रायामनु-
रूपस्थालिकायामारोप्योपरितस्तां द्वित्र्यंगुलिमितेन निरंतराली-
करणपुरःसरं सिकताभिरापूर्य्य वर्द्धमानकमारोपयेत् क्रमतश्च
त्रिचतुराणि पंचषाणि वासराणि ज्वलनज्वालया पाचनीय-
मित्येकं यन्त्रम्।।

(र.चिं., र.रा.श., वृ.यो.)

अर्थात- कपड़ा डाल कर निरन्तर कूटी हुई मिट्टी तथा कपड़ो से कूपी पर सात परत चढ़ावे (लगावे) और कूपी के सूखने पर पारा और गन्धक भर देवे, फिर उस कूपी को ऐसी हांड़ी में रक्खे जो शीशी के रखने योग्य होवे, और जिसके पेंदे में तर्जनी के समान छेद किया हुआ होवे तदनन्तर उस शीशी के चारों तरफ तीन-तीन अंगुल रेत भरकर ढ़कने से ढाक देवे; फिर तीन-चार या पांच छः दिवस तक विधि पूर्वक अग्नि देता रहे यह एक प्रकार का यन्त्र कहा गया है।

चन्द्रोदयादि विधि निरूपण

वाजीकरणे चन्द्रोदयः

पलं मृदुस्वर्णदलं रसेन्द्रं पलाष्टकं गन्धकषोडशांशम्।
शाणैस्तु कार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वे विमर्द्याथ कुमारिकाभिः।।
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढ़े मृत्कर्पटं तद्दिवसत्रये च।
पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययंत्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम्।।
निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव।
जातीफलं शोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाण एकः।।
चन्द्रोदयोऽयं कथितश्च मासं भक्ष्योऽहिवल्लीदलमध्यवर्ती।
मदोन्मदानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकांडे।।

श्रृतं धनीभूतमतीव दुग्धं मृदूनि मांसानि च मंडकानि।
लवान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्यान्यानन्ददायीन्यपराणि चात्र।।
वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयःस्तम्भनः
समस्तगढखण्डनः प्रचुररोगपंचाननः।
गृहे न रसराजको भवति यस्य चन्द्रोदयः
स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां कथं वल्लभः।।

(योग.चि.म.)

सोने के वर्क सोलह टंक पारद शुद्ध आठ पल और गन्धक सोलह पल कपास के फूल एक पल इन सबको पीस ग्वारपाठे के रस में सान आतशी शीशी में भर कर कपड़ मिट्टी कर बालुका यन्त्र में क्रम से दो दिन अग्नि देवे, जब लाल हो जाय तव ग्रहण करे, फिर एक पल कपूर चार पल जायफल समुद्र द्रव नाम रसको एक मासा पान में खावे तो सौ मदमाती स्त्रियों का गर्व भन्जन करे। ऊपर से कड़वीविरिया का दूध पोवे, नरम मांस खावे, मैदा की रोटी, तीतर और गरिष्ठ वस्तु गरिष्ठ बीज पथ्य लेवे, आनन्दकारी भोजन करे तो बुढ़ापे को दूर करे। देह पुष्ट करे स्तंभन कारक है। सम्पूर्ण रोगों को दूर करे। हाथी रूप रोगों को यह रस सिंह समान जानो। जिसके घर में चन्द्रोदयरस नहीं है वो मृगनयनियों को कैसे प्यारा लगे?

दूसरा चन्द्रोदय

सूततुल्यं मृतं हेम द्वाभ्यां तुल्यं च गन्धकम्।
रविक्षीरैर्दिनम्मदर्चमन्ध्रयेद्भूधरे पचेत्।।
पुटैकेन भवेत्सिद्धिः मूर्च्छितः सर्वरोगहा।।

(रस रत्नाकर)

अर्थात- शुद्ध पारद के समान स्वर्ण भस्म लेवे और इन दोनो के तुल्य शुद्ध गन्धक लेकर तीनों की कजली कर अन्धमूसा में रख भूधर पुट में पकावे तो एक ही पुट में सिद्धि होती है। और सर्व रोगों को नाश करने वाला पारद मूर्च्छित होता है।

हिरण्य गर्भ रस

अथ तस्य शुद्धस्य मूर्च्छितस्याऽप्ययं विधिः।
सूततुल्यघृतं जीर्णं द्वाभ्यां तुल्यं च गन्धकम्।।
रविक्षीरैर्दिनं मर्द्यमन्धयित्वा तू भूधरे।
पुटैकेन भवेत्सिद्धो रसो हैरण्यगर्भकः।।

(रस रत्नाकर)

अर्थात- पारद के समान पुराना घृत और इन दोनो के समान ही गन्धक लेवे इन तीनो को पीसकर आक के दूध में एक दिन घोटे फिर अन्ध मूसा में रखकर भूधर यन्त्र में पकावें तो एक ही पुट से हिरण्यगर्भ नाम का रस सिद्ध होता है।

हेम सुन्दर रस

मृतसूतस्य पादांशं हेमभस्म प्रकल्पयेत्।
क्षीराज्यमधुना मिश्रं मासैकं कांस्यपात्रके।।
लेहयेन्मासषट्कं वै जरामृत्युविनाशनः।
वाकुचीचूर्णकर्षोक्तं धात्रीफलरसप्लुतम्।।
अनुपानं लिहेन्नित्यं स रसो हेमसुन्दरः।।

(रसासार पद्धति)

अर्थात- पारद भस्म (चन्द्रोदयादि) के चार भाग अथवा गन्धकादि के जारण से मृत पारद उत्तम रस सिन्दूर भी पारद भस्म की श्रेणी में आता है। और सुवर्ण की भस्म एक भाग इन दोनो को घोट लेवे फिर इसका एक मांसा अथवा बलानुसार थोड़ी मात्रा में एक से दो रत्ती तक दूध घी और शहद के साथ कांसे के पात्र में छः मास तक खावे तो बुढ़ापा तथा मृत्यु का भी नाश करता है। तदनन्तर वाकुची के एक तोले चूर्ण को अथवा बलानुसार कुछ कम मात्रा में आमले के रस में चाटे यह इसका अनुपान है। इसको हेमसुन्दर रस कहते है।

त्रिनेत्र रस विधि

रसगंधकताम्राणि सिन्दुवाररसैर्दिनम्।
मर्दयेदातपे पश्चाद्वालुकायन्त्रमध्यगम्।।
रुद्ध्वा मूसागतं यामत्रयं तीव्राग्निना पचेत्।
तद्गुञ्जा सर्वरोगेषु पर्णखंडिकया पुनः।।
दातव्या देहसिद्ध्यर्थं पुष्टिवीर्यबलाय च।।

(रससार पद्धति)

अर्थात- पारद गन्धक और ताम्र इन तीनों को निर्गुंडी के रस से एक दिवस तक घोटे फिर मूसा में रख बालुका यन्त्र द्वारा तीन प्रहर की तीव्राग्नि देवे इस रस की एक रत्ती लेकर पान के टुकड़े के साथ देह की सिद्धि के लिये खावे तो बल को बढ़ाता है और पुष्टि करता है।

योगवाही रस विधि का निरूपण

भागा रसस्य चत्वारो गंधकश्चाष्टभागिकः।
सैंधवस्य च भागौ द्वौ श्वेताजयन्तिकाद्रवैः।।
मर्दितं त्रीण्यहान्यस्य गोलकं कुरु शोषय।
तप्तमूषां जले क्षिप्त्वा गृहाण रसभस्मकम्।।
संस्कृत्य कंटकाद्यैश्च यथेष्टं विनियोजयेत्।
योगवाही रसोऽयं च प्रयोज्यः सर्वकर्मसु।।

(रस पारिजात)

अर्थात्- पारद चार भाग गन्धक आठ भाग और सैन्धव दो भाग लेवे इन तीनो को सफेद जयन्ती के रस में तीन दिवस तक मर्दन करे और गोला बनाय सुखा लेवे फिर तप्त मूसा में रख कोयलों की आंच में धौंके जब लाल हो जावे तब जल में डाल रस को निकाल लेवे और उसको समस्त कर्मो में योजित करे। इसको योगवाहीरस कहते हैं। और–

गंधामृत रस

भस्मसूतं द्विधा गंधं क्षणं कन्याम्बुमर्दितम्।
रुद्ध्वा लघुपुटे पच्याल्लेहयेन्मधुसर्पिषा।।
निष्कमात्रं जरामृत्युं हन्ति गंधामृतो रसः।
समूलं भृंगराजं तु च्छायाशुष्कं विचूर्णयेत्।।
तत्समं त्रिफलाचूर्णं सर्वतुल्या सिता भवेत्।
पलैकं भक्षयेच्चानु वर्षान्मृत्युजरापहः।।

(रसेन्द्रचिन्तामणि, र.रा.शं.,)

अर्थात्- पारद भस्म में द्विगुण गंधक डालकर उसको घीग्वार के रस में क्षण मात्र मर्दन करे, फिर लघुपुट में रखकर पकालेवे, फिर इस गंधामृत रस को चार मासे प्रमाण लेकर अथवा देहवलानुसार मात्रा कम लेवे शहद और घृत मिलाकर नित्य चाटे तो वृद्धता और मृत्यु को नष्ट करता है और जड़ समेत जल भंगरा (भृंगराज) को छाया में सुखाकर उसका चूर्ण कर लेवे फिर इसमें बराबर त्रिफला लेकर उसका चूर्ण बनावे और मिलावे और सबके बराबर मिश्री मिलाकर बाद में पूर्वोक्त रीति से गंधामृत रस सेवन करके एक पल इस चूर्ण को खावे ऐसे एक वर्ष सेवन करने वाला मृत्यु और वृद्धता से परे होता है।

रस कपूर विधि

पारदः स्फटिका चैव हीराकासीसमेव च।
सैंधवं समभागं वै विंशांशं नवसादरम्।।
खल्वे विमर्द्य सर्वाणि कुमारी रसभावना।
क्रमवृद्धाग्निना पक्वो रसः कर्पूरसंज्ञकः।।

(योगचिन्तामणि)

अर्थात्- पारद, फिटकरी हीराकसीस और सैंधानोन इनको समभाग लेवे और नौसादर बीसवां भाग लेकर सबको खरल में डालकर कुमारी रस की भावना देवे फिर यन्त्र विधि द्वारा पहले मन्दाग्नि फिर मध्याग्नि फिर तीक्ष्णाग्नि देवे तो रस कर्पूर बने। और–

खटीष्टच्चं गैरिका वल्मीक मृत्तिका सैंधवं समम्।
भागद्वयमितं श्लक्ष्णं रसं भागद्वयं स्मृतम्।।
हण्डिकायां विनिक्षिप्य पार्श्वेपार्श्वे च खर्पटान्।
दत्त्वाधः हण्डिकां रुद्ध्वा द्विरष्टप्रहरं पचेत्।।
मृतसूतं च गृह्वीयाच्छुद्धकर्पूरसन्निभम्।।

(रस मंजरी)

अर्थात- खड़िया, ईंट का चूरा, गैरू, वमई की मिट्टी सैंधा नमक ये सब सम भाग लेवे और इन सबके तुल्य पारद लेकर फिर सबकों महीन पीस लेवे और हांडी के भीतर रख ऊपर से आस पास खिपरे रखता जावे फिर हांड़ी का दूसरी हांडी से मुख बन्द कर सोलह प्रहर की आंच देवे। बाद में स्वांगशीत होने पर रसकर्पूर को प्राप्त करे। जो कि शुद्ध कर्पूर के सदृश पारद का मृत रूप कहा है।

स्वर्णादि जीर्ण पारद के गुण

हेम शुल्वं तथा तीक्ष्णं वाजरं चपलाऽऽलयम्।
रोहणं कान्तलोहं च जारयेत्तत्त्वसंख्यया।।
एकैके रसराजोऽयं बद्धः खेचरतां नयेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- स्वर्ण, ताम्र, तीक्ष्ण लौह बाजर (लौह विशेष सामान्य लौह) चपल (चपल धातु) रोहण (कान्त लौह योग राख) तथा कान्त लौह इन सबो को अपनी अपनी मात्रा में पारद के साथ जारण करे, एक एक द्रव्य में जारण किया हुआ पारद वद्ध हो जाता है। और खेचरता (आकाश में उड़ने की शक्ति) को देता है।

हरताल सूत बन्ध

निशाचररसे भाव्यं सप्तवारं तु तालकम्।
तेनैव घातयेद् वङ्गं वङ्गं तारे तु निर्वहेत्।।
तं तारं जारयेत् सूते तत्सूतं बन्धनं व्रजेत्।
लेपो मात्रेण तेनैव चतुःषष्टितमो भवेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- निशाचर के रस में हरताल को सात बार भावित करे। फिर उसी के साथ वंग का मारण कर वंग को रजत में मारण करे फिर उस रजत को पारद में जारण करे। वह पारद बंध जाता है। उसी के चौंसठवा भाग से लेप करने से रस बन्ध होता है।

चतुःषष्टितमे भागे शुल्ववेधं तु दापयेत्।
शुल्वं तु दापयेत्तारे तत्तारं काञ्चनं भवेत्।
तत्तारं जायते श्रेष्ठं धर्मकामार्थमोक्षदम्।।

(रसार्णव)

पूर्वोक्त रसबन्ध के चौसठवें भाग में ताम्र वेध करावे! फिर उस ताम्र को रजत में वेध करावे तो वह रजत स्वर्ण हो जाता है। वह रजत कांचन उत्तम होता है तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का देने वाला कहा है।

प्रकरण - 15

यन्त्र प्रकरण

यन्त्र क्रिया स्वरूप का निरूपण

रस (पारद) क्रियाओं में यन्त्रों के स्वरूप का ज्ञान साधक को न होने के कारण लाभ की अपेक्षा हानि उठानी पड़ती है। अतः विधिवत यन्त्र स्वरूप का ज्ञान योग्य रससाधक (गुरु) के द्वारा अवश्य जानना चाहिए। क्योंकि यन्त्र, मूसा, मुद्रादि को जाने बिना रस कार्य करने वाला साधक अपना समय और पैसा दोनो ही बर्बाद करता है। तथा कभी-कभी शारीरिक हानि हो जाने का भय पारद गन्धकादि की जारण क्रियाओं में होता है। अतः यन्त्र के विविध स्वरूपों का विधिवत ज्ञान हो जाने पर ही इस क्रियाओं में सफलता देखी जाती है।

प्राच्य-काल से ही तन्त्र सिद्धियों का उपाय यन्त्र प्रक्रियाओं में छुपा होने के कारण रससिद्धों द्वारा यन्त्रों की गोपनीयता को बनाए रखनें की प्रवृत्ति के कारण इन क्रियाओं का विकास बहुत अधिक नही हो सका। क्यूं कि साधकों द्वारा इन यन्त्र क्रियाओं को परदे की आड़ (छुपाव) लेकर कार्य किया जाता था, इस प्रकार पारद विषयक ज्ञान से जुड़ी अनेक दुर्लभ क्रियाऐं जिनकी सिद्धि के मुख्य आधार यन्त्र ही थे। आज उनका वर्णन केवल शास्त्रोक्त विवेचन के रूप में ही दिखाई देता है न कि उनकी सिद्धि का उपाय बन पाया है। अतः रस क्रियाओं का ज्ञान जो आज दुर्लभ है उसे सुलभ बनाने का एक मात्र रास्ता यन्त्र-स्वरूपों को जानना और उनका क्रिया विधि रूपों में प्रयोग कर पारद के मारण जारणादि क्रिया भेदों से बद्ध व अग्निस्थाई पारद को प्राप्त करने से ही रस सिद्धि को प्राप्त करना सम्भव है। अतः रस क्रियाओं में प्रवृत्त हुआ बुद्धिमान अपने विवेक से भी यन्त्र मूसाओं का निर्माण करावे! तथा शास्त्रोक्त उल्लेंखित यन्त्र मूसाओं को भी भलीभाँति समझकर रस कर्म के लिये निर्माण करावें! यथा-

रसोपरसलोहानि वसनं काञ्जिकं विडम्।
धमनी लोहयन्त्राणि खल्वपाषाणमर्दकम्।।
कोष्ठिका वक्रनालं च गोमयं सारमिन्धनम्।
मृण्मयानि च यन्त्राणि मुषलोलूखलानि च।।
संडसी पट्टसंदंशं मृत्पात्रायःकटोरकम्।
प्रतिमानानि च तुला च्छेदनानि कसोपलम्।।
वंशनाली-लौहनाली मूसाङ्गारांस्तथौषधीः।
स्नेहाम्ललवणक्षार-विषाण्युपविषाणि च।।
एवं संगृह्य सम्भारं कर्म्मयोगं समाचरेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- रस (पारद) उपरस गन्धकादि, लोह, वस्त्र, कांजी, विड, धमनी (अग्नि प्रज्वलित करने की नली) लोहा के यन्त्र, खल, पाषाण, मर्दक (लोढिया) कोष्ठिका (भट्ठी) वक्रनली (टेड़ी नली) गोबर का ईंधन (उपले) मिट्टी के यन्त्र मूसल ओखली, संडासी, चिमटा, मिट्टी का पात्र लोहे का कटोरा, प्रतिमान (बांट) तुला (तराजू) छेदन (छेदने वाला चाकू आदि, कसोपल (कसौटी) बांस की नली, मूसा, अंगार औषधि स्नेह, अम्ल, लवण, क्षार, विष तथा उपविष इन सब वस्तुओं को ग्रहण कर कर्मयोग (रसकर्म) करे।

दोला यन्त्र

अथ द्रवेण भांडस्य पूरितार्धस्य तस्य च।
मुखे तिर्य्यक्कृते दंडे रसं सूत्रेण लंबितम्।।
तं स्वेदयेज्जलगतं दोलायंत्रमिति स्मृतम्।।

अर्थात- प्रथम पतले पदार्थों से बासन को आधा भरकर उसके मुख पर तिरछी लकड़ी रख दे उसमें डोरा बांध पारद को ऐसा लटकावे कि वह बरतन में भरे पतले पदार्थ में डूबा रहे फिर अग्नि देकर स्वेदन करें उसको दोला यंत्र कहते है। और-

द्रवद्रव्येण भाण्डस्य पूरिताद्धोंदरस्य च
मुखे तिर्यक्कृते भाण्डे रसं सूत्रेण लम्बितम्।
तं स्वेदयेत् तलगतं 'दोलायन्त्रमिति' स्मृतम्

(रसार्णव)

अर्थात- एक पात्र को द्रव से आधा भर देवे, उसका मुख कुछ तिरछा कर उसमें कपड़ा की पोटली में स्थित पारद को सूत्र में बांधकर पात्र के तल भाग तक (तल से थोड़ा ऊपर) लटका देवे, इसको दोला यन्त्र कहते है।

इस दोला यन्त्र में मुख्यता एक हांड़ी लेकर उसमें आधे से कुछ अधिक भाग तक औषधि द्रव्य भर देवे फिर उसमें पारद पोटली धागे से बांधकर तलभाग से थोड़ा ऊपर रखकर द्रव्य में डुबा देवे पोटली को हांड़ी के मध्य स्थिर रखने के लिये धागे को छड़

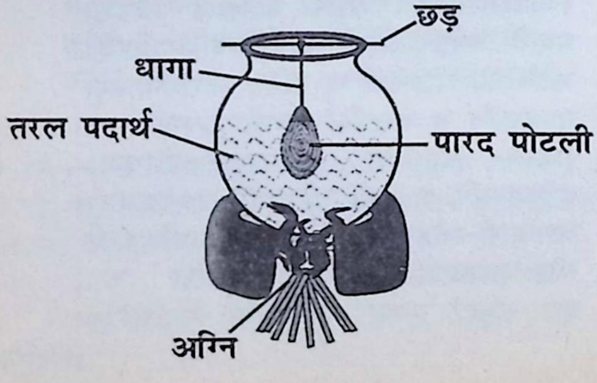

से बांधकर हांड़ी के मुख पर उस छड़ को आर-पार रख देना चाहिए। फिर उसे चूल्हे पर चढ़ाकर मन्दाग्नि से पाचन करने की क्रिया को दोला यन्त्र कहा है।

स्वेदन यंत्र

साम्बुस्थाली मुखे बद्धे वस्त्रे स्वेद्यं निधाय च।
विधाय पच्यते यत्र तद्यत्रं स्वेदनं स्मृतम्।।

(र.रा.प., र.रा.सुं, र.रा.महो.)

अर्थात- जिस पात्र में स्वेदन करना होवे उसमे जल भर कर मुख पर कपड़ा बांध देवे और उस पर जिस पदार्थ को सेवन करना होवे उसे रखकर ऊपर से शकोरा या हाँड़ी से मुख बन्द कर अग्नि से पचावे उसको स्वेदन यन्त्र कहते हैं!

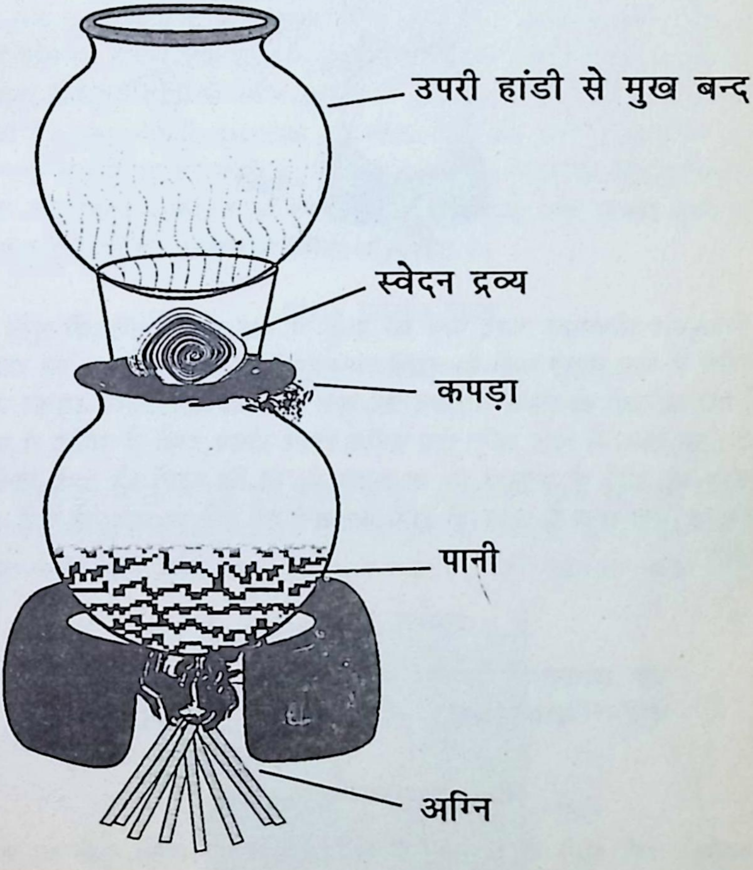

विद्याधर यन्त्र

स्थालिकोपरि विन्यस्य स्थालीं सम्यग्निरोधयेत्।
स्थालीमूर्द्ध्नि जलं दत्त्वा वह्निं प्रज्वालयेदधः।।
एतद्विद्याधरं यंत्रं पातनायन्त्रमित्यपि।।

(रसेन्द्र सारसंग्रह, रसरत्न समु.)

अर्थात- हाँड़ी के मुख पर हाँड़ी रखकर (हाँड़ी के ऊपर हाँड़ी) भली-भाँति कपरोटी करे और ऊपर की हाँड़ी में जल भरकर नीचे से आंचलगावे इसको विद्याधर यन्त्र और पातन यन्त्र भी कहा है।

चित्रानुसार औषधयुक्त पारद नीचे की हांड़ी में रखा होता है जिसको चूल्हे पर रखकर नीचे से आग जलाई जाती है। उसके ऊपर दूसरी हांड़ी पानी से भर कर रख दी जाती है तथा संन्धियों को लेहस कर बन्द कर दिया जाता है। ताकि पारद उड़कर बाहर न निकले। इस क्रिया में पारद अग्नि द्वारा जारित होकर औषध द्रव्यों के संयोग से पातन होकर ऊपर की हांड़ी के तलभाग पर जा लगता है। जो कि उसमें भरे ठण्डे पानी से तलभाग ठण्डा बना रहता है; ऊपर की हांड़ी का पानी गर्म होने पर यन्त्र को नीचे उतार लेना चाहिए।

डमरु यन्त्र

यत्र स्थाल्युपरि स्थालिं न्युब्जां दत्त्वा निरुध्यते।
यन्त्रं डमरुकाख्यं तद्रसभस्मकृते हितम्।।

(र.र.समु. र.रा.प.)

अर्थात- जहाँ हांड़ी के ऊपर उल्टी हांड़ी को रखकर (दोनो मुखो के सम्पुट मिलाकर) रखा जाता है, उसको डमरु यन्त्र कहते हैं।

अथवा लौह आदि के दो पात्र बनवाकर जिनके मुख एक दूसरे में फँसकर बैठते हों,। ऐसा डमरु यन्त्र बनवाकर काम में लावें।

चित्र–1

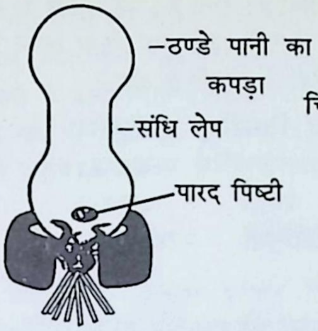

चित्र–2

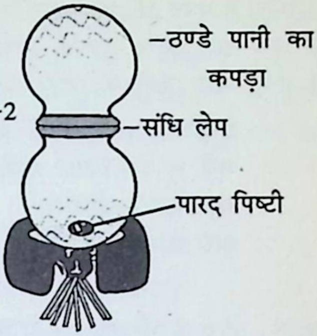

इस यन्त्र में औषधि युक्त पारद को नीचे की हांड़ी में रखकर फिर यन्त्र विधि से मुख बन्द कर उसे चूल्हे पर चढ़ाकर अग्नि जलाते है - ऊपर को लगी औंधी हांड़ी पर ठण्डे पानी का कपड़ा रखा जाता है। जिसे जल्दी-जल्दी बदलते रहना होता है। इस क्रिया में पारद नीचे की हांड़ी से अग्नि द्वारा पातन होकर ऊपर की हांड़ी के तल भाग में जा लगता है। डमरु यन्त्रादि इस प्रकार की क्रिया विधि कई रूपों से पारद की उर्ध्वपातन क्रिया के रूप में अपनाई जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य पारद को औषधि गणों के साथ जारण कर उसका उर्ध्वपातन कर पुनः प्राप्त करना होता है; अतः साधक अपने विवेक से भी यन्त्र स्वरूपो की कल्पना कर कार्य ले सकता है।

अधः पातन यन्त्र

अथोर्ध्वभाजने लिप्तस्थादितस्य जले सुधीः।
दीप्तैर्वनोपलैः कुर्यादधःपातं प्रयत्नतः।।

(र.र.स.)

अर्थात- ऊपर के रखे हुए बासन के तले में औषधि युक्त पारद की पिष्टिलेपकर तथा नीचे के पात्र में जल भर कर दोनो के मुख को कपरौटी से बन्द कर देवें तदनंतर विद्वान मनुष्य यत्न पूर्वक जलते हुए अरने कंडो से "रस" को अधः पातन करे।

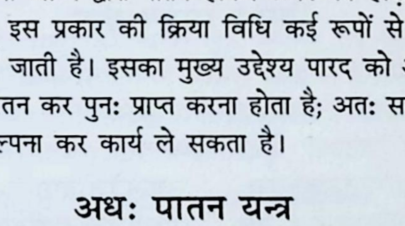

इस अधः पातन यन्त्र में नीचे की हांड़ी को जमीन में हांड़ी के समान गड्ढा खोदकर हांडी को जमीन में बैठा दिया जाता है। फिर दूसरी हांड़ी जो ऊपर औंधी लगी होती है। जिसके तलभाग में पारद औषधि मिश्रकपिष्टी लेपी हुई होती है। वह जमीन के ऊपर रहती है। उसके चारों तरफ अग्नि जलायी जाती है। जिससे हांड़ी तप्त होकर अपने पैंदे में लगे पारद का अधः पातन नीचे की पानी भरी हांड़ी में करती है और–

पूर्वोक्तां स्थालिकां सम्यग् विपरीतां तुपङ्किले।
गर्ते तु स्थापितां भूमौ ज्वालयेन्भूर्ध्नि पावकम्।।
यामत्रितयपर्यन्तमधः पतति पारदः।
अधःपातन यंत्रोयं कीर्तितो रसवेदिना।।
(र.प.)

अर्थात- कीच से भरे हुए गड्ढे में एक हांड़ी को रख और दूसरी हांड़ी को (जिसके तले पर रस की पिष्टी लगाई गई हो) उल्टा कर नीचे की हांड़ी के मुख से मुद्रित करें और ऊपर से तीन प्रहर की आंच देवे तो पारद का अधः पातन (नीचे गिरता) होता है। बस इसीको रसाचार्यो ने अधः पातन कहा है।

तिर्यक पातन यन्त्र

क्षिपेद्रसं घटे दीर्घे नताधोनालसंयुते।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु।।
तत्र रुद्ध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरधः।
अधस्ताद्रसकुंभस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम्।।
इतरस्मिन्घटे तोयं प्रक्षिपेत्स्वादुशीतलम्।
तिर्यक्पातनमेतिद्धि वार्त्तिकैरभिधीयते।।
(र.र.स.र.रा.प.)

अर्थात- जिस घड़े की गर्दन लम्बी हो उस गर्दन के नीचे एक लंबी नाल लगी हो। ऐसे घड़े में औषधयुक्त पारद को डालकर उस घड़े की नाल को दूसरे घड़े के पेट में छेदकर लगा देवे। तदनन्तर दोनों घड़ो के मुख को तथा अन्य सन्धियो को कपरौटी से बन्दकर उस घड़े के नीचे आंच जलावे जिसमें पारद भरा होवे। और दूसरे घड़े में प्रथम ही मीठा ठण्डा पानी भर देवें वार्तिककारो ने इस यन्त्र को तिर्यकपातन यन्त्र कहा है।

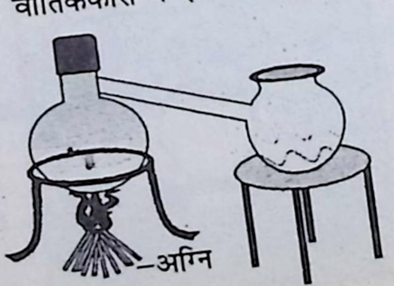

इस तिर्यक पातन यन्त्र में दो सम्पुट पात्रों को एक नलिका है। पारद युक्त सम्पुट पात्र के नीचे अग्नि जलाई जाती है तथा पात्र में जल भरा होता है। अथवा उसे बाहर से भी जल अभिषेक सकता है। इस प्रकार तप्त पात्र से पारद पानी भरे ठण्डे पात्र में पातन यन्त्र नाम से जाना जाता है। तथा पारद की तिर्यकपातन हुआ है। इस यंत्र में पारद क्षय होने का भय कम रहता है। इसी कल्पनाओं से कार्य करे।

कच्छपयंत्र

खर्परं पृथुकं सम्यग् विस्तृतं तस्य
आलवालं ततः कृत्वा तन्मध्ये पारदं
उर्ध्वाधस्तु विडं दत्त्वा मल्लेनारुध्य
उर्ध्वं देयं पुटं तस्य यन्त्रं
जारणार्थं रसस्योक्तं गन्धादीनां

अर्थात- प्रथम चपटा मिट्टी का खपरा लेना चाहिए विस्तृतथामला बनावे और उस थामले में पारद को रखे पारद के शकोरा से ढांक देवे और सन्धिलेप कर ऊपर से आंच जलावे के लिये यह कच्छप यंत्र कहा है और–

लोहमूषाद्वयं कृत्वा
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र
मूषायां रसयुक्तायाम् अन्यस्यां तां
तोयं स्यात् सूतकस्याधः

अर्थात- बारह अंगुल व्यास का दो लोहे का मूषा एक मूषा में गन्धक भर दे और दूसरे मूषा में (जो पहले वाले मूषा को उसी में प्रवेश कर दे, इसके बाद पारद में इन दोनो मूषाओं को भरकर ऊपर से एक दूसरा पात्र नीचे उपलों की आग जलावे, यह एक प्रकार का

इस प्रकार कच्छपादि जारण यन्त्र के अनेक वर्णन शास्त्रों में उल्लेंखित है। मुख्यतः इस यन्त्र में किया जाता है। जिससे पारद कार्योपयोगी सिद्ध विशेषता यह होती है कि पारद जिस किसी भी के साथ संयुक्त होकर जारण होता है। यंत्र से को मैंने स्वयम जाना हैं तथा गन्धकादि के साथ

दिया जाता
दूसरे सम्पुट
डा किया जा
जिसे तिर्यक
उपयोगी सिद्ध
अन्य और भी

॥
।
., र.रा.सं.)
त्तर खपरे के बीच में
ार तथा नीचे विड देकर
ारद में गन्धकादि जारण

।
।।
।
।।
(रसार्णव)

कर छोटे-छोटे छिद्रयुक्त
ा हो) में पारद भरकर पहले
आधे जल से भरे हुए भाण्ड
सन्धि लेपकर दें और ऊपर
विधिरूप है।

की रचनात्मक विधियों का
द्रव्यो का जारण पारद के साथ
ता है। इस यन्त्र की मुख्यंतः
जारण हेतु रखा जाता है। उसी
आता इस यंत्र की उपयोगिता
जारण कर्म भी किया है।

इस अधः पातन यन्त्र में नीचे की हांड़ी को जमीन में हांड़ी के समान गड्ढा खोदकर हांडी को जमीन में बैठा दिया जाता है। फिर दूसरी हांड़ी जो ऊपर औंधी लगी होती है। जिसके तलभाग में पारद औषधि मिश्रकपिष्टी लेपी हुई होती है। वह जमीन के ऊपर रहती है। उसके चारों तरफ अग्नि जलायी जाती है। जिससे हांड़ी तप्त होकर अपने पैंदे में लगे पारद का अधः पातन नीचे की पानी भरी हांड़ी में करती है और–

पूर्वोक्तां स्थालिकां सम्यग् विपरीतां तुपङ्क्लिे।
गर्ते तु स्थापितां भूमौ ज्वालयेन्भूर्ध्नि पावकम्।।
यामत्रितयपर्यन्तमधः पतति पारदः।
अधःपातन यंत्रोयं कीर्तितो रसवेदिना।।

(र.प.)

अर्थात- कीच से भरे हुए गड्ढे में एक हांड़ी को रख और दूसरी हांड़ी को (जिसके तले पर रस की पिष्टी लगाई गई हो) उल्टा कर नीचे की हांड़ी के मुख से मुद्रित करें और ऊपर से तीन प्रहर की आंच देवे तो पारद का अधः पातन (नीचे गिरता) होता है। बस इसीको रसाचार्यो ने अधः पातन कहा है।

तिर्यक पातन यन्त्र

क्षिपेद्रसं घटे दीर्घे नताधोनालसंयुते।
तन्नालं निक्षिपेदन्यघटकुक्ष्यन्तरे खलु।।
तत्र रुद्ध्वा मृदा सम्यग्वदने घटयोरधः।
अधस्ताद्रसकुंभस्य ज्वालयेत्तीव्रपावकम्।।
इतरस्मिन्घटे तोयं प्रक्षिपेत्स्वादुशीतलम्।
तिर्यक्पातनमेतिद्धि वार्त्तिकैरभिधीयते।।

(र.र.स.र.रा.प.)

अर्थात- जिस घड़े की गर्दन लम्बी हो उस गर्दन के नीचे एक लंबी नाल लगी हो। ऐसे घड़े में औषधयुक्त पारद को डालकर उस घड़े की नाल को दूसरे घंड़े के पेट में छेदकर लगा देवे। तदनन्तर दोनों घड़ो के मुख को तथा अन्य संन्धियो को कपरौटी से बन्दकर उस घड़े के नीचे आंच जलावे जिसमें पारद भरा होवे। और दूसरे घड़े में प्रथम ही मीठा ठण्डा पानी भर देवें वार्तिककारो ने इस यन्त्र को तिर्यकपातन यन्त्र कहा है।

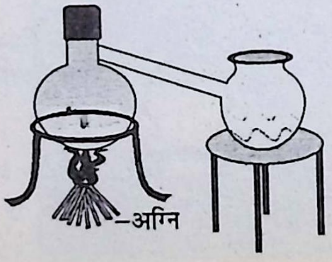

इस तिर्यक पातन यन्त्र में दो सम्पुट पात्रों को एक नलिका द्वारा जोड़ दिया जाता है। पारद युक्त सम्पुट पात्र के नीचे अग्नि जलाई जाती है तथा नलिका से जुड़े दूसरे सम्पुट पात्र में जल भरा होता है। अथवा उसे बाहर से भी जल अभिषेक कर ठण्डा किया जा सकता है। इस प्रकार तप्त पात्र से पारद पानी भरे ठण्डे पात्र में आता है। जिसे तिर्यक पातन यन्त्र नाम से जाना जाता है। तथा पारद की तिर्यकपातन क्रियाओं में उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस यंत्र में पारद क्षय होने का भय कम रहता है। इसी प्रकार अन्य और भी कल्पनाओं से कार्य करे।

कच्छपयंत्र

खर्परं पृथुकं सम्यग् विस्तृतं तस्य मध्यतः।
आलवालं ततः कृत्वा तन्मध्ये पारदं क्षिपेत्।।
उर्ध्वाधस्तु विडं दत्त्वा मल्लेनारुध्य यत्नतः।
उर्ध्वं देयं पुटं तस्य यन्त्रं कच्छपसंज्ञकम्।।
जारणार्थं रसस्योक्तं गन्धादीनां विशेषतः।।

(टो.न., र..रा.सं.)

अर्थात- प्रथम चपटा मिट्टी का खपरा लेना चाहिए तदनंतर खपरे के बीच में विस्तृतथामला बनावे और उस थामले में पारद को रखे पारद के ऊपर तथा नीचे विड देकर शकोरा से ढांक देवे और सन्धिलेप कर ऊपर से आंच जलावे पारद में गन्धकादि जारण के लिये यह कच्छप यंत्र कहा है और–

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गन्धकसंयुताम्।।
मूषायां रसयुक्तायाम् अन्यस्यां तां प्रवेशयेत्।
तोयं स्यात् सूतकस्याधः उर्ध्वाधोवह्निदीपनम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- बारह अंगुल व्यास का दो लोहे का मूषा तैयार कर छोटे-छोटे छिद्रयुक्त एक मूषा में गन्धक भर दे और दूसरे मूषा में (जो पहले से बड़ा हो) में पारद भरकर पहले वाले मूषा को उसी में प्रवेश कर दे, इसके बाद पारद को आधे जल से भरे हुए भाण्ड में इन दोनो मूषाओं को भरकर ऊपर से एक दूसरा पात्र रखकर सन्धि लेपकर दें और ऊपर नीचे उपलों की आग जलावे, यह एक प्रकार का तुलायन्त्र विधिरूप है।

इस प्रकार कच्छपादि जारण यन्त्र के अनेक स्वरूपों की रचनात्मक विधियों का वर्णन शास्त्रों में उल्लेंखित है। मुख्यतः इस यन्त्र में गंधादि द्रव्यो का जारण पारद के साथ किया जाता है। जिससे पारद कार्योपयोगी सिद्ध हो जाता है। इस यन्त्र की मुख्यतः विशेषता यह होती है कि पारद जिस किसी भी द्रव्य के जारण हेतु रखा जाता है। उसी के साथ संयुक्त होकर जारण होता है। यंत्र से बाहर नहीं आता इस यंत्र की उपयोगिता को मैंने स्वयम जाना हैं तथा गन्धकादि के साथ पारद का जारण कर्म भी किया है।

यह यंत्र विशिष्ट क्रियाभेदों से जुड़ा होने के कारण दीक्षित-रस-वेत्ताओं द्वारा ही जाना जाता है। फिर भी मैं सुलभ रूप से कच्छपादि जारण यन्त्र का स्वरूप यहाँ प्रस्तुत करता हूँ-

मुख्य रूप से इस कच्छपादि जारण यन्त्र को समझने के लिये दो बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। 1. पारद संयुक्त गन्धकादि जारण पदार्थ के ऊपर अग्नि होती है। परन्तु उस अग्नि और पारद संयुक्त जारण पदार्थ के मध्य एक कवच स्थापित किंया जाता है। जो अपने ऊपर की अग्नि से तापित होकर पारद संयुक्त गन्धकादि जारण पदार्थ को जारण करता है। 2. जारण पदार्थ पारद संयुक्त हुआ धीरे-धीरे जारित होता हुआ नीचे के तल भाग से जल के स्पर्श से होने के कारण पारद वही पर ठहरा (स्थिर) हुआ जारण होता रहता है; जो बुद्धिमान इस प्रकार रस कर्म का जारण करता है वह निश्चय ही रस क्रियाओं में सफलता प्राप्त करता है। अपने विवेक से इस प्रकार के अन्य रस जारणादि यन्त्रों की कल्पना से भी कार्य करें।

सोमानल एवं जल यन्त्रादि की जो कल्पना शास्त्रों में की गई है। उसके स्वरूपों का वर्णन शास्त्रोक्त करना भी उचित है। यथा-

सोमानल यन्त्र

ऊर्ध्व बह्निरधश्चापः मध्ये तू रस-संग्रहः।
सोमानलमिदं प्रोक्तं जारयेद्गनादिकम्।।

(र.र.स.)

अर्थात- जिस यन्त्र के ऊपर अग्नि तथा नीचे जल और बीच में पारद की सामग्री हो उसको सोमानल यन्त्र कहा है। इस यन्त्र में अभ्रकादि का जारण होता है।

जलयन्त्र

अधस्ताप उपर्यापो मध्ये गन्धकपारदौ।
यदि स्यात्सुदृढा मुद्रा मंदभाग्योपि सिध्यति।।
यदि कार्यमयोयंत्रं तदा तन्मृत्स्नया लिपेत्।।

(रसेन्द्र चि, रस.ा.प.र.रा.सुं.)

अर्थात्- पारद और गन्धक को सम्पुट के बीच में रखकर ऊपर जल तथा नीचे से अग्नि को रखे तो उसको जल यन्त्र कहते है। यदि इस यन्त्र की मुद्रा दृढ़ हो तो मन्द भाग को भी सिद्धि हो जाती है यदि लोहे का यन्त्र बनाया जाय तो मिट्टी का लेप करना चाहिए।

मदन मुद्रा आदि का प्रयोग जल यन्त्र में किया जाता है। जिसे रस ज्ञाता शाम्भवी

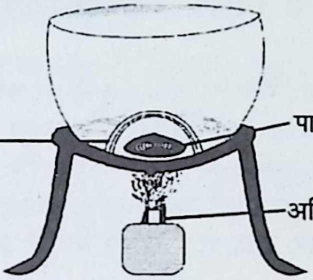

मुद्रा भी कहते है।

इस जल यन्त्र में ऊपर जल नीचे अग्नि और मध्य में पारद युक्त गंधकादि की पिष्टी रख जारण किया जाता है। अगर जल मुद्रा दृढ़ होवे तो इस यन्त्र क्रिया विधान द्वारा शीघ्र ही पारद का जारण हो जाता है। इसमें संशय नही करना चाहिए। यन्त्र की सफलता के लिये मदन मुद्रा ही मुख्य रूप से सिद्धि की दाता होती है। अतः भलीभांति मदन मुद्रा को बनाकर रखना चाहिये उसके बाद बड़ा कटोरा लेकर अथवा मिट्टी का बना गहरा खपरा अथवा चौड़े मुख वाली हांड़ी जो पक्की मिट्टी की बनी होवे। उसके पेंदे में पारद सामग्री रखकर ऊपर से भलीभांति जल मुद्रा (मदन मुद्रा) जमावें। तदनंतर चूल्हे पर चढ़ा कर नीचे से मन्दाग्नि जलावे ऊपर पात्र में ठण्डा जल भर देवे ऐसे तीन पहर की अग्नि देवे तो पारद भस्म होवे।

इष्टका यन्त्र

मध्ये गर्तसमायुक्तामिष्टकां कारयेद्भिषक्।
गर्ते चैव समास्थाय तस्यां सूतादिकं न्यसेत्।।
दत्त्वोपरि शरावं च संधिं मृल्लवणैर्लिपेत्।
तदूर्ध्वं सिकतां किंचिद्दद्यादेवं पुटं लघु।।
इष्टकायन्त्रमेताद्धि जारयेद्गंधकादिकम्।।

एक ऐसी ईंट बनावे जिसके बीच में एक गड्ढा होवे, अर्थात ईंट लेकर उसके मध्य में एक गड्ढा करे। उसमें पारदादि जारण पदार्थ रख ऊपर से एक शकोरा से ढंक संधि को भलीभांति राख और नोन से लीप देवे तदनंतर ईंट को गड्ढे में रख ऊपर से बालू रेत बिछा देवे फिर अरने कंडो की मन्द आग से पुट पाक करे, इष्टका यन्त्र नाम से यह गन्धकादि

को जारण करता है।

हंसपाक यन्त्र का निरूपण

खर्परं सिकतापूर्णं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत्।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत्।।
पंचक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणैश्च विडन्ततः।
हंसपाकः स विज्ञातो यन्त्रतत्त्वार्थकोविदैः।।

(रसार्णव)

एक मिट्टी के (खर्पर) नांद में बालू भर कर चूल्हें पर चढ़ावे। फिर एक दूसरे खर्पर (मिट्टी का मजबूत पात्र) में पंचक्षार अष्टमूत्र तथा पंच लवण युक्त विड तथा पारद को भरकर बालुका युक्त खर्पर पर रखदेवे और दूसरे से ढ़क देवे इसके बाद धीरे-धीरे मन्द आंच से पकावे, इसको यन्त्र तत्त्व जानने वाले विद्वान हंसपाक यन्त्र कहते है। मिट्टी के दोनो पात्रो को कपड़ मिट्टी कर सुखा लेना चाहिए बाद में अग्नि पर चढ़ावे!

गर्भयन्त्र

गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिका भस्मकारणम्।
चतुरंगुलदीर्घा तू मूषिकां मृन्मयीं दृढ़ाम्।।
त्र्यङ्गुलां मध्य विस्तारे वर्त्तुलं कारयेन्मुखम्।
लोहस्य विंशतिर्भागा एको भागस्तु गुग्गुलोः।।
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तू तोयं दद्यात् पुनः पुनः।
मूषालेपं ततः कुर्य्यात् तले पिष्टीं च निक्षिपेत्।।
तुषकर्षाग्निना भूमौ मृदुस्वेदन्तु कारयेत्।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत्।।

(रसार्णव)

अर्थात- पिष्टी बनाए हुए पारद को भस्म बनाने वाला गर्भयन्त्र चार अंगुल लम्बी तथा तीन अंगुल मध्य की व्यास वाली चौड़ी मिट्टी की मजबूत वटुली के आकार के गोल मुख वाली मूषा बनावे। उसमें लोहा या लोण (सैंधानमक) बीसभाग तथा गुग्गुल एक भाग लेकर बार-बार उसमें जल मिलाकर महीन पीस लेवें और उससे मूषा पर लेप करे तथा सुखा लेवे। इसके बाद मूषा के तल में पारद की पिष्टी रख जमीन के ऊपर (कपोट पुट के द्वारा) धान की भूसी तथा उपलो की आग से मृदु स्वेदन करे, इस प्रकार एक दिन रात या तीन दिन रात में पारद भस्म हो जाता है।

बालुका यन्त्र

भांडे वितस्तिगंभीरे मध्ये निहितकूपिके।
कूपिकाकंठपर्यंतं बालुकामिश्च पूरितम्।।
भेषजं कूपिकासंस्थं वह्नितो यत्र पच्यते।
बालुकायन्त्रमेतद्धि यत्र तत्र बुधैः स्मृतम्।।

(र.रा.म., र.रा.सुं.,)

अर्थात- एक वालिस्त गहरे बासन के बीच शीशी को रखकर इतना बालू रेत भरें कि शीशी का गला रेत में डूब जावे और दवाई को (जारण औषध) को पूर्वतः शीशी में भर देवे। फिर अग्नि से पकावे इसे वालुका यन्त्र कहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि आतिशी शीशी औषधयुक्त कपड़ मिट्टी से मजबूत कर उसे बालू भरी नाद में गाड़ दिया जाता है। फिर उस नांद को अग्नि पर रखकर गर्म किया जाता है। बालू के स्वेदन से शीशी में रखा पारद गन्धकादि चूर्ण पकता है।

लवण यन्त्र में बालू के स्थान पर नमक का प्रयोग किया जाता है

भूधरयंत्र

बालुकागूढसर्वांगां गर्ते मूषां रसान्विताम्।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यंत्रं तद् भूधराह्वयम्।।

(र.सा.सं., र.रा.म.)

अर्थात- मिट्टी की मूषा में पारदभर कर गड्ढे में रख ऊपर से बालू रेत भर देवे और रेत के ऊपर अरने कड़ो (उपलो) की आँच देवे वस इसी को भूधर यन्त्र कहते है।

भूधर यन्त्र का प्रयोग गन्धक पारद की अन्तर्धूम जारणा कूपी पक्व रसायन बनाने में की जाती है। पहले एक हत्थे भर गहरा जमीन में गड्ढा खोदे जिसका व्यास भी लगभग हाथ भर का होवें इसके बाद फिर उसके मध्य में एक और गहरा गड्ढा कूपी जिसमें आ जावे खोदे। फिर ऊपर से बालू व नमक भरकर फिर उस गड्ढे में गजपुट की आंच देकर रस पकाया जाता है। मुख्यतः इस यन्त्र में जारण की जाने वाली सामग्री कूपी आदि में बन्द जमीन में अन्दर रखी जाती है। और ऊपर से नमक बालू की दाब देकर उसके ऊपर अग्नि जलाई जाती है।

इंस प्रकार रससिद्धि के लिये अपनी बुद्धि से विद्वान अनेक प्रकार के यन्त्रों द्वारा पारद को अग्नि में स्थापित करने की दृष्टि से बनावे तथा यन्त्र स्वरूपों को ध्यान में रखते हुए रस कर्म में रस क्षय का विचार करने से निश्चय ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। रसक्षय का विचार किये बिना कार्य करने वाला साधक कभी सिद्ध नही होता तथा अपना समय और धन दोनो ही बर्बाद कर कंगाल हो जाता है। ऐसा निश्चय जानना चाहिए।

रसकर्म में रसक्षय का विचार

वह्निलक्ष्यमविज्ञाय रसस्यार्द्धक्षयो भवेत्।
यन्त्रक्षयविधिज्ञस्य चतुर्थांशक्षयो भवेत्।।
द्विमासेन द्वितीयांशं तृतीयांशं त्रिभिर्भवेत्।
महाग्निं सहते ह्येष सारितो यत्र तिष्ठति।।

(रसार्णव)

अर्थात- जहाँ पर मृदु मध्य तथा तीव्राग्नि का विचार किये बिना ही रस कर्म किया

जाता है वहाँ आधा पारद नष्ट हो जाता है। यन्त्र के क्षय विधि को जानने वाले का पारद एक चौथाई नष्ट हो जाता है। दो माह तक रसकर्म करते रहने पर पारद का द्वितीयांश, तथा तीन माह तक रस कर्म करते रहने पर तृतीयांश पारद नष्ट हो जाता है। जहाँ नदी होती है अर्थात पर्याप्त जल रहता है वहां पर यह पारद तीव्राग्नि को भी सहन करता है। अर्थात- मन्दाग्नि द्वारा रस कर्म सर्वथा प्रशस्त है। जल प्रदेश में तीव्राग्नि द्वारा भी रस कर्म करने से विशेष हानि नही होती!

मूषा भेद निरूपण

मूषा हि कौंचिका प्रोक्ता कुमुदी करहाटिका।
पाचनी वह्निमित्रा च रसवादिभिरिष्यते।।

(इति नामानि) (र.र.स.)

मूषा (घरिया) क्रोन्चिका, कुमुदी, करहाटिका, पाचनी, वह्निमित्रा ये मूषा के नाम रसविद्या के ज्ञाताओं ने कहे है।

मुष्णाति दोषान्मूषा या सा मूर्षेति निगद्यते।। (इति व्युत्पत्तिः)

(र.र.स.)

अर्थात- जो पदार्थो के दोषो को हर लेती है उसको मूषा कहते हैं।

उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लोहमेव च।। (इति कारणम्)

(र.र.स.)

अर्थात- और उस मूषा का उपादान कारण लोह तथा मिट्टी है।

सम्पुटमान

सम्पुटं सूततुल्यं स्याच्छास्त्रदृष्टेण कर्मण।।

(र.रत्नाकर)

अर्थात- रसशास्त्रोक्त कर्म से पारद के सम्पुट कार्य करे।

मूषादिउपयोगी मिट्टी

चिक्कणा पिच्छिली गुर्वी कृष्णा मृत्सर्वपूजिता।
पीता वा तद्गुणैर्युक्ता सिकतादिविवर्जिता।।

(शैवाल भक्ष, टो.न.)

अर्थात- जो काली मिट्टी चिकनी और भारी होवे, वह सर्वोत्तम है। या चिकनी तथा भारी मिट्टी हो, वह भी उत्तम है। रेतीली दोमट आदि मिट्टी उपयुक्त नही हैं।

मूषा प्रशंसा

मूषामुखविनिष्क्रान्ता वरमेकापि काकणी।
दुर्जनप्रणिपातेन धिग्लक्षपि मानिनाम्।।

(र.र.स.)

मूषा के मुख से निकली हुई (भस्म होकर) एक कौड़ी भी उत्तम है। किन्तु दुर्जन की वन्दना करने से प्राप्त हुए लक्ष रूपये भी मनीषियों के लिये हेय है,।

वज्रमूषा

द्वो भागौ तुषदग्धस्य चैका वल्मीकमृत्तिका।
लौहकिट्टस्य भागैकं श्वेतपाषाणभागिकम्।।
नरकेशं समं पञ्च छागीक्षीरेण पेषयेत्।
याममात्रं दृढं पश्चात्तेन मूषां प्रकल्पयेत्।।
शोधयित्वा तु संलिप्य तत्कल्कैं संधिलेपनम्।
वज्रमूषेयमाख्याता सम्यक् पारदसाधिका।।

(रसेन्द्र सा.स., र.रा.सुं, र.रत्नाकर, टो.नं)

अर्थात- दो भाग तुष भस्म एक भाग वाल्मीकी (वमई) की मिट्टी, एक भाग लोहे को कीट, एक भाग सेलखरी, एक भाग मनुष्य के बाल इन पांचो को एक प्रहर बकरी के दूध में घोटे फिर उसकी मूषा बनावे उसको घाम (धूंप) में सुखाकर फिर उसी मिट्टी के कल्क केल्हेस से संधि का लेप करे। बस यही पारद मारण के लिये वज्रमूषा कही है, और–

मृदस्त्रिभागाः शणलद्विभागौ भागश्च निर्दग्धतुषोपलादेः।
किट्टार्धभागं परिखण्डच्य वज्रभूषां विदध्यात्खलु सत्त्वापाते।।

(र.र.स.)

अर्थात- मिट्टी के तीन भाग सनई और लीद के दो भाग जले हुए भूसे का एक भाग श्वेत पत्थर का एक भाग, मण्डूर का आधा भाग इन सबों को भलीभांति कूटकर धातु-आदि के सत्त्वपातन के लिये मूषा तैयार करें, इसे वज्रमूषा कहते हैं और–

वल्मीकीमृत्तिकाभागं गवास्थितुषभस्मनोः।
भागं रसं समादाय वज्रमूषा विरच्यते।।

(कामरत्न)

वमई की मिट्टी एक भाग गाय की हड्डी तथा तुष भस्म एक भाग को पानी से मिलाकर वज्रमूषा बनाई जाती है।

गारा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीकमृत्तिका।
चीरमङ्गारकः किट्टं वज्रेणापि न भिद्यते।।

(रसार्णव)

दग्ध (जलाई हुई) पथरीली मिट्टी तथा वल्मीक मृत्तिका, कपड़ा तथा अंगारक (कोयला) तथा किट्ट के द्वारा बनाई गई मूषा वज्र से भी नहीं टूटती और–

दग्धाङ्गारस्य षड्भागा भागैका कृष्णमृत्तिका।

चीरमङ्गारकः किट्टं वज्रमूषा प्रकीर्तिता।।

(रसार्णव)

दग्ध अंगारक (कट सरैया या भृंगराज) छः भाग काली मिट्टी एक भाग, कपड़ा, अङ्गारक तथा किट्ट एक एक भाग इन सबो से निर्मित मूषा वज्रमूषा कही जाती है।

योगमूषा

दग्धागारतुषोथेता मृत्स्ना वल्मीकमृत्तिका।
तत्तद्विडसमायुक्ता तत्तद्विडविलेपिता।।
तथा या पिहिता मूषा योगमूषेति कथ्यते।
अनया साधितः सूतो जायते गुणवत्तरः।।

(र.र.स.)

अर्थात- कोयले, तुष भस्म, बमई की मिट्टी तथा जिनसे सूत जारण होता है उन विडो से युक्तकर मूषा बनावे उन्ही विडो से मूषा को ल्हेष देवे तो उसको योगमूषा कहते हैं इससे सिद्ध किया हुआ पारद अधिक गुणवान होता है।

वरमूषा

तुषं वस्त्रसमं दग्धं मृत्तिका चतुरंशिका।
कूपी पाषाणसंयुक्ता वरमूषा प्रकीत्तिता।।

(रसार्णव)

अर्थात- कपड़ा के समभाग दग्ध भूसी, मृत्तिका चार भाग तथा पत्थर चूर्ण इन सबो को मिलाकर निर्मित कूपी (बोतल के आकार की मूंसा) को वरमूषा कहा है और-

वज्राङ्गारतुषास्तुल्यास्तच्चतुर्गुणमृत्तिका ।
गारा च मृत्तिका तुल्या सर्वैस्तैर्विनिर्मिता।।
वरमूषेति निर्दिष्टा याममग्निं सहेत सा।।

(र.र.स.)

अर्थात- थूहर की लकड़ी के कोयले (या उनकी राख) और तुषों की राख ये दोनों समान भाग लेकर तथा इन दोनों से चौगुनी काली मिट्टी तथा मिट्टी के बराबर गारा (तालाब या पोखर की मिट्टी) इन सबके द्वारा बनाई गई मूषा को वरमूषा कहते है; यह एक प्रहर की अग्नि को सहन कर सकती है।

वर्णमूषा

पाषाणरहिता रक्तारक्तवर्णानुसाधिता।
मृत्स्नया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता।।
वर्णमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते।।

(र.र.स.)

अर्थात्- बिना कंकर की मिट्टी को कसूम, खेरसार, लाख, मजीठ, रतनजोत, लाल चंदन, गुलदुपहटिया और कपूर कचरी इनके क्वाथ तथा रस से एक तथा दो दिन तक घोट मूषा बनावै और उसके सूखने पर सुहागे का लेप कर अग्नि में पकावे उसे वर्ण मूषा कहते हैं। जब किसी धातु का उत्तम वर्ण करना हो तब इस मूषा का प्रयोग करना चाहिये।

भस्ममूषा

तिलभस्म द्विरंशं तु इष्टकांशमन्वितम्।
भस्म मूषा तु विज्ञेया तारसंशेधने हिता।।
मोचक्षरस्य भागौ द्वौ इष्टकांशसमन्वितौ।
मृद्भागास्तारशुद्ध्यर्थमुत्तमा वरवर्णिनि।।

(रसार्णव)

अर्थात्- तिल की लकड़ी का भस्म दो भाग ईट का चूर्ण एक भाग इनसे मिर्मित मूषा भस्ममूषा कही जाती है। और यह तार (रजत-चाँदी) का शोधन करने के लिये हितकर है। हे उत्तम वर्णवाली! केले का क्षार या संहिजने का क्षार दो भाग ईंट का चूर्ण एक भाग तथा मृत्तिका चार भाग से निर्मित मूषा रजत शुद्धि के लिये उत्तम होती है।

विडमूषा

तत्तद्भेदमृदोद्भूता तत्तद्विडविलेपिता।
देहलोहार्थयोगार्थं विडमूषेत्युदाहृता।।

(र.र.स.)

अर्थात्- जिस पृथ्वी में जिस प्रकार का लवण हो उसकी मिट्टी, मिट्टी से बनी हुई होवे और उसी विड से लिपी होवे। इसमें वह पदार्थ सिद्ध करना चाहिए जो कि शरीर को लोहे के समान दृढ़ करता हो। इसको विडमूषा कहते हैं। और-

विडवर्गेण सम्मिश्रा धृतिमिच्छति जारणे।
निर्वादृणं प्रकुर्व्वीत रक्तवर्ग प्रलिप्तया।।

विडवर्ग की औषधियों के संमिश्रण से निर्मित मूषा का जारण कर्म में प्रयोग करना चाहिए और रक्त वर्ग की औषधियों के कल्को का प्रयोग कर (लेपकर) मारण करना चाहिए।

मल्लमूषा

अन्यमूषा च कर्त्तव्या सुरभिस्तनसन्निभा।
विधानकसमायुक्ता किंचिदुन्नतमस्तका।।
निर्दिष्टा मल्लमूषा सा मल्लद्वितयसंपुटात्।
पर्पटचादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्तिता।।

(टो.न.)

अर्थात- दो मटका लेवे उनमें से एक के ऊपर मिट्टी लगाकर गौ के स्तन के आकार की मूषा बनावे तथा जिसका ऊपर का भाग कुछ उठा हो ऐसा ढ़कना हो उसको मल्ल मूषा कहते है। इसका मल्ल मूषा नाम रखने का कारण यह है कि मूषा दो मलसो के योग से बनती है। यह पर्पटी आदि रसों के स्वेदन के लिए श्रेष्ठ रहती है।

गोस्तनी मूषा

मूषा या गोस्तनाकारा शिखायुक्तिविधानिका।
सत्वानां द्रावणे शुद्धा मूषा सा गोस्तनी भवेत्।।

(र.र.स.)

अर्थात- जो मूषा गौ के स्तन के आकार वाली हो तथा जिसका ढ़कना चोटीदार होवे वह गौस्तनी नाम की मूषा सत्वों के पातन तथा शुद्धि में उत्तम है।

पक्व मूषा

कुलालभांडरूपा या दृढ़ा च परिपाचिना।
पक्वमूषेति संप्रोक्ता सा सर्वत्र विपाचने।।
सैव क्षुद्रा मता मंदा गंभीरा सारणोचिता।

(टो.नं.)

अर्थात- जो कुम्हार के बासन की सदृश आकृति वाली और दृढ़ पकाई हुई हो, उसको समस्त पदार्थो के सिद्ध करने के लिये पक्वमूषा कहते है। और वही मूषा छोटी और गहरी हो तो सारण के योग्य होती है।

मूषा के भेद स्वरूप तथा कार्य

प्रकाशा, चाऽन्धमूषा च मूषा तु द्विविध स्मृता।।
प्रकाशमूषा देवेशि शरावाकारसंयुता।
द्रव्यनिर्वाहणे सा च वादिकैः सुप्रशस्यते।।

(रसार्णव)

अर्थात- मूषा दो प्रकार की होती है। प्रकाशमूषा तथा अन्धमूषा।

प्रकाशमूषा

हे देवेशि! प्रकाशमूषा शराब (सकोरा) के आकार वाली होती है और रसाचार्यों के द्वारा द्रव्यों के जारण के लिये प्रशस्त बताई गई है।

अन्धमूषा

अन्धमूषा तु कर्त्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
पिधानक - समायुक्ता किञ्चिदुन्नतमस्तका।।
पत्रलेपे तथा रंगे द्वन्द्वमेलापके तथा।

सैव च्छिद्रान्विता मन्दा गम्भीरा सारणोचिता।।

(रसार्णव)

अर्थात- अन्धमूषा गाय के स्तन (थन) के समान बनानी चाहिए पिधानक (कार्क) से युक्त कुछ उत्तम मस्तक वाला होना चाहिए। इसका प्रयोग पत्र लेप, रंगना तथा दो द्रव्यों को मिलाने में उत्तम होता है। यही मूषा छिद्रयुक्त छोटी भारी सारण कर्म के लिये उत्तम होती है।

रक्तवर्गेण सम्भिश्रा रक्तवर्गपरिलुप्ता।
रक्तवर्गकृतालेपा सर्व्वशुद्धिषु शोभना।।

(रसार्णव)

रक्त वर्ग की औषधियों के संमिश्रण से निर्मित इनके रस में डुबोई हुई तथा इन्ही के कल्क से लेप लगाई हुई मूषा को सभी द्रव्यो की शुद्धि के लिये उत्तम जानना चाहिए!

मुद्रा निरूपण

भस्म मुद्रा

अतिस्वच्छं काष्ठं गृहीत्वा तुल्येन लवणचूर्णेन सह खल्वे सततं मर्दयेत्। यावन्नवनतीवत् शलक्ष्णं भवति तेन संधिमुखरोधादिकमतिदृढं भवति।। (र.स.प.)

अर्थात- लकड़ी की स्वच्छ भस्म (साफ राख) एक भाग लवण एक भाग इन दोनो को खरल में ड़ालकर पानी के साथ इतना घोटे जब तक माखन के समान चिकना न हो जावे अर्थात भलीभांति घोटकर माखन जैसा गाढ़ा करे तब उससे मुद्रा करे तो संधि मुख दृढ़ बंद होता है।

वज्रमुद्रा

खड़ीखादिरभस्मांबु लवणश्चाथवा ध्रुवम्।
कारीषभस्म लवणांवु द्वाभ्यां मुद्रा प्रकीर्तिता।।

(यो.चि.म.)

अर्थात- खड़िया, खैरसार, राख, पानी नोन, अथवा केवल राख, नोन, पानी से यह दोनों मिलाकर वज्र मुद्रा बनती है।

जलमुद्रा

तूलं च कलिका चूर्ण निरम्बुक्षीरमर्दितम्।
जलमुद्रेति कथिता कैश्चिवत्पारदवेदिभिः।।

(वृ०यो०)

अर्थात- सेमल की कुछ खिली हुई डोंडी और चूने को निपनियादूध से मर्दन कर मुद्रा करे तो इसे कुछ रसवैद्यो ने जलमुद्रा कहा है।

मदनमुद्रा - 1-2

नागेन्द्रभिक्थकमयोमलसर्ज्जिका-
भिर्लाक्षा च चुम्बक मधुफलभूर्जपत्रम्।
संकुटच्यमानमतसीफलतैलमिश्रं
श्रीपारदस्य मरणे मदनाख्यमुद्रा।।1।।

(यो.चि.म.)

1. अर्थात- सिन्दूर, मोम, लोह, कीट, सज्जी, लाख, चुम्बक पत्थर, महुआ फल, भोज पत्र इनको कूटकर अलसी के तैल में मिलावै, यह पारा मारने के लिये मदनमुद्रा कही गई है।

उदुम्बरार्कवटदुग्धपलं पलं च
लाक्षापलं पलचतुष्टयभूर्जपत्रम्।
संकुटच्य सर्वमतसीफलतैलमिश्रं
श्रीपारदस्य मरणे मदनाख्यमुद्रा।।2।।

(यो.चि.म.)

2 - अर्थात- गूलर का दूध, आख का दूध, वट वृक्ष का दूध एक-एक पल लेवें लाख एक पल और भोजपत्र चार पल लेवे इन सबको कूटकर अलसी के तैल में मिलावे, यह भी पारा मारने के लिये मर्दन मुद्रा है और-

सजानितं सिक्थकिट्टं पलं शुभ्रोपलं पलम्।
पलं सर्जरसं तैलेऽतसीजेभर्ज्जयेत्त्रयम्।।
भूर्जपत्ररजस्तत्र लोहकिट्टारजस्तथा।
पृथक् षट्शाणतुलितं प्रक्षिपेत्सर्वमेकतः।।
वज्रीक्षीरेण संमर्द्य गाढं तन्मदनोपमम्।
मुद्रेयं मदनाख्या च जलयन्त्रार्थमीरिता।।

(वृ.यो.)

अर्थात- जले हुए मोम की कीट एक पल सेलखरी एक पल, राल एक पल लेकर इन तीनो को अलसी के तैल में भूने फिर उसमें भोज पत्र का चूरा, लोह का चूरा, ये पृथक पृथक दो दो तोले मिलावे तदनंन्तर इन सबको थूहर के दूध में मोम के समान घोटे तो यह मदनाख्या मुद्रा जल यन्त्र के लिये उत्तम है।

रस निगड

स्नुह्यर्कसमं क्षीरं ब्रह्मबीजं च गुग्गुलुः।

सैन्धवं द्विगुणं मर्द्य निगडोयं महोत्तमः।।

(रसेन्द्रसार सं., र.चि.)

अर्थात- थूहर का दूध आक का दूध ढ़ाक के बीज गूगल और सैंधा नोन इन सबको मिलाकर पारद से दूना लेवे, फिर मर्दन करे तो यह उत्तम निगड बनता है। और-

पलाशबीजं निर्यासं कोकिलोन्मत्तवारिणा।
शूलिनोरससंयुक्तं पेषयेत्सैन्धवान्वितम्।।
पिष्टकावेष्टनं कृत्वा निगडेन तु बन्धयेत्।
मूषायां निगडे देवि लेपितं शिवशासनात्।
रसस्य परिणामोयं महदग्नौ स्थिरो भवेत्।।

(नि.र.)

अर्थात- ढ़ाक के बीज, ढ़ाक का गोंद, कोपल और सैंधा नोन को धत्तूर के रस और शूलनी (हींग) के रस से मर्दन करे और इसी निगड से पारे की पिष्टी को लपेटकर निगडयुक्त मूषा में बन्द करें और मूषा में उसी निगड का लेप भी करे तो यह श्री शिवजी की आज्ञा से पारद का अग्नि स्थाई परिणाम होता है। और-

द्विपदीस्वमूत्रेण सैंधवाभ्रं च गुग्गुलुम्।
पिष्टिं संवेष्टच्य कल्केन मृदा तु पुनरष्टधा।।
तुषां करीषाग्निना भूमौ मृदुस्वेदं तु कारयेत्।
अहोरात्रं. त्रिरात्रं वा पूर्ववत्खोटतां व्रजेत।।

(नि.र.)

अर्थात- सैन्धव अभ्रक तथा गूगल की बनवेरिया के रस से अथवा गौमूत्र से घोटकर उस कल्क से पारद की पिष्टी लेपकर फिर मिट्टी से आठ बार लेप करे तदनन्तर उस गोले को भूधर यन्त्र में रखकर करसी की आंच से दिन रात या तीन दिन तक मृदु सेवन करे तो पारद खोट होता है।

इस प्रकार शास्त्रोक्त वर्णित रूप में मुद्राएँ एवं निगड के स्वरूपों का जो वर्णन मिलता है। उन सबका तात्पर्य पारद मारण क्रियाओं का ही एक ऐसा रूप है। जिसमें पारद बिना उड़े अग्नि स्थाई होता है। निगड आदि में बंधा हुआ तथा औषधि विशेष योग से पिष्टि हुआ और धात्वादि स्वर्ण रजत ताम्र अभ्रकादि के संयोग से बंधा हुआ पारद मुद्राओं के द्वारा अग्नि स्थाई कर कार्य सिद्धि के लिये बनाया जाता है रस सिद्धि की मदन मुद्राएँ आदि पारदजारणादि की उत्तम विधियाँ होती है। इन क्रिया विधियों में पारद जल और अग्नि के मध्य स्थिर होकर औषध विशेष के संयोग से जारण होता हुआ उत्तम गुणों को प्राप्त होकर अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिये गुणवान हो जाता है। मृत सूतादि अनेक नामो से पारद का मारण इनमें होता है। गुणवान रसवैद्य जो मुद्राओं का ज्ञाता होता है वह पारद को उसी प्रकार रोक देता है। जैसे कि परकटा पक्षी लाख चेष्टाओं के बाद भी उड़ नही नही पाता है। अतः अपनी बुद्धि विवेक से भी मुद्राओं का

निर्माण कर पारद को जो वैद्य अग्नि में रोकना जानता है वह निश्चय ही रस सिद्धि को प्राप्त होता है। मैंने पारद की शोध क्रियाओं में मुद्राओं के महत्व को स्वयं अनूभूत रूप से जाना है। पारद धात्वादिक तत्त्वो के साथ मुद्रा विधि भेद से अग्नि से जारण होकर विशुद्ध एवं सक्रिय होकर उन्हें अपने में आत्म सात कर लेता है। फिर भस्म मुद्रादि भेद से जारण करने पर उत्तम रसौषध तैयार करने में समर्थ होता है। इस प्रकार के दोष रहित उत्तम रसौषध रोग नाशक एवं चिरायू दाता होते है। जिनकी सिद्धि का उपाय करने वाले वैद्यजन श्रेष्ठ रसाचार्य कहलाते है। देह एवं लौह दोनो प्रकार की सिद्धियाँ उन्हें निश्चय ही पारद से प्राप्त हो जाती है।

●

प्रकरण - 16

खेचर प्रकरण

खेचर शब्द का अर्थ शिव, विद्याधर, पारद, सूर्य आदि ग्रह, मेष आदि राशि, पक्षी, चिड़िया, घोड़ा वायु, देवता बादल राक्षस और (वि०-) आकाश गामी आदि रूपों में देखा जाता है। प्राच्य काल में मनीषियों ने अपने सूक्ष्म ज्ञान से पारद द्वारा खेचरी गुटिका का निर्माण कर आकाशगामी होने की शक्ति को भी प्राप्त कर लिया था, इस खेचरी गुटिका को मन्त्र सिद्ध योगों से विशिष्ट औषध संयोग के द्वारा पारद को बांध कर बनाया जाता था; जिसका अवधारण अनेक प्राच्य रस तन्त्रों से विदित होता है - यथा-

बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात्कृपाकरः।।

(रस रत्नाकर)

आदि रस तंत्रो में पारद यथा-

अपि च दत्ते खे गतिं बद्धः कोऽन्य सूतात् करुणाकरः।

कहा है; रसार्णव ग्रंथ में भी पारद जारणाओं से जुड़े बद्धीकरण स्वरूप को **'बद्धा तु सङ्कलाबान्धैर्वटिका खेचरी भवेत्।'** अर्थात संकला बन्ध से बद्ध पारद वटिका खेचरी (आकाश में भ्रमण कराने वाली) होती है। आध्यात्म योग क्रियाओं में पारद बन्धन से आकाशगामी होने का प्रमाण योगसिद्धो द्वारा भी प्राप्त होता है। यथा-

विमुक्तचाञ्चल्यं नादगन्धकजारणात्।
मनः पारदमाप्नोति निरालम्बाख्य खेऽटनम्।।

(योग प्रदीपिका)

अर्थात- जिस प्रकार औषधि विशेष के प्रयोग से आबद्ध पारद चाञ्चल्य हीन होकर आकाश में गमना-गमन करने योग्य हो जाता है, मन भी पारद की भांति बंधा हुआ निरालम्ब की शक्ति वाला हो जाता है। इस प्रकार तत्व ज्ञानियों ने पारद बद्धीकरण का खेचर रूप माना है तथा कालान्तर में मुमुक्षुओं द्वारा जो खेचरी गुटिका बनाने का प्रयोगात्मक स्वरूप प्रकट किया गया है उनकी संक्षिप्त विवेचना के साथ अपने स्वानुभव प्रयोग भी प्रकट करते हुए प्राच्य ज्ञान को इस खेचर प्रकरण से व्यक्त कर दिया है। यथा-

वज्रचूर्णसमं सूतं हंसपाद्याविमर्दयेत।
पुटित्वा मारयेत्तं तु पुनस्तुल्यं रसं क्षिपेत्।।
ध्मातः खोटो भवत्याशु शोधितः काचटङ्कणः।
यावच्छक्रोदय प्रख्यो जायते स रसः प्रिये!।।

वज्रसत्त्वं च गमनं रसं हेम च मेलयेत्।
जारयित्वा रसं तद्धि पुनस्तेनैव जारयेत्।।
कोटिबंधी न सन्देहो वक्त्रस्थः खेचरं पदम्।।

(रसार्णव)

अर्थात- वज्र (हीरा) चूर्ण के बराबर पारद मिलाकर हंसपादी (गोधावती) के रस के साथ मर्दन करे, और पुट देकर उसका मारण कर लेवे फिर पुनः समभाग पारद छोड़ देवे; वह धमन करने से शीघ्र ही खोठ हो जाता है। फिर इसको विड्नमक तथा सुहागा के साथ शुद्ध होकर शक्रोदय (वीर बहुटी) के सदृश पारद हो जाता है। उस रस में वज्रसत्त्व, अभ्रक, पारद तथा स्वर्ण को मिला देवे, फिर पुनः पूर्ववत जारण करे यह रस कोटिवेधी होता है। और वह मुख में रखने पर खेचर (आकाश में उड़ने की शक्ति) को प्राप्त कराता है। और-

जातीफलेऽक्षिपेत्सूतमहिफेनेन लेपयेत्।
कृष्णधत्तूरफलके निःक्षिप्ततत्फलं ततः।।
मृत्कर्पटैः सप्तकृत्वा लिप्त्वा धर्मे विशोषयेत्।
पादप्रस्थमित्तैः पाच्यं गर्तमध्ये वनोत्पलैः।।
स्वांगशीतलमुद्धृत्य पक्वं धरसंभवम्।
तथैव निःक्षिपेज्जातीफलं वै सूतसंयुतम्।।
अर्द्धप्रस्थमितैर्वन्यैरुत्पलैः पाचयेत्सुधीः।
एवं शतपुटैः पाच्यं पादवृद्धत्र्यवनोत्पलैः।।
फलं तदेव संस्थाप्य धूर्तजेषु शतेष्वपि।
फलेषु पत्रतश्चैव साधकोऽतिविचक्षणः।।
गुटिका जायते सिद्धा सर्व लोहानि वेधयेत्।
तस्या धारणमात्रेण खेचरो जायते नरः।।

(काक चंडोश्वरी तन्त्र)

अर्थात- जायफल में छेदकर उसमें पारद भर देवे फिर उस पर अफीम का लेपकर पके हुए काले धतूरा के फल में रख सात कपरोटी कर उस गोले को सवा सेर जंगली कंडों में (जहाँ पशु चरते है उस स्थान का सूखा गोबर लेवे) और गड्ढे में रख कर अग्नि लगावे स्वांग शीतल होने पर निकाल उसी जायफल को दूसरे पके हुए धतूरे के फल में रख पूर्वोक्त पुट पाक करे। इस प्रकार सौ धत्तूर फलों में पुट पाक करें तो उस फल में समस्त लोहो को वेधने वाली गोली (पारद गुटिका) सिद्ध हो जाती है। इसके धारण करने से मनुष्य खेचर हो जाता है। और-

रसटंकत्रयं शुद्धं कृष्णधत्तूरबीजजे।
तैले पलद्वये खल्वे मर्दितं दिन सप्त च।।
तावद्याबद्धवेत्तस्य जलौकारूपमुत्तमम्।
माषान्नपिष्टकेनादौ दृढ़सूत्रेण वेष्टयेत्।।
वर्तिकृत्वा ततो गाढं शोषयेद्रविणा च तम्।

दशाशीर्षमिते तैले सर्षपस्य विपाचयेत्।।
तैलक्षयो भवेत्तावद्यावत्तामवतार्थ वै।
स्निग्धच्छायां निशायां च शनैः सिद्धां च तां नयेत्।।
दुग्धेनापूर्यते कुंभः शुभस्तत्र निवेशयेत्।
विशोष्य सकलं दुग्धं गुटिका यदि तिष्ठति।।
बर्करस्य मुखे पश्चाद्गुटिकां तां प्रयच्छति।
प्रविष्टा तन्मुखेस्यान्ते ज्वल माने च तद्धृदि।।
व्याकुलं कुरुते कामं देहस्वास्थ्यं च तस्य वै।
उदरस्था पदा भूयात्तदासौ म्रियते पशुः।।
स्वकीयवदने पश्चाद्धृत्वा शुभ्रां निरामयः।
योजनानां शतं गच्छेदप्रयासेन साधकः।।
अन्येऽपि वहवो रोगा मुखस्था दंतघातिनः।
जिह्वातालुगता एते कंठस्था शालुकादयः।।
उपजिह्वद्विजिह्वा स्यादधिजिह्वा सुदारुणा।
सप्तपुष्टिषु ये मध्ये हृद्रोगा पीनसादयः।।
तांस्तान् विनाशयत्येषा गुटिका नाम खेचरी।।

(र.रा.शं., र.सा.प., नि.र.)

अर्थात– तीन टंक शुद्ध पारद लेकर धत्तूरे के बीजों का दो तोले तैल में सात दिन तक मर्दन करे जब तक उसका रूप जोंक के समान होवे तब तक मर्दन करे। अर्थात जोंक की भांति लम्बी वर्तिका बनने पर उस पारद को उड़द की पिष्टी में रख कच्चे सूत से बांध देवे और धूप में सुखा लेवे। बाद में उस गोले को दस सेर सरसों के तैल में पकावे यहाँ कही कही पर अलसी कै तैल का भी पाठ मिलता है। मेरी राय से तैल अलसी का लेना उत्तम है। जब तैल जल जावे तब उतार लेवे। फिर रात्रि में छायादार स्थान में सिद्ध गोली को निकाल दूध से भरे हुए घड़े में रख देवे जब दूध सूख जावें तब गोली को निकाल बकरे के मुख में रक्खे। जब वह गोली बकरे के मुख में जावेगी तभी से जब भी हृदय को कामाग्नि से प्रज्वलित कर देगी जब वह गोली पेट में चली जायेगी तब वह बकरा मृत हो जावेगा। इसके बाद उस गोली को बकरे के पेट से बाहर निकाल कर उसके मुख में रक्खे तो बिना ही परिश्रम किये सौयोजन तक चला जाता है। तथा और भी बहुत से मुख रोग तथा दंत रोग नष्ट होते है! जिव्हा तालु शालु आदि के कंठ के रोग तथा उपजिव्हा द्विजिवहा हृदय रोग और पीनस आदिक रोगों को यह खेचरी गुटिका नाश करती है। और–

तुत्थकं मूषया कृत्वा स्थापयेन्मध्यपारदम्।
अर्कसेहुंडधत्तूररसो द्रोणं च पूरयेत्।।
सप्ताहमौषधीभाव्यं सिंहनेत्र्या घनप्रिया।
पश्चात्तदम्लयोगेन गोलकं शुक्रसन्निभम्।।
धत्तूरविषतैलेन ज्योतिष्मत्यास्तथैव च।

गुंजा च लांगली चैव भल्लतां कोलकी तथा।।
एतासां तैलयोगेन गुटिकां विषमध्यगाम्।
दोलायन्त्रे पचेदेवं चतुष्पष्टि दिनानि च।।
प्रत्येकमौषधी तैले राक्षसी गुटिकोत्तमा।
स्वर्णादिद्रव्यलोहानि भक्षयेन्नात्र संशयः।।
तारमध्ये यदा क्षिप्तं स्वर्ण भवति निश्चतम् वंग।
वंग मध्ये यदा क्षिप्तं रजतं जायते ध्रुवम्।।
मुखे क्षिप्त्वा अदृश्यं च नाना कौतुककारकम्।
खेचरी जायते सिद्धिर्मनःपवनवेगकृत्।।
जरां मृत्युं हरेद्रोगं विषं स्थावरजंगमम्।
नानया सदृशं क्वपि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।।
नाम्ना खगेश्वरी नाम गुटिका सिद्धिसाधनम्।

(र.सुं.,)

अर्थात- सिद्ध पारद एक पाव लेकर आधा सेर नीला थोथा-आधा नीचे और आधा ऊपर उसके रख देवे और आक-धत्तूर, थूहर इन तीनो का रस चार-चार सेर लेकर प्रथम लोह पात्र (कढ़ाई) में पूर्वोक्त रीति से पारद को रख ऊपर से सब रस को डालकर तेज अग्नि में पकावें; जब रस गाढ़ा हो जावे तब कढ़ाई को उतार कर पारद को पानी से घोटकर इकट्ठा करें और खरल में ड़ालकर सात दिन सिंहनेत्री के रस में घोटे और सात दिन घनप्रिया के रस में घोटे; फिर बाद में कागजी नींबू के रस में घोंटे पीछे विष की एक बड़ी मोटी गांठ लेकर उसके मध्य एक सूराखकर (खोखला गड्ढा) कर उसमें पारद को भर देवे फिर उसके विष के टुकड़े से मुख बन्द करे। और इस विष की गांठ को कच्चे सूत के टुकड़े से लपेट कर दोलायन्त्र विधि से धत्तूर के तैल में पकावे; चौसठ दिन तक मन्दाग्नि में रखे जैसे जैसे तेल कम होवे वैसे ही तैल डालता जावे, इसी प्रकार मालकांगनी, घुंघची, कटियारी, भिलावा और अंकोल इन प्रत्येक के तैल में चौंसठं-चौंसठ दिन पचावे तो राक्षसीपारा होवे। चांदी में इसकों डालने से सुवर्ण और रांगे को चांदी करे, मुख में रखने पर अदृश्य होवे और आकाश में विचरने वाला हो, एक क्षण मात्र में हजार कोष तक जावे बुढ़ापे-मृत्यु और विषदोष का नाश करे इसकी बराबर दूसरी गुटिका नही है - इसे खगेश्वरी गुटिका कहा है।

स्वानुभव खेचरी गुटिका निरूपण

मनीषियों की धारणा अनेक रस तन्त्रों में बद्ध पारद को खेचर गति देने वाला मानती है। जिसमें मुख्यतः कोटिलक्ष्य गुणा- गन्धकादि जारणा विधियों से जारित पारद सिद्ध करने पर ही खेचर आदि वेध निरूपण की दृष्टि से चाञ्चल्य दोषरहित अग्निस्थायी पारद की प्राप्ति इन विशिष्ट प्रभावशाली गुणों वाली हो जाती है; परन्तु इस प्रकार की सिद्धि का उपाय कालान्तर में हुए रस ज्ञान का लोप होने के कारण आज अनेक शोध कर्त्ताओं द्वारा निश्चित रूप से कुछ भी कहना सम्भव नही हो सका है। मैंने भी अपने शोधकार्यों द्वारा

पारद में छुपे हुये इस विलक्षण गुण को जानने का जो प्रयास किया है। उसी की संक्षिप्त विवेचना स्वानुभव रूप से करते हुए प्राच्य ज्ञान में छुपे इन पारदीय गुणरूपो को सम्भव रूप में देखते हुए यहाँ सिद्ध करने का प्रयास किया है।

प्रयोग विधि -1

एक तोला संस्कारित पारद लेकर चार तोला तुत्थ का बारीक चूर्ण कर उसे लौह पात्र में आधा (दो तोला) नीचे तले में बिछाया बाकी बचा दो तोला तुत्थ (नीला थोथा) का चूर्ण तले में बिछेतुत्थ के उपर पारद छोड़कर उसके ऊपर से ड़ालकर आख-धत्तूर-कनेर; भृंगराज और सैंहुड़ (तिधारा) के रस एक सेर में मन्दाग्नि से पकाया जब सब रस शुष्क हो गया बाद में उष्ण जल के प्रच्छालन से उसे सावधानी पूर्वक साफ कर खरल में रखकर थोड़ा मर्दन किया इस क्रिया में तुत्थ योग से पारद लोनी जैसा गाढ़ा हो जाता है। उसके बाद पारद को नींबू के रस में एक सप्ताह तक रख बाद में उसी के साथ मर्दन कर स्वच्छ जल से प्रक्षालन से साफ कर थोड़ा ऊष्ण खरल में मर्दन किया जिससे पारद निर्मल लोनी घृत की भांति गाढ़ा रूप हुआ जल मध्य एक दिन रात रखने पर सख्त (मजबूत) गुटिका बन गई इस पारद गुटका मुख में धारण करने पर अनेक प्रकार के मुख सम्बन्धी रोग व दूध के साथ पात्र में थोड़ा समय रखकर दूध पीने आदि अनेक अनेक रूपों में सेवन करने से बहुत से असाध्य रोगों की शान्ति देने वाले गुण प्रभाव से युक्त तो अवश्य थी परन्तु खेचरी गुटिका की दृष्टि से निष्फल सिद्ध हुई।

प्रयोगविधि -2

पुनः पारद द्वारा उपर्युक्त विधि से पारद गुटिका का निर्माण कर उसे उड़द की पिष्टी के मध्य रख कच्चे सूत से लपेट कर गोला बनाया गया बाद में उस गोले को कई रोज धूप में सुखाकर अलसी के तैल में मन्दाग्नि के द्वारा महीनो तक पकाया गया; फिर उस पारद को बाहर निकाल कर कागजी नींबू के रस के साथ मर्दन कर दोला यन्त्र विधि से महौषधि (सहदेवी) के रस में एक सप्ताह पाचन कर बाहर निकाल लिया गया जिसका प्रयोग करने पर खेचरी गुण का कोई अनुभव प्राप्त नहीं हुआ परन्तु यह रस गुटिका पूर्व रस गुटिका की अपेक्षा औषध्य विशेष योग की दृष्टि से अति उत्तम थी, इसको मुख में धारण कर चूंसने मात्र से जो जिव्हा रस अन्दर जाता है वह आरोग्य वर्धक रूप में मैने उसका सेवन कर स्वयं अनूभूत रूप से जाना परन्तु खेचरी गुण वाला यह बद्ध पारद नहीं था। बाद में बहुत विचार करने पर सोचा योग क्रियाओं में खेचरी का अर्थ जिव्हा को तालुगत कर उससे टपकने वाले रस को पीना होता है। अतः इस दृष्टि से पारद गुटिका को मुख में धारण कर खेचरी गुटिका कहा गया है। जिसके संयोग से वही लाभ प्राप्त करना सम्भव हो जाता है। जो योग क्रियाओं में खेचरी लाभ कहा है।

प्रयोग विधि -3

पारद के जारण कर्मो में संस्कारित पारद के संयोग से द्रुत क्रिया भेद की युक्ति से ताम्र का पारद में क्रिया विधि रूपो द्वारा आत्मसात होने पर उत्तम बद्ध पारद होता है। इस

विधि रूप से जिसकी शास्त्रोक्त व्याख्या पुस्तक में जारण-सारण-क्रामण आदि संस्कारों मे की जा चुकी है। अर्थात उत्तम खोट बद्ध पारद की प्राप्ति कर उसे निम्बुकादि अम्लों व चांगेरी (खट्टी तिपतिया) बूंटी के रस में मर्दन कर बाद में ऊष्ण खरल में मर्दन करने से वह खोट बद्ध पारद जलौका बद्ध हो जाता है; जलौका बद्ध पारद का रूप प्रकट होने पर खेचरी गुटिका का लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से जो धारणाएँ बनी वह निराधार न होकर प्राच्य ज्ञान की प्रामाणिकता के रूप में सामने आने लगी है। जिसके द्वारा कुछ क्रियाविधि रूपों से मैंने जलौकाबद्ध पारद को खेचर गति गुण वाला पाया।

मैंने जलौका बद्ध पारद को दृढ़ कंचनलिका (परखनली) में रखकर उसके उर्ध्व पातन गुण को परखने के लिये अग्नि पर रख थोड़ा तप्त किया जैसा कि चित्र एक में दिखाया गया है।

चित्र - 1

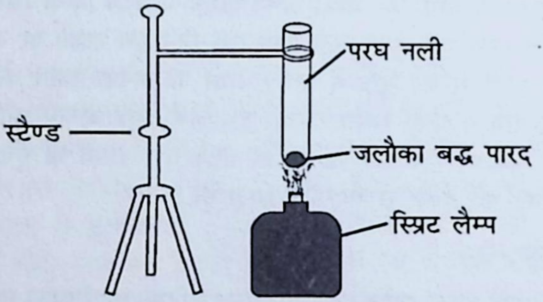

जलौका बद्ध पारद थोड़ी उष्मा पाकर परखनली में ऊपर उठकर निरालम्ब दिखाई **पड़ने** लगा। जैसा कि चित्र दो में दर्शाया गया है।

चित्र - 2

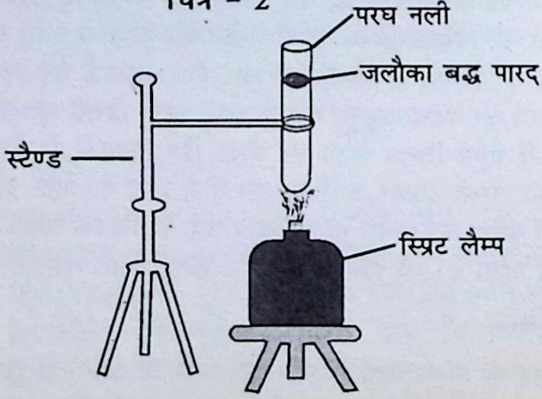

जलौका बद्ध पारद परख नली के अर्ध भाग में ऊपर उठकर आ गया था जिसे देखकर थोड़ा आश्चर्य होना स्वाभाविक था क्यूंकि बद्धपारद का ऊर्ध्वगुण सामने दिखाई दे रहा था। परखनली के नीचे का ऊर्ध्व भाग खाली दिखाई दे रहा था। इस प्रकार जैसे जैसे परख नली के तल भाग में अग्नि का ताप क्षेत्र बढ़ता गया पारद भी ऊपर उठता हुआ परख नली के ऊपरी भाग तक आ गया बाद में अग्नि बन्द करने पर सामान्य ताप में जैसे जैसे परखनली ठण्डी हो रही थी बद्ध पारद भी नीचे तल भाग में उतरता हुआ दिखाई दे रहा था।

इस प्रकार बद्ध पारद का परखनली में ऊष्मा पाकर ऊपर उठना विचिन्तनीय हो गया, और बद्धपारद के खेचर गति का रूप भी उसमें छुपा दिखाई देने लगा। लगातार अनेक प्रयोगों के बाद मैंने एक ही बात पर विचार किया जब बद्ध पारद परख नली में ऊपर उठता है तब परखरनली उसके साथ ऊपर क्यूं नही उठती निश्चय ही बद्ध पारद ऊपर उठते समय अपने नीचे तल भाग में प्रतिरोधक बल के रूप में कार्य करने वाली अदृश्य शक्ति पैदा करता है। जोकि नीचे तल भाग में पारद की ही उदृश्य वाष्प अत्यधिक प्रसार बल की शक्ति से प्रतिक्रिया बल पैदा कर बद्ध पारद को ऊपर उठाने का कार्य करती है; निश्चय ही प्रतिक्रिया बल के रूप में यह कोई विशिष्ट बल है जो पारद के द्वारा ही पैदा होता है; अपने अन्य प्रयोगों द्वारा मैंने पता लगाया यह अपार बल की शक्ति से युक्त है।

प्रयोग विधि-4

पूर्व युक्ति की भांति कार्य करते हुए चित्रानुसार परखनली के मुख पर खड़ का गुब्बारा बांध दिया गया देखिये चित्र - 3 से 4।

चित्र तीन में जलौंका बद्ध पारद युक्त परख नली के मुख पर रबड़ का गुब्बारा

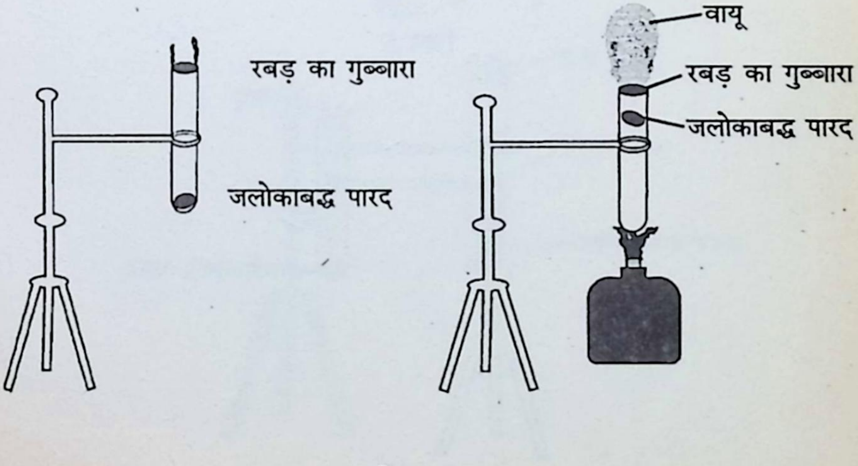

चित्र - 3-4

बंधा हुआ है। चित्र चार में परख नली का तलभाग गर्म करने पर बद्ध पारद ऊपर उठता जाता है। जिसके साथ परखनली के ऊपरी भाग की वायु - गुब्बारे में भरती चली जाती है। जैसा कि चित्र दो में दिखाया है। परख नली के मुख पर बंधे गुब्बारे में आकर उसे फुला देती है। अतः इससे सिद्ध हुआ बद्ध पारद ऊपर उठते समय अपने नीचे उदृश्य बल पैदा करता है जोकि प्रतिक्रिया बल के रूप में कार्य करते हुए लगने वाले प्रतिबल के बराबर होता है अर्थात जितना बल पारद को ऊपर उठते समय वायु मण्डलीय दाब को हटाने में लगता है वह बल उस अदृश्य बल के समान रूप से कार्य करता है।

प्रयोग विधि -5

उपर्युक्त विधि अनुसार ही कार्य करते हुए परखनली में जलोका बद्ध पारद अग्नि के ऊष्ण प्रभाव से उठकर ऊपरी भाग में आकर वायु मण्डलीय दाब को हटाता हुआ ठहरता है तब उसका मुख वायु रहित गुब्बारे से बांधकर अग्नि के ऊष्ण प्रभाग से परखनली को हटा लिया जाता है चित्र-5-6 से इस प्रयोग को आसानी से समझ जा सकता है।

जैसे जैसे पारद का बद्ध रूप जो चित्र 5 में उपर आ गया था रबड़ का गुब्बारा

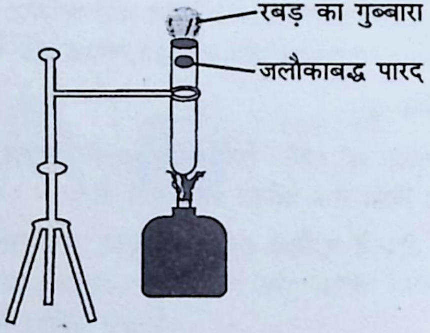

चित्र 5

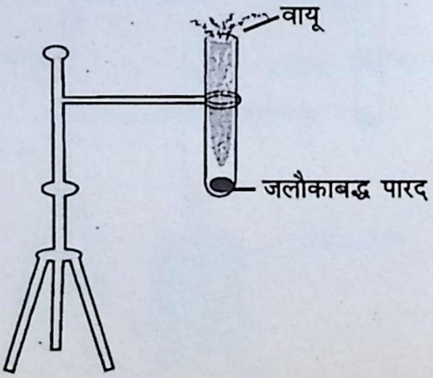

चित्र 6

बांधकर परखरनली को अग्नि के स्पर्श से अलग कर लिया जाने पर पुनः उसी क्रम से नीचे आता है। रबड़ का गुब्बारा परख नली में नीचे खिंचता चला जाता है। जिससे सिद्ध होता है परख नली में निर्वात क्षेत्र पैदा हो जाता है। जिसमें वायु मण्डलीय दबाव से रबड़ का खिंचाव उसमें स्वाभाविक था।

प्रयोग विधि- 6

उपर्युक्त विधि अनुसार ही कार्य करते हुए जलौका बद्ध पारद को परखनली में उष्ण क्रिया के प्रभाव से ऊपरी भाग तक उठाने के बाद उसके मुख पर एक कार्क लगा दी जाती है। जिससे बाहर की वायु उसमें अन्दर प्रवेश न करे चित्र - 7 - 8 में प्रयोग विधि को देखे-

चित्र आठ में पूर्व की भांति जब पारद का बद्ध स्वरूप धीरे से नीचे तल भाग में

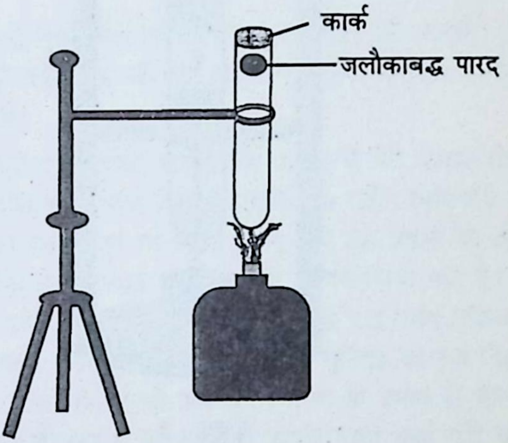

चित्र- 7

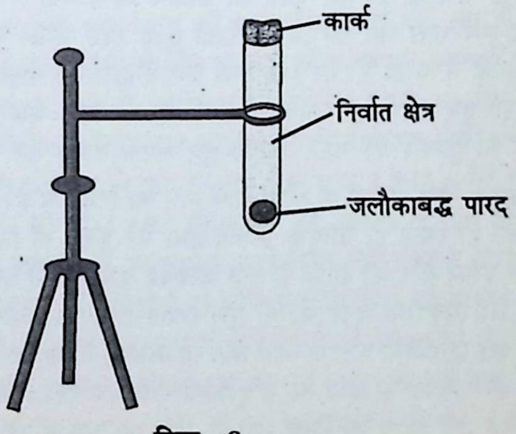

चित्र- 8

ठण्डा होने पर उतर जाता है तब ऊपर की नलिका निर्वात हो जाती है। जैसा कि प्रयोग 5 में सिद्ध किया है। अपने इन प्रयोगों के आधार पर मैंने देखा बद्धपारद को परखनली में कार्क लगाकर - गर्म करने पर - ऊपर की मजबूत डाट को भी वायु को संकोच करता हुआ बल प्रदान कर आसानी से अलग कर देता है। अर्थात यह बल क्षमता अवर्णनीय रूप से जानी जा सकती है। जैसा कि चित्र 9 द्वारा समझा जा सकता है।

एक मजबूत पिस्टन युक्त नलिका में पारद का जलौका बद्ध रूप रखा गया जिसे

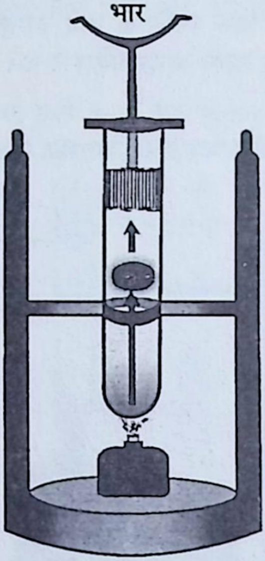

चित्र- 9

स्टैण्ड पर रख नीचे से गर्म कर पारद को सक्रिय किया गया - इस क्रिया में पारद का जलौंका बद्ध रूप भारी भार को ऊपर उठाता हुआ उसी प्रकार कार्य करता है जैसे कि पूर्व की क्रियाओं में करता है। आगे के कुछ प्रयोगों द्वारा मैंने पारद के उष्मिय प्रसार बल का पता लगाते हुए उसे अपार शक्ति के रूप में तब जाना जब उसने एक लौह पिण्ड को ही रबड़ के गुब्बारे की भांति फुलाते हुए अपनी शक्ति का परिचय दिया!

यहाँ मुख्य विषय पारद के खेचर गति रूप का निरूपण है। अतः मुझे वापस अपने विषय रूप को ही लाना है; उपर्युक्त प्रयोगो द्वारा मैंने इतना तो सिद्ध कर लिया पारद में अपार उष्मिय प्रसार बल की शक्ति है तथा जलौका बद्ध रूप में प्रतिक्रिया बल की शक्ति पैदा करने व उसे संकुचित करने का भी गुण रखता है। अगर प्रयोग विधि विशेष के द्वारा कार्य करे तो इस प्रतिक्रिया बल से कार्य बल तो अवश्य लिया जा सकता है। परन्तु खेचर गति के रूप की कल्पना से कार्य करना पूर्णतया असम्भव था। अतः खेचर गति की सिद्धि का उपाय प्राप्त बद्ध पारद के किस रूप से और क्यू सम्भव हो सकता है, चिन्तन का

एक मात्र विषय बनकर नए विकल्प की खोज का कार्य करना पुनः जरूरी हो गया था। मुख्य उद्देश्य के रूप में पारद के उष्मीय प्रभाव से पैदा होने वाले प्रसार बल को बद्ध करना था। अर्थात ऐसा बद्ध पारद जो उष्मीय प्रभाव के रूप में प्रसार बल को त्याग चुका हो! प्राच्य ज्ञान के रूप में मनीषियो ने मूर्त्ति बद्ध पारद का लक्षण कहा है। जिसे अग्नि में तपाने पर भी उसका वाष्पित गुण पुनः पैदा न होने के कारण - अग्नि में ठहर जाता है। अतः उसे अग्निस्थायी पारद के रूप में विलक्षण गुणों वाला माना है। इसी दृष्टि से मूर्तिबद्ध पारद का लक्षण रस बन्धन क्रियाओं में अग्निबद्ध रस लक्षण के रूप में करते हुए शास्त्र का उल्लेख भी प्राप्त होता है। यथा-

केवलो लोहयुक्तो वा ध्मातः स्याद्गुटिकाकृतिः।
अक्षीणश्चाग्निबद्धोऽसौ खेचरत्वादिकृत्सहि।।

(र.र.समु.र.रा.शं.र.रा.सुं.)

अर्थात- लौह धातु युक्त पारद की जारणा कर गुटिका की आकृति (भांति) होने से उसका अग्नि से क्षय भी नहीं होता और यह अग्नि बद्ध पारद खेचरत्व (आकाश में उड़ने) आदि की गति करता है।

प्राच्य ज्ञान से जुड़े इस पूर्वोक्त श्लोक की धारणा से मैंने अपना शोध कार्य करते हुए रविजीर्ण पारद गुटिका का निर्माण किया। बाद में कुछ प्रयोग विधियोंसे अग्नि में पारद के रविजीर्ण हुए गुटिका का जारण भी किया परन्तु मुझे उस प्रकार का अग्निबद्ध पारद प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि अग्नि स्थाई रूप शास्त्रोक्त वर्णित किया गया है। फिर भी कुछ सफलता मानो उर्द पर सफेदी जैसी अवश्य प्राप्त हुईं यह बद्ध पारद गुटिका दो पात्रों की सन्धि के मध्य रख अर्थात - स्टील की एक कटोरी में गुटिका को रख दिया गया उसके ऊपर से दूसरी कटोरी फंसा दी गई थी जब थोड़ी उष्मा के प्रभाव से वह गुटिका ऊपर उछल कर ऊपरी कटोरी के तल से जा टकरायी अर्थात उसने उर्ध्व गति को प्राप्त किया बाद में कटोरी को नीचे रख ठण्डा किया तो वह कटोरी उसी कटोरी में फंसकर रह गई कारण था - गर्मी पाकर कुछ वायु अन्दर की बाहर निकल गई थी- बाद में जब मैंने नीचे कटोरी उतार कर ऊपर की कटोरी को और दबाकर संन्धि मजबूत करने से बाहर की वायु का प्रभाव उसमें अन्दर न जाने के कारण कटोरी में कम दबाव का क्षेत्र बनने से दोनो कटोरियों की सन्धि मैंने किसी कारणवश अलग कर गुटिका बाहर निकालना चाहां तो वह सन्धि नही खुली बहुत कोशिश के बाद भी जब ऐसा कुछ न हुआ - मैंने पुनः उसे अग्नि पर रख दिया क्षण मात्र की उष्मा पाकर ही भडाल की आवाज के साथ कटोरी की सन्धि खुलकर ऊपरी कटोरी बहुत ऊँची उछल कर अपने ऊपर आई रुकावट के कारण टकराकर नीचे आ गिरी - ऊपरी रुकावट न होती तो बीस पच्चीस फिट की अथवा अधिक ऊँचाई तक भी जा सकती थी। बद्ध पारद गुटका जो कई टुकड़ो में बिखर गई थी नीचे की कटोरी में थी कुछ अवशेष इधर उधर भी बिखर गए थे। इस प्रकार के कई प्रयोगों से मैंने इतना तो जान ही लिया उष्मा पाकर बद्ध पारद गुटिका वाष्पित रूप से क्षय न होकर ऊपर को

उछलती है। जोकि निर्वात क्षेत्र में अधिक सक्रिय है।

एक परखनली में विधिविशेष के द्वारा पारद गुटिका को बन्दकर वायु के स्थान पर जल वाष्प पैदा की गई; अर्थात उसमें निर्वात क्षेत्र बनने पर जो अन्दर आंशिक जल की मात्रा रखी गई थी वह स्वतः ही वाष्प कणों में बिखर गई, परख नली का मुख कार्क से भली भांति बंद कर दिये जाने से वायु मण्डलीय दबाव के कारण और भी कार्क का दबाव परख नली में अन्दर की तरफ बढ़ गया था; अतः कार्क को ठीक कंसा हुआ जानकर परख नली को चित्र की भांति एक दूसरी नलिका में प्रवेश कराया। जिसमें परख नली बिना किसी रूकावट के ऊपर उठ सकती थी नीचे तल भाग को थोड़ा तप्त करने

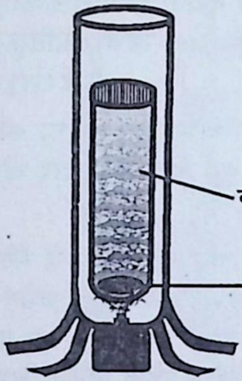

चित्र- 10

पर आश्चर्य जनक प्रभाव दिखाई दिया अर्थात पारद गुटिका तेजी से ऊपर बने वाष्प के क्षेत्र में वाष्प कणों को संकुचित करती हुई ऊर्ध्व गति से सक्रिय रूप धारण कर ऊपर को उठी, जिसके परिणाम स्वरूप परखनली निरालम्ब होकर नलिका में ऊपर को बार-बार झटका खाने लगी। देखें चित्र 11–

पारद गुटिका बार-बार तेजी से ऊपर नीचे कंपन करती थी अर्थात थोड़ा ऊपर को

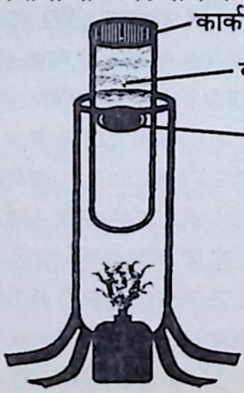

चित्र- 11

उठती और फिर नी:चे की तरफ गिरने लगती थी इस प्रकार परखनली में पारद गुटिका की जो गति बनी थी वह बार-बार परख नली को भी निरालम्ब करती हुई ऊपर नीचे गति करती थी। मैंने यह प्रयोग कई बार किया, बार-बार परखनली की कार्क निकल जाने के कारण क्रिया अधिक समय नही हो पाती थी। कभी परख नली टूट जाती थी तो कभी कार्क निकलती थी, फिर भी कुछ सत्यता का अंश तो प्रकट होकर सामने दिखाई दे गया। जिसके आधार पर आज के वैज्ञानिक युग में यह सिद्ध कर पाना असम्भव नही रहा कि बिना- प्रति क्रिया बल पैदा हुए भी गुरूत्व क्षेत्र में गति मिल सकती है, ऐसा मैने अपने प्रयोगों द्वारा जाना है। जिसे बद्ध पारद के द्वारा निरन्तर एक ही दिशा में लगने वाले बल के रूप में, प्राप्त करना सम्भव है। पारद में छुपा यह अदियुत गुण प्रति क्रिया बल रहित गुरूत्व प्रतिरोधक बल के रूप में विशिष्ट प्रभावशाली बद्ध पारद के रूप को प्राप्त होने से खचर गति वाला होने पर असम्भव नहीं है, बद्ध पारद का यह विशिष्ट गुण प्राच्य साज के रूप में जानने से ही सिद्ध कर पाना सम्भव है, जिसके द्वारा आकाश की ऊंचाइयों को छूने के साथ-साथ पृथ्वी पर भी कार्य बल लिया जा सकता है।

प्रकरण - 17

स्वानुभूत प्रकरण

स्वानुभव प्राप्ति

तामेश्वरी महीमय पात्र व ताम्र रस की अभूत पूर्व प्राप्ति का कार्य रस क्रियाओंके माध्यम से मैंने अपने उन अनुसन्धान रूपों में किया है जिनका प्रयोग वेध क्रियाओं की दृष्टि से किया गया था ? जो एक नवीन शोध के रूप में मुझे प्राप्त हुआ है।

तामेश्वरी महीमय पात्र-

महीमय पात्रों की प्रकल्पना से मैंने तामेश्वरी महीमय पात्र की रचना का कार्य प्रकल्पित करते हुए; आयुर्विज्ञान के क्षेत्र में अभूतपूर्व उपलब्धि की प्राप्ति से जो कार्य किया है वह प्राच्य ज्ञान को पुनः जीवित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण शोध के रूप में देखा जा सकता है।

महीमय पात्र का अर्थ मिट्टी के बने पात्रों के रूप में देखा जाता है। जिन्हें प्राच्यकाल से ही कुम्भकार बनाते आ रहे है। जिसका रचनात्मक कार्य मिट्टी और जल के संयोग से करते हुए अग्नि के द्वारा परिपक्व रूप को प्राप्त किया जाता है; ये महीमय (मिट्टी के) पात्र आज भी मानवी जीवन में प्रयोग होते है। तथा अपने विशिष्ट गुण प्रभाव के कारण अति उपयोगी होते है। जैसे मिट्टी का घड़ा (कुम्भ) गर्मियों के मौसम में जल प्रयोग के लिये अति उत्तम रहता है क्योंकि मिट्टी के (महीमय) पात्र का जो रचनात्मक स्वरूप बनता है। वह अति सूक्ष्म कोशों से युक्त होता है, जो कि वायु मण्डलीय उष्ण क्रिया के प्रभाव से सक्रिय होकर अपने अन्दर के जल को शीतक्रिया पैदा कर ठण्डा कर देता है। आयुर्वेद की दृष्टि से मिट्टी के पात्रों में रखा जल सदैव पीना हितकर होता है। इस प्रकार ये मिट्टी के (महीमय) पात्र अपने अन्दर रखे भोजन (खाद्य पदार्थों) को सुरक्षित भी रखते हैं; जबकि धातु पात्रों में रखे भोजन शीघ्र खराब हो जाते है। अन्य कारणों से भी महीमय पात्र मानवीय जीवन से जुड़े हुए है। जहाँ उनका उपयोग मानवीय संस्कृति से जुड़ा हुआ है।

तामेश्वरी महीपात्र का रचनात्मक स्वरूप महीमय पात्रों की भांति ही है। यह पात्र भी महीमय पात्र की भांति विशिष्ट गुण प्रभावशाली रूप को प्राप्त हुआ है। तामेश्वरी ताम्र का बना हुआ सूक्ष्म कोशों से युक्त सक्रिय रूप से अपने अन्दर रखे जल को गर्मियों में ठण्डा करता है तथा उसे अपने सम्पर्क द्वारा विशिष्ट औषधगुण प्रभावशाली बनाकर स्वास्थ्य की रक्षा करता है। जिसका नियमित प्रयोग दीर्घायुष्य वाला है। तामेश्वरी महीमय

पात्र मिट्टी के पात्र की भांति कार्य करते हुए कोटिगुण प्रभावशाली होते है। अपने सम्पर्क से जल को अति शीघ्र उन सूक्ष्म विषाणुओं से मुक्त कर देता है। जो प्राकृतिक रूप से स्वतः पैदा होते है। तथा अन्य पेय पदार्थो का सेवन - मधुर पदार्थ इस पात्र में रखकर खाने से दोष दूष्य जनित विकारों की मुक्ति से आरोग्यता का लाभ प्राप्त होता रहता है।

तामेश्वरी महीमय पात्र की रचना का कार्य जैसा कि ऊपर लिखा है। मिट्टी के पात्रों की भांति होता है। पहले ताम्र की शुद्धि विधिवत नियमों द्वारा कर उसे शुद्ध पारद के साथ आत्मसात (एकनिरूपता) किया जाता है; इस क्रिया में पारद और ताम्र दोनों समभाग लिये जाते है। यह क्रिया मिट्टी के पात्रो की रचना जैसी होती है। जिस प्रकार कुम्भकार - मिट्टी जल द्वारा संचित कर उसे कूट पीस कर स्निग्ध बनाता है फिर बाद में उसका बर्तन तैयार करता है। उसी प्रकार पारद का प्रयोग जल के रूप मे और ताम्र का प्रयोग मिट्टी के रूप में किया जाता है। ताम्र पारद के योग से संचित कर स्निग्ध बनाते हुए बर्तन की रचना का कार्य किया जाता है। जिसे बाद में अग्नि द्वारा कच्ची मिट्टी के पात्र के भांति ही पकाया जाता है। इस प्रकार तामेश्वरी पात्रों का रचनात्मक कार्य महीमय पात्रों के रूप में ही सम्पन्न होता है। तथा मिट्टी के पात्रों की भांति तामेश्वरी पात्र भी चोट लगने पर टूट जाते है। संक्षिप्त में इतना ही कहा जा सकता है। ये पात्र पूर्णतया महीमय रूप से युक्त धातु पात्र है। जो कि वर्तमान समय के लिये अति उपयोगी रूपों में वैज्ञानिक दृष्टि से भी देखे जा सकते है।

आयुर्वेद के क्षेत्र में ताम्र धातु का विशेष महत्व है। अनेक प्रकार के रोगों के नाशार्थ आज भी आयुर्वेदिक फार्मेशियों द्वारा ताम्र भस्म का निर्माण किया जाता है। तथा प्राच्य मान्यताओं के अनुसार ताम्र के पात्र में रखे जल का प्रयोग करने से आरोग्यता का लाभ प्राप्त होता है। अतः इस दृष्टि से ये तामेश्वरी महीमय पात्र साधारण ताम्र पात्र की अपेक्षा अपने सक्रिय प्रभावशाली गुण के कारण अति विशिष्ट गुण प्रभावशाली होते है।

ताम्र रस

रस क्रियाओं में ताम्र रस की उत्पत्ति आयुर्वेद के क्षेत्र में अभूतपूर्व शोध का कार्य है। जो कि अपने विशिष्ट प्रभाव शाली गुणो के कारण श्लेष्मिकादि विकारो से पीड़ित मनुष्यों की रक्षा करता है तथा अनेक असाध्य रोगों को जीतने में समर्थ है।

आयुर्वेद की क्रियाओं में ताम्र भस्म गन्धकादिक योगों द्वारा की जाती है। जिसका स्वरूप श्याम (काला) वर्ण होता है।

तामेश्वर रस की प्राप्ति में पारद गन्धक के योग से ताम्र पात्रो को लिप्तकर फूंका जाता है। परन्तु ताम्र रस एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में देखा जा सकता है। शास्त्रोक्त रूपों में इसे रवि जीर्ण भस्म कहा जाता है। परन्तु मैंने इसे ताम्र रस ही कहा है। क्यूंकि रवि जीर्ण क्रिया विधि से इसकी उत्पत्ति का कार्य करते हुए मैंने इसे उत्तम ताम्र रस के रूप में प्राप्त किया है। इस क्रिया विधान में पारद के योग से ताम्र अपने वास्तविक स्वरूप से कई गुना अधिक विस्तार कर लेता है। तथा जल के ऊपर तैरने योग्य हो जाता है। जिस

प्रकार मकई-ज्वार आदि अग्नि के सम्पर्क से खील बन जाते है। उसी प्रकार इस रविजीर्ण क्रिया में ताम्र की पारद के योग से अग्नि में खील होती है। जो पूर्णतया भस्मीभूत होकर सुर्ख वर्ण को प्राप्त हो जाता है।

इस ताम्र रस (रविजीर्ण भस्म) का सेवन आधी रत्ती की मात्रा में नियमित करने से एक वर्ष में मनुष्य सभी प्रकार के रोगों से मुक्ति पाकर दीर्घायुष्य वाला हो जाता है; दो वर्ष का सेवन नाड़ीगत त्रिदोष जन्य विकारो को जीतना है। तथा तीन वर्ष का नियमित सेवन मानसिकादि विकारों से पैदा हुए पापों से मुक्ति दिलाता है। ऐसा मनुष्य लोक और परलोक सुखों का अधिकारी हो जाता है।

मूर्ति निर्माण

पारद द्वारा महरसों के संयोग से मूर्तियों का रचनात्मक कार्य भी किया है। जो कि वर्तमान समय में प्राच्य ज्ञान की अवधारणा से देखा जा सकता है। इन रचनात्मक कार्यों में मुख्यतः पारद के बने शिवलिंग गणेश लक्ष्मी आदि की मूर्तियां तथा पारद मणि आदि है।

मूर्च्छित रस भस्म

प्राच्य ज्ञान की ही अवधारणा में गन्धकादिक की जारण क्रियाओं के माध्यम से मूर्च्छित रस भस्म की प्राप्ति का भी नवीन शोध कार्य सम्पन्न किया है। जो कि अभूत पूर्व रूप में देखा जा सकता है तथा आयुर्वेद के क्षेत्र में कूपी पक्व रसायनों से निर्मित रसौषधों की तुलना में अति उपयोगी विशिष्ट रसौषध है।

तत्त्व ज्ञान का अनुभूत निरूपण

बिना तत्व ज्ञान के रस ज्ञान नही होता तथा बिना रस क्रियाओं के तत्व ज्ञान नहीं होता। अतः तत्व ज्ञान की प्राप्ति का साधन पारद और योग इन दो रूपो में मनीषियो द्वारा देखा गया था। योग बल के द्वारा तत्व ज्ञान को जानने से पारद की सिद्धि के उपाय खेचरत्व आदि गुणों के रूप में व्यक्त किये गए रूपों की प्राप्ति का साधन मुमुक्षुओं द्वारा कालान्तर में होता रहा है। रस क्रियाओं के माध्यम से जिन शोध रूपों को प्राप्त किया गया था वह उनके तत्त्व ज्ञान का प्रतीक थी। मैने स्वयं अपने अनुभव से रस क्रियाओं को जानते हुए तत्व ज्ञान की अनुभूति प्राप्त की है। तथा उनके अनुमित रूपों से पारदीय ज्ञान (रस ज्ञान) की प्राप्ति का साधन करते हुए पंचभूतात्मक सृष्टि की उत्पत्ति का कारण रूप पारद को मानते हुए इसके द्वारा वे सभी कार्य किये जा सकते हैं जो पंचभूतात्मक प्रकृति के निर्माण एवं विनाश के क्षेत्र से जुड़े है। यहाँ विचाणीय विषय तत्व ज्ञान के रूप से जुड़ा है; जिसे पंचभूतात्मक प्रकृति के रूप में व्यक्त किया गया है। अतः पहले प्रकृति शब्द पर विचार करते हैं।

प्रकृति का अर्थ उत्पत्ति की क्रिया स्वभाव; किसी पदार्थ का गुण सर्वदा बना रहता है। संसार का निर्माण करने की मूल शक्ति, और आकाशादि पंचतत्व, शक्ति, परमात्मा,

सत्त्व, रज और तम गुण की साम्यावस्था आदि रूपों में व्यक्त किया जा सकता है। अर्थात- जो तत्वों की उत्पत्ति का क्रिया विधान भी प्रकृति द्वारा बने प्राकृतिक गुणों में छुपा हुआ है। इस दृष्टि से किसी भी तत्त्व का मूल कण आकाशीय गुण से युक्त हुआ अपने घनत्व की प्रकृति से जुड़ा है। जो क्रम से वायु, अग्नि, जल और धात्व (पृथ्वी) के रूप में प्रकट हुआ शीत-उष्ण क्रिया भेद से पैदा हुए आवेशित गुण की प्रक्रिया से बंधा हुआ गुरुत्व प्रकृति से जुड़ता हुआ पंचभूतात्मक भूमण्डलीय स्वरूप (संसार) के निर्माण का कारण रूप हो सकता है। इस दृष्टि से सभी तत्व शीत-ऊष्ण क्रिया से बंधे हुए सक्रिय रहते है। तथा घनत्व से बंधे हुए, गुरूत्वाकर्षण बल से पैदा हुए अपने प्राकृतिक गुण के कारण, अनेक रूपों में व्यक्त हुए है।

पारद का प्राकृतिक गुण

आयुर्वेद में मनीषियों द्वारा पारद को "रस" कहा है जो जीव के जन्म-मरण का कारण है। अतः इस पुष्टि से पारद पंचभौतिक गुणों वाला है। क्यूंकि जीव भी पंचभौतिक गुणों वाला होने से रस क्रिया का ही एक रूप होता है, जो शरीर के रूप में बंधा हुआ उत्पत्ति विकास और क्षय क्रम को प्राप्त होता है। उन कारण रूपों की मैं यहाँ चर्चा न करते हुए मुख्य विषय क्षेत्र को ही लेते हुए "पारद" के प्राकृतिक गुण को जीव के रूप में प्रकट किया गया है। अर्थात पृथ्वी गुण (धात्व) होते हुए भी धातु नही है। जलगुण होते हुए भी जल नही है, और अग्नि गुण होते हुए भी अग्नि नही है। इसी क्रम से - वायुगुण होते हुए भी वायु नही है तथा आकाश गुण होते हुए भी आकाश नहीं है। इस दृष्टि से मनीषियों द्वारा पारद को शिव-ब्रह्म प्रकृति के रूपो में जानते हुए रस रूप में समाहित हुए पारद में जो प्रकृति के पंच भूतात्मक गुण है। उनकी प्राप्ति का साधन मानते हुए ही ऐसा कहा है- यथा -

पारदः सकलरोगहा स्मृतः षड्रसो निखिलयोगवाहकः।
पंचभूतमय एष कीर्तिततस्तेन तद्गुणगणैर्विराजते।।

(वैद्य, कल्प, आ.वि.वृ.योग, र.सा.प., श.क., राग. नि., रसामृत,)

अर्थात- सब रोगों का नाशक जिसमें छहों रस विद्यमान है., सब योगों का चलाने वाला यह पारद पांच महाभूतों का रूप वर्णन किया गया है। इस कारण से पारद उनके गुणो से विराजमान हो रहा है।

मूर्च्छित पारद का गुण-

कुष्ठ हरै कृमिको हरै, हरै मृत्यु को जोग।
जराजोर नाशन करै दृष्टि देत नैरोग।।
कह्यों योगवाही तथा, महासुवीर जवान।
बुद्धि रूप अरु ओज को वर्द्धित करै निदान।।
रस रक्तादिक धातु सब तन में करै हमेश।
काम बढ़ावे अरु करै, मौपे देह विशेष।।

शूर वीरता को करत, हरत षंढतागोत।
खेचर गति की सिद्धताप्रगह देह में होत।।
मारित अथवा मूर्च्छित पारद के गुण एह।
सकल रोग हरिके करै, निर्मल अतिही देह।।
पंचभूतमय जानिये या पारद को रूप।
ध्वस्त करै जय को करे रण में सदा अनूप।।
जो औषधि जा रोग की हरता ताके संग।
दे पारद नर गजतुरंग, रोग कीजिये भंग।।

(वैद्यादर्श)

और-

मूर्च्छार्तो गदहृत्तथैव खतिं दत्ते निबद्धोर्थद-
स्तन्द्रस्मामयवार्ध कादिहरणं दृक्पुष्टिकांतिप्रदम्।
वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्दकं
शार्दूलातुलसत्त्वकृत्क्रमभुजां योगनुसारि स्फुटम्।।

(र.रा.सुं., नि.र., यो.र., र.रा.सुं.)

अर्थात- मूर्छित पारद रोग का नाश करता है और बंधा हुआ पारद आकाश गमन तथा अर्थ का दाता है और उसी पारद की भस्म रोग, बुढ़ापे को नाश करने वाली, बल कर्ता स्त्री जनो को आनन्द की दाता शेर के समान पुरूषार्थ देने वाली और योगवाही है।

शीत-ऊष्ण प्रकृति भेद का निरूपण

ब्रह्माण्डीय जितनी भी संरचनाएं दिखाई पड़ती है वे सभी शीत-ऊष्ण प्रकृति भेद से जुड़ी हुई हैं चाहे वह पंचभौतिक है अथवा आकाशीय। ग्रह नक्षत्र मण्डलों का जितना भी समूह दिखाई पड़ता है सभी शीत-ऊष्ण प्रकृति के द्वारा पैदा हुए गुरुत्व की शक्ति से; घनत्व रूप को प्राप्त होकर पिण्डीय संरचनाओं के रूप में प्रकट होते हुए भी अंतरिक्ष (आकाश) में भारहीन ही रहते है। क्यूंकि किसी भी तत्व का भार उस पिण्ड के संरचनात्मक रूप में पैदा हुए गुरुत्व से बंधा हुआ घनत्व होता है। तत्वों का यह घनत्व रूप शीत-ऊष्ण प्रकृति से बंधा हुआ गुरुत्व के सापेक्ष प्रसार बल की क्रिया से जुड़ा हुआ अपने अलग-अलग गुण रूपो में व्यक्त होता हुआ अधिक घनत्व के ऊपर आने का गुण रखता है। इन क्रिया रूपों में वायु बहुत अधिक प्रसार बल से जुड़ी होने के कारण गुरुत्व बल से बंधी होने पर भी निरन्तर गतिमान होती रहती है। जो तत्त्व वायु से भी हल्के होते हैं वह वायु के साथ सक्रिय रूप से ऊपर उठते है; जिनकी यहाँ और अधिक विवेचना करना उचित न समझते हुए मुख्य विषय पारद को शीत-ऊष्ण प्रकृति गुण की क्रिया विधि के रूप में देखना है। सभी तत्त्वो का परिवर्त्तन तीन रूपों में समान्यतः होता है-

1- हिमांक (ठोस रूप)

2- गलनांक (द्रवित रूप)

3- क्वथनांक (वाष्पित रूप)

इन तीनो अवस्थाओं में किसी भी तत्त्व का क्वथनांक (वाष्पित रूप) ऊर्ध्व गति वाला गुण रखता है। क्यूंकि ऊष्ण क्रिया से अपने प्रसार बल को प्राप्त कर गुरुत्व बल से बंधा होने पर भी जो गतिज वेग उसमें पैदा होता है; वह गुरुत्व प्रति रोधक बल के रूप में कार्य करने लगता है। पानी के प्रसार बल की शक्ति जो ऊष्ण क्रिया द्वारा गतिज वेग के रूप में पैदा होती थी उसे अबसे वर्षो पूर्व जैम्सवाट द्वारा जान लिया गया था।

प्रसार बल की क्रिया शक्ति से बंधा हुआ सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में पारद से गुणज्ञ शक्तिरूप अन्य कोई तत्व नही है। मैंने स्वयं अपने एक प्रयोग द्वारा पारद के प्रसार बल को एक लौह पिण्ड में बांधकर देखा है; थोड़ी उष्मा के प्रभाव से ही वह लौह पिण्ड पारद के प्रसार बल की शक्ति द्वारा रबड़ के गुब्बारे की भांति फूल गया था। जो आज भी मेरे पास सुरक्षित रखा है। पारद का हिमांक, द्रवांक और क्वथनांक इन तीन रूपों का विश्लेषण करने पर पारद का हिमांक शून्य से नीचे परम शून्य ताप अर्थात महाशीत की कल्पना से जिसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में सबसे नीचे का ताप कहना उचित होगा। दूसरा द्रवांक जो उसमें प्राकृतिक गुण से व्याप्त है। अर्थात उसे द्रव रूप करने के लिये धात्वादि तत्त्वो की भांति उष्मा की आवश्यकता नहीं है। स्वत: ही उस उष्मीय गतिज बल को प्राप्त है। जिसे अन्य तत्त्वो में उष्मा द्वारा पैदा किया जाता है। तीसरा रूप क्वथनांक है। जो कि 273 डिग्री0 ताप पर पारद क्वथित (वाष्पित) होता है। इस कल्पना से विचार करने पर एक स्पष्ट समीकरण का रूप उभरता है। जिसमें तत्वों की सामान्य अवस्था से शून्य डिग्री से नीचे का ताप ऋणात्मक गुण वाला शून्य डिग्री से ऊपर का ताप घनात्मक गुण वाला होने से तत्त्व का नाभिकीय आवेशित गुण प्रभावित होता है। अर्थात उसमें संकुचित होने और फैलने की क्रिया से तत्त्वों का रचनात्मक नाभिक सुकड़ता और फैलता है। जिसे पारद के द्वारा थर्मामीटर के प्रयोग विधि रूपों में देखा जाता है; क्यूंकि पारद ही पृथ्वी पर एक ऐसा द्रव धातु रूप है। जो उष्मीय प्रभाव से प्रसार बल को क्रिया द्वारा शून्य से नीचे हिमांक बिन्दू तक और शून्य से ऊपर क्वथनांक बिन्दू तक अपने ही स्वरूप में बना रहता है। इस प्रकार शीत-ऊष्ण-क्रिया से प्रभावित पारद का प्रसार बल घटता बढ़ता रहता है जो तापमापक यन्त्रों के रूप में प्रयोग किया जाता है। शून्य से नीचे गिरने पर ऋणात्मक और शून्य से ऊपर उठने पर धनात्मक बिन्दू रूपों में व्यक्त होता है

समीकरण-	1-	(0 - 273)	डिग्री	हिमांक	बिन्दू
„	2	(0 + 273)	„	क्वथनांक	„
„	3	(0)	„	गलनांक	„

यहाँ पारद का क्वथनांक बिन्दु शून्य (पारद की सामान्यावस्था) से ऊपर धनात्मक (273 डिग्री ताप) प्राप्त होने पर वायु मण्डलीय क्षेत्र में क्वथित (वाष्पित) होने की क्रिया से कल्पना करते हुए शून्य से नीचे ऋणात्मक बिन्दू (- 273 डिग्री) मान लिया है; अर्थात

ऋणात्मक बिन्दू धनात्मक बिन्दू की कल्पना से प्राप्त किया गया है। क्योंकि धनात्मक बिन्दु का तो सहज साधन प्राप्त है। परन्तु ऋणात्मक बिन्दु का कोई साधन न होने के कारण उसे समीकरण की दृष्टि से (– 273 डिग्री) मान लिया गया है।

यथा–

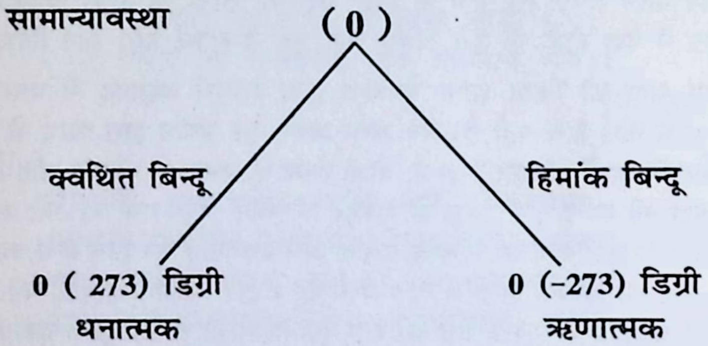

इस समीकरण की कल्पना से ऋणात्मक (हिमांक बिन्दु) 0 (– 273) डिग्री पारद का ठोस रूप प्राप्त करने के लिये चाहिए जिसे परमशून्य ताप की कल्पना से जोड़ा जा सकता है। अर्थात पारद का परम शून्य ताप में पैदा हुआ स्थाई (ठोस) रूप समस्त ब्रह्माण्ड से बंधा हुआ चराचर (चर और अचर) अर्थात जड़ और चेतना के रूप में सृष्टि के संरचनात्मक रूप से बंधा हुआ, पांचभौतिक रूपों में प्रकट होता हुआ समस्त ब्रह्माण्डीय संरचनाओं से जुड़ा हुआ है। इस दृष्टि से पारद की कल्पना का जो स्वरूप मैंने जानने का प्रयास किया है। उसकी संक्षिप्त विवेचना मैंने यहाँ कर दी है। विषय सम्बन्धी निराकरण के लिये भारत ही नही दुनियाँ के किसी भी विद्वान के साथ विचार विमर्श किया जा सकता है।

चिकित्सा की अद्भुत पुस्तकें

अपक्व भोजन अथवा रोगों व्यसनों तथा विषों से मुक्त एक नया संसार	अनु० सत्य भूषण योगी
अष्टांगहृदयम्-वाग्भटकृत (हिन्दी व्याख्या)	व्या० लालचन्द वैद्य
आधुनिक चिकित्साशास्त्र	धर्मदत्त वैद्य
चरकसंहिता-भगवताग्विशकृत (हिन्दी व्याख्या)	जयदेव विद्यालंकार
नव्य जनस्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य विज्ञान	मुकन्दस्वरूप वर्मा
बृहद्रसराजसुन्दम्	दत्तराम चौबे
भावप्रकाश-निघण्टु (हिन्दी टीका)	व्या० विश्वनाथ द्विवेदी
भैषज्यरत्नावली गोविन्ददास विरचित	जयदेव विद्यालंकार, सं० लालचन्द्र
भारत भैषज्यरत्नाकर (5 भागों में)	रसवैद्य नगीनदास छगनलाल
माधवनिदानम्-माधवकरप्रणीत (मधुकोश संस्कृत टीका, हिन्दी अनुवाद)	नरेन्द्र शास्त्री
मानव शरीर-रचना	मुकुन्दस्वरूप वर्मा
रसतरंगिणी	काशीनाथ शास्त्री
रसरत्नसमुच्चय	धर्मानन्द शर्मा
रसेन्द्रसार-संग्रह-गोपालकृष्ण भट्टकृत	व्या० नेरन्द्रनाथ
वर्मा एलोपैथिक गाइड	रामनाथ वर्मा
वर्मा एलोपैथिक चिकित्सा	रामनाथ वर्मा
वर्मा एलोपैथिक निघण्टु (मैटीरिया मेडिका)	रामनाथ वर्मा
व्याधि-विज्ञान (हिन्दी)	आशानन्द पञ्चरत्न
श्रीविद्याकल्पलता	राजेन्द्ररंजन चतुर्वेदी
सुश्रुत-संहिता (सम्पूर्ण हिन्दी टीका)	अनु० अग्निदेव

मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली • मुम्बई • चेन्नई • कोलकाता
बंगलौर • वाराणसी • पुणे • पटना
E-mail: mlbd@vsnl.com
Website: www.mlbd.com

मूल्य: रु० 295 कोड : 3099-7

ISBN 81-208-3099-7
9788120830998